

ISSN 2277-5587

# Shodh Shree

(Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

## शोध श्री

Volume IX

October-December 2013

RNI No. RAJHIN/2011/40531



CHIEF EDITOR  
**Virendra Sharma**

EDITOR  
**Dr. Ravindra Tailor**

[shodhshree@gmail.com](mailto:shodhshree@gmail.com)

Shodh Shree

Volume IX

October-December 2013



# Shodh Shree

(Referred Journal of Multidisciplinary Research)

**Virendra Sharma**

**Chief Editor**

Head of Department (History)

Government P.G. College, Bundi

**Dr.Ravindra Tailor**

**Editor**

Shodh Shree,

Jaipur

## Editorial Board

**Prof.H.S.Sharma (Retd.)**

University Of Rajasthan, Jaipur

**Prof.T.K.Mathur (Retd.)**

M.D.S. University, Ajmer

**Prof. Ravindra Kumar Sharma**

Kurukshetra University, Kurukshetra (Haryana)

**Sarah Eloy**

Museum The House of Alijn, Belgium

**Prof. B.P. Saraswat**

Dean of Commerce

M.D.S. University, Ajmer

**Dr.Rajesh Choudhary**

Assistant Director (Research)

Indian Council of Historical Research, NewDelhi

**Dr.Mahesh Narayan**

Archivist (Retd.)

National Archives of India, NewDelhi

**Dr.Pankaj Gupta**

Government P.G. College, Kotputli

## Advisory Board

**Prof.S.P.Vyas**

Jainarayan Vyas University, Jodhpur

**Prof.S.N.Tailor (Retd.)**

S.D. Government P.G. College, Beawar

**Shri Om Prakash Sharma "Kukki"**

International Renowned Archeologist and Explorer of Cave Paintings, Bundi

# शोध श्री

Volume IX

October-December 2013

1. महर्षि दयानन्दाधारित संस्कृत महाकाव्यों में तत्कालीन राष्ट्र की दशा एवं दिशा  
डॉ. आशुतोष पारीक, बाड़मेर 001
2. वाल्मीकि रामायण कालीन समाज में नारी के अधिकार  
डॉ. प्रीति गुप्ता, आगरा (उत्तरप्रदेश) 007
3. यजुर्वेद में वर्णित आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान  
डॉ. विजय सिंह मीणा, जयपुर 010
4. आज के सन्दर्भ में पुराणों में वर्णित नारी की स्थिति की प्रासंगिकता  
सुमन लता, करनाल (हरियाणा) 013
5. श्रीमद्भागवद्गीता में भक्ति का वैशिष्ट्य  
सरोजबाला, जयपुर 016
6. माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का उनके शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन  
डॉ. दिनेश कुमार सिंह, मेरठ (उत्तरप्रदेश) 021
7. वचित समाज का शिक्षाशास्त्र  
डॉ. शुद्धात्मप्रकाश जैन, नीरज काण्डपाल, अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश) 026
8. हिन्दू यवन शासकों के वैवाहिक संबंध और उनका राजनीति पर प्रभाव  
राजुल अग्रवाल, जबलपुर (मध्यप्रदेश) 029
9. भूमण्डलीकरण एवं आतंकवाद के संदर्भ में महात्मा गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम की प्रासंगिकता : एक विश्लेषण  
डॉ. दलजीत सिंह चौधरी, जयपुर 033
10. दक्षिण एशियाई देशों के सामाजिक आर्थिक प्रतिमान  
भावना शर्मा, जयपुर 036
11. खाद्य सुरक्षा का अधिकार: चुनौतियाँ एवं समाधान  
पुष्पा मीणा, जयपुर 041
12. भारतीय राष्ट्रवाद : समसामयिक चुनौतियाँ  
डॉ. अमृता चौधरी, जयपुर 045
13. भारत में महिला सशक्तिकरण: दशा एवं दिशा  
मधु मीणा, फुलेरा 049
14. Food Security and The Food Democracy in India : A Socio Legal Analysis  
Dr. Sonia Dutt Sharma, Jaipur 055
15. Registered Trade Unions and Trade Union Law  
Neeraj Kumar Meena, Jaipur 058
16. Depictions of Minors Engaged in Sexually Explicit Conduct:  
Cyber Threat to Childhood  
Dr. Jyoti Kumawat, Jaipur 063
17. Role of Foreign Direct Investment in The Growth of Indian Economy  
Pavan Shrivastava, Anand Kumar Mishra, Shivpuri (Madhya Pradesh) 068

18.	<b>A Study of Attitude and Psychological Readiness of Pupil-teachers Regarding The Use of Mobile Technology in Teaching-Learning Process</b> Dr. Balvir Singh, Dr. Indu Rathee, Ms. Meena Kumari, Sonapat (Haryana)	074
19.	<b>Quality Practice Teaching : Need Of The Hour</b> Dr. Umender Malik, Rohtak (Haryana)	084
20.	<b>Constructing 21<sup>st</sup> century Teacher Education</b> Krishan Kant, Dr. Bimla Sahu, Sirsa (Haryana)	087
21.	<b>A Study of Teaching Competency Among Prospective Teacher Educators in Ghaziabad District</b> Ms. Neeta Sharma, Modinagar (Uttar Pradesh)	092
22.	<b>Teaching English to Mix Ability Learners</b> Pratibha Sisodia, Shairin Sisodia, Jaipur	096
23.	<b>Gender Issues in Madhya Pradesh</b> Praneeta Ojha, Gwalior (Madhya Pradesh)	100
24.	<b>Experiential Marketing</b> Bhavana Sharma, Jaipur	103
25.	<b>Liberalization: Development and Issues</b> Dr. Rajat Kumar Sant, Delhi	107
26.	<b>Recent Changes in Public Participation and its uses in MGNREGA Management: A Preliminary Study</b> Kamal Kumar Modi, Ladnun	116
27.	<b>Office Automation at 21<sup>st</sup> Century Work Place and its Effect on Women Workers</b> Dr. Shikha Sharma, Jaipur	119



## महर्षि दयानन्दाधारित संस्कृत महाकाव्यों में तत्कालीन राष्ट्र की दशा एवं दिशा

डॉ. आशुतोष पारीक व्याख्याता

सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर

ओ३म् आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी  
महारथो जायतां दोग्धी धेनुर्वाढानड्वानाशुः सपतिः पुरन्धिर्योषा जिष्णूरथेष्ठा सभेयो युवास्य  
यजमानस्य वीरो जायतां निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न औषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो  
नः कल्पताम् ॥<sup>१</sup>

राष्ट्रीयता के सर्वप्रथम समुद्घोषक ये शब्द समस्त भूमण्डल को ज्ञान-विज्ञान और निर्भय राष्ट्र की ओर ले जाते हैं और इसी गौरवपूर्ण राष्ट्रीय भावना के वैदिक विचारों को भारतीय जनमानस में पुनर्जीवित किया महर्षि दयानन्द सरस्वती ने। जिमर्न महोदय के अनुसार “राष्ट्रीयता आध्यात्मिक विषय है न कि राजनीतिक। धर्म के समान ही राष्ट्रीयता भी एक आत्मनिष्ठ मनोदशा है। साथ ही अनुभव, चिन्तन और जीवनयापन की पद्धति है।”<sup>२</sup> महर्षि अरविन्द ने स्वामी दयानन्द को ‘सत्य का निर्भीक योद्धा’ कहा था और इसी सत्यनिष्ठा से परिपूर्ण होकर स्वामी दयानन्द ने राष्ट्रचिन्तक के रूप में राष्ट्र को जागृत किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने देश की तत्कालीन दुर्दशा को देखकर उसके निवारणार्थ अपने समस्त अध्यात्म को समाज, राष्ट्र एवं धर्म से जोड़ दिया। गुरु विरजानन्द ने भी अपने प्रिय शिष्य को राष्ट्रधर्म का ही पाठ पढ़ाया और राष्ट्र के उद्धार को ही सच्ची दक्षिणा माना। पं. लेखराम ने इसी प्रसंग को इस प्रकार लिखा, “देश का उपकार करो, सच्छास्त्रों का उद्धार करो। मत-मतान्तरों की अविद्या मिटाओ और वैदिक धर्म फैलाओ।... मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषियों की निन्दा है और ऋषिकृत ग्रन्थों में नहीं, इस कसौटी को हाथ से मत छोड़ना।”<sup>३</sup>

अतः स्वामी दयानन्द का राष्ट्रीय व्यक्तित्व भारत के राष्ट्रवाद का आधार बना और इसी राष्ट्रीयता का दिग्दर्शन न केवल उनके द्वारा रचित साहित्य में अपितु उनके जीवन को आधार बनाकर लिखे साहित्य में भी होता है। स्वामी दयानन्द को नायक बनाकर प्रभूत संस्कृत साहित्य रचा गया जिसमें से महाकाव्य विधा में लिखे गए ग्रन्थ अपना विशेष महत्त्व रखते हैं, इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—

- पं. अखिलानन्द शर्मा कृत दयानन्ददिग्विजयम्
- पं. दिलीपदत्त शर्मा रचित मुनिचरितामृतम्
- मेधाव्रताचार्य विरचित दयानन्ददिग्विजयम्
- रमाकान्त शास्त्री प्रणीत दयानन्दचरितमहाकाव्यम्
- श्रीकान्ताचार्य कृत युगनिर्माता स्वामी दयानन्दः
- डॉ. धर्मवीर कुण्डू विरचित दयानन्दभास्करोदयः

समीक्ष्य महाकाव्यों में सुप्त राष्ट्रोत्थान का महान् संदेश सुनाई पड़ता है। इनमें तत्कालीन राष्ट्रदुर्दशा के

चित्रण के साथ राष्ट्र जागरण के उपायों को भी जनमानस के हृदय तक पहुँचाया गया है।

तत्कालीन राष्ट्र—स्वामी दयानन्द एक सच्चे राष्ट्रवादी थे। राष्ट्र के प्रति उनके विचारों की अभिव्यक्ति उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व में देखी जा सकती है। स्वामी दयानन्द राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों के प्रति पूर्ण जागरूक थे। सत्यार्थप्रकाश में स्वामी दयानन्द देश की दुर्दशा के बारे में लिखते हैं, “अब भाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है, जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है।”<sup>4</sup>

भारतीयों का प्राचीन गौरव, आदर्श, विश्वगुरुत्व, प्रशिक्षकत्व और विश्वमंगलरूप विदेशी आक्रान्ताओं के प्रभाव एवं हमारी अकर्मण्यता से विनष्ट हो चुका था—

आदर्शदेशों विश्वस्मिन् सभ्यतायाः प्रशिक्षकः।

द्वीपान्तरागत—जनशासने नाशितोऽभवत् ॥<sup>5</sup>

दासता के उस काल में सर्वत्र पाश्चात्य गौरव के चाकचिक्य से अभिभूत भारतीय अपना प्राचीन गौरव ही भुला चुके थे। आचार्यरमाकान्तोपाध्याय ने भारतीयता के विस्मरण के दंश को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

ब्रिटेनराज्यादित्भारतीयताऽधुना धुनोत्येवमहो पराहता।

तथा करिष्यामि यथा महौजसां, स्वराज्यमाहात्म्यमुदेतु मानसे ॥

क्वचित्तु बाबू ध्वनिरेष श्रूयते, क्वचिच्च बाबेति कटुश्रुतः स्वरः।

विलोक्यते क्वापि न भारतीयता, न राष्ट्रभक्तिः

परिवीक्ष्यतेऽधुना ॥<sup>6</sup>

आर्यावर्त के पतन की दुरवस्था को समीक्ष्य महाकाव्यों में अनेक प्रकार से अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। आचार्य मेधाव्रत ने आर्यावर्त के मानवीय जीवन, सत्यधर्म और संस्कारों की पतितवस्था के कारण दुःखी हृदय की वेदना को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

ग्रस्तोऽभूत्सत्यधर्माकां धर्मान्धाचार्यराहुणा।

अधान्धकारैराच्छन्ना सार्यलोकावनिर्यतः ॥

असत्यकृमिसंघातैर्विषाक्तैर्जनजीवनम्।

तरुमूलं ननु जग्धं नाशं यातुमुपस्थितम् ॥

सुसंस्कारान् वरनयान् शुभकर्मार्थसभ्यताम्।

घुणोपमाऽऽदन्तितरां प्रतीचीना कुसंस्कृतिः ॥

देशकल्याणलालसा संजज्ञे स्वामिनस्वान्ते।

दुर्दशावीक्षणात् क्षितेर्विपरीताकृतेस्तीव्रा ॥<sup>7</sup>

भारत की तत्कालीन दुर्दशा के चार कारणों को बताते हुए श्रीकान्ताचार्य लिखते हैं—

धर्म प्राणे भारते वेद—निन्दा, वेदज्ञानां ब्राह्मणानामुपेक्षा।

मिथ्यादृष्टिश्चान्धविश्वासिता च, चत्वारोऽमी हेतवो  
देशनाशे ॥<sup>8</sup>

संकीर्ण मानसिकता वाले भारत देश में स्वातन्त्र्य और संगठन की रुचि ही नहीं रह गई थी। स्वार्थवशीभूत इसी दशा को श्रीकान्ताचार्य इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं—

संकीर्ण—धर्म परिखा—मध्य—वर्ति—नृणां तदा।

न स्वातनयाभिलाषोऽभून् च संगठने रुचिः ॥<sup>9</sup>

समस्त भारत में अराजकता, लूटमार, प्राण और धन का हरण और भय का वातावरण था। आतंक के साये में जीवनयापन कर रहे भारतवासियों का वर्णन करते हुए मेधाव्रताचार्य लिखते हैं—

अराजकत्वादखिले स्वदेशे, विद्रोहिभिर्लुण्ठकसार्वभौमैः।

प्रजाधनप्राणहरैः प्रजान्तरातंकविन्ता ह्युदपादि नित्यम् ॥<sup>10</sup>

शासकवर्गदुर्दशा—ब्रिटिश शासनकाल में तो हमारे शासकों को भी अपमान के घूँट पीने पड़े तो सामान्यजन की तो क्या कथा? शासकवर्ग भी विलासिता और झूठे दम्भ में अपना पराक्रम भुला बैठे थे। भारत एवं शासकवर्ग की इसी दुर्दशा का वर्णन करते हुए श्रीकान्ताचार्य लिखते हैं—

निक्षिप्य दुर्दशा—गर्तं भारतं तस्य शासकाः।

परिवर्तितुमात्मानं राष्ट्रस्यैव प्रचक्रुः ॥

आसृष्टेऽश्वलितं भूपो वैदिकाचारमार्यकम्।

विलापयितुमामूलात् सफलं यत्नमाचरत् ॥<sup>11</sup>

शासक वर्ग अपने कर्तव्य से विमुख होकर भोगविलासादि में डूब चुके थे। स्वामी दयानन्द शासक वर्ग के इस पतन को देश के पतन का मुख्य कारण मानते थे और इसी कारण राजाओं को भी फटकार लगाने से नहीं चूकते थे। उदयपुरनरेश सज्जनसिंह की इसी दुर्दशा को प्रकट करते हुए पं. अखिलानन्द लिखते हैं—

दिवा सुषुप्तिर्विषयप्रसक्तिः,

स्वधर्मकार्यप्रथने विरक्तिः।

प्रवृत्तिरेकान्ततया रसेषु,

तदा समासीदतिनीरसेषु ॥<sup>12</sup>

शासक वर्ग के भोगविलास, मद्यमांसादिसेवन और पारस्परिक ईर्ष्या द्वेषादि के कारण समाज पूरी तरह से एक ऐसे विभाजन को प्राप्त हो चुका था, जिसमें एक दूसरे के लिए कल्याण की भावना न होकर केवल प्रतिशोध या अपमान के ही भाव थे—

ऐश्वर्यसंजातविलासितायां,

पंचेन्द्रियाणां विषयातिसंगात्।

प्रमादमग्नं परिपीय भूपा—

राज्येन साकं यशसाऽपि हीनाः ॥

परस्यरेष्वन्धनघर्षणोत्थ—

द्वेषाग्निदग्धामलहार्वभावैः।

मदान्धधीभिर्यवनाधिपाना—

मंगीकृता किंकरता नरेन्द्रैः ॥<sup>13</sup>

समाज में शिक्षा के अभाव ने भी शासकवर्ग के पतन को बढ़ाया और इसी कारण स्वामी दयानन्द 'वेदों की ओर लौटो' का नारा देकर समाज को वैदिकधर्म का पाठ पढ़ाया क्योंकि अवैदिक राजा के राज्य में वैदिकधर्म का आदर सम्भव ही नहीं। स्वामी दयानन्द द्वारा प्रदत्त इसी वैदिकधर्म की शिक्षा की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए पं. अखिलानन्द लिखते हैं—

न पूजनं वैदिककर्मभाजां,  
न माननं पूर्णविरागभाजाम् ।  
अमस्त भूयः सहसा तदानीं,

स्वशर्ममूलं किमतोऽधिकं स्यात् ॥<sup>14</sup>

शासक वर्ग की दुर्दशा ने समाज एवं राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। न्याय व्यवस्था की दुर्दशा ने समाज में अपराधों को और अधिक बढ़ा दिया—

अदण्ड्य—दण्डनं राष्ट्रे दण्ड्यानां चाप्यदण्डनम् ।

मृदुदण्डाश्च धूर्तेषु वर्धयन्त्यपराधिनः ॥<sup>15</sup>

भाषा समस्या— भारत की भाषा समस्या इतनी गम्भीर थी कि विदेशियों ने विदेशी भाषा में शिक्षण प्रारम्भ कर दिया और विरोध का कोई सम्मिलित स्वर नहीं उठ सका। भाषा, वेश-भूषा और धर्म के आधार पर विभाजित भारत में आर्यभाषा के स्थान पर आंग्लभाषा पढ़ाई जा रही थी—

भाषा—भूषा—वेशतो धर्मतश्चा—

ऽनार्यमार्यासंस्कृतिं ग्राह्यन्ति ।

शिक्षाक्षेत्रे पारसीकाऽरवीका,

चांग्ली भाषा ध्याप्यते नार्यभाषा ॥<sup>16</sup>

एक राष्ट्रीय भाषा के अभाव ने हमारे आचार—विचार में भी अलगाव उत्पन्न कर दिया। इसी अलगाव को श्रीकान्ताचार्य इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं—

नैवास्तित्वे भारतस्यास्ति भाषा,

सर्वव्याप्ता शासकस्यैकभाषा ।

भाषामूला संस्कृतिः वैदिकी तु नो,

नैवाचारे नो विचारे च माति ॥<sup>17</sup>

राष्ट्रजागृति के उपाय— राष्ट्रीय विचारधारा के कवि युगधर्म के संस्थापक होते हैं। डॉ. रमणलाल तलाटी के शब्दों में "राष्ट्रीय जागरण के प्रयास में अतीत भारत का गौरव — गान, भारतमाता की पराधीनताकालीन पीढाजनक स्थितियों का चित्रांकन, दलित एवं पीडितजन समाज का सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक उत्थान व समाज—निर्माण का कार्य सामान्यतः युगधर्म माना जाता है। राष्ट्रीय काव्यधारा के कवियों ने कभी एक पक्ष उजागर किया

तो कभी दूसरा।" वैदिककालीन उसी प्राच्य गौरव के पुनः स्मारक महर्षि दयानन्द का वर्णन करते हुए आचार्य मेधाव्रत लिखते हैं—

पुरातनीं भारतभाग्यसम्पदं,  
गतां महोत्कर्षिगिरीन्द्रमस्तकम् ।  
विनिर्विशन् वैदिककालशालिनीं,  
जनान्य इत्थं समबोधयन्मुनिः ॥<sup>18</sup>

राष्ट्र के विकास में ही व्यक्ति का विकास और व्यक्ति के विकास में ही राष्ट्र का विकास निहित है। अतः राष्ट्रहित जनजागृति के बिना सम्भव नहीं। परतन्त्रता दुःख का मूल है और परतन्त्र देश में जनकल्याण के भाव का सर्वथा अभाव ही रहता है। अतः स्वतन्त्रता को सुख का मूल बताते हुए श्रीकान्ताचार्य लिखते हैं—

पराधीनदेशे जनो नैव धर्मम्,  
न कर्तव्यमाज्ञातुमीष्टं कथंचिद् ।

विकासावरोधः सदा पारतनये,

ततः सौख्यमूलं हि स्वातनयमाहुः ॥<sup>19</sup>

राष्ट्रहित का आधार तपस्या एवं त्याग है। ऐसे त्यागमय तपोमूर्ति महर्षि दयानन्द के त्याग एवं जनोपकारभावों को अभिव्यक्त करते हुए मेधाव्रताचार्य लिखते हैं—

ज्ञानरत्नाकरादात्मा लब्ध्वा मे मेघवद्वसान् ।

जनतोपकृतौ सज्जो जीवनार्पणनिर्णयः ॥<sup>20</sup>

महर्षि दयानन्द के सम्पूर्ण जीवन का एकमात्र लक्ष्य राष्ट्रजागरण ही था, जिसे पं. अखिलानन्द इस प्रकार दर्शाते हैं—

धर्मोदयाय जनिमाप्तवतां समस्त—

लोकोपकारकरणाय वपुर्भृतां या ।

लोके स्थितिर्दुरितनाशकारी समुक्ता,

सा कोविदैरवगताखिलवेदतत्त्वैः ॥<sup>21</sup>

स्वातनयप्राप्ति के लिए मनोवचनकर्म से प्रयत्न करने की प्रेरणा प्रदान करते हुए श्रीकान्ताचार्य लिखते हैं—

इदानीन्तनो धर्म एषः समेषाम्,

तनूभिर्मनोभिर्वचोभिश्च भूयः ।

महासंघभूताः स्वस्वाधीनतायै,

चरेम प्रयत्नान् पुनर्जीवनाय ॥<sup>22</sup>

प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता की महत्ता को स्पष्ट करते हुए श्रीकान्ताचार्य ने लिखा—

विकासो हि देशस्य स्वाधीनतायाम्,

प्रजाशासनं स्यात् प्रजाया हिताय ।

स्वयं स्वस्य भोः ? सविधानं विरच्य,

स्वयं पालयन्तो भवेमाशु धन्याः ॥<sup>23</sup>

स्वतन्त्रभारत का आधार वेद ही है। अतः वेदोक्त संस्कृति के आश्रय को राष्ट्र का आधार बताते हुए श्रीकान्ताचार्य लिखते हैं—

वेदोक्तायाः संस्कृतेराश्रयेण,  
वेदाज्ञा याः साध्वनुष्ठानतश्च।

वेदोक्तस्थाऽऽचार—मार्गस्य योगात्,

क्षिप्रं राष्ट्रं भावि भद्र! स्वतन्त्रम् ॥<sup>24</sup>

शासक वर्ग पर महर्षि का प्रभाव— महर्षि दयानन्द का पूर्ण विश्वास था कि शासकवर्ग यदि वैदिकधर्मानुयायी होकर सत्कर्मशील हो जाएँ तो प्रजा स्वयं सद्गुणों की ओर प्रेरित होगी। स्वदेशी राज्य विदेशी राज्य से बेहतर ही होता है।<sup>25</sup>

अतः उदयपुर नरेश पर महर्षि के प्रभाव और उनमें आए परिवर्तन को अभिव्यक्त करते हुए पं. अखिलानन्द लिखते हैं—

मुहुर्विलोक्याय मुनीश्वरस्य, समस्तभावेन स राजवर्यः।

समाधियोगं परमात्मदृष्टेः, प्रसन्नतामाप तथैव चक्रे ॥

प्रसंगतः सोऽध्ययनस्य तत्र, मुदैव वैशेषिकसूत्रभाष्यम्।

पतंजलेर्योगपदानुवादं, समध्यगीप्याथ मुनेः प्रसादात् ॥

मनुप्रदिष्टां नियमस्य रीतिं, क्रियामपि प्राणनिरोधभूताम्।

स योगमार्गस्य ऋषिप्रभावाद्वाप सार्वामपि शर्ममूलाम् ॥<sup>26</sup>

राष्ट्रभूमि के प्रति मातृभाव— मातृभूमि के प्रति नमन करते हुए मेधाव्रताचार्य ने पराधीनता एवं राष्ट्रदुर्दशा के कारण मलिनमुख भारतमाता का इस प्रकार वर्णन किया है—

मातर्महेश्वरसमर्पितरत्नगर्भे! पुण्यात्परलज्जनयित्रि  
सुपुण्यभूमे!

चारिायवत्सलसुवत्सपवित्रितांगे! त्वां के नमन्ति न जनाः  
सुपवित्रितांगे! ॥

मातः कथं तव मुखं मलिनाम्बुजश्रिशीले तवाक्षियुगलं  
कथमश्रुवर्षि!

गात्रं बिभर्षि कृशमंगं कथं वदान्ये! पश्यामि हा तव  
दशामतिशोचनीयाम् ॥<sup>27</sup>

भारतमाता को सुनिबद्धमूला सम्बोधित कर दासता से मुक्ति का दृढ़ विश्वास प्रकट करते हुए मेधाव्रताचार्य लिखते हैं—

मा त्वं विषीद जनयित्रि पवित्रवृत्ते!

स्वीयां निभाल्य कुदशां कुदशानभिज्ञे!

कस्यानिशं भुवि दशा परिणामशीला,

दृष्टा सुशीलवति! सा सुनिबद्धमूला ॥<sup>28</sup>

राष्ट्रहितकामना— युगधर्म के पोषक समीक्ष्य साहित्य ने राष्ट्रकल्याण के भावों से जनमानस को ओतप्रोत करने भरसक प्रयास किया। राष्ट्रहित की कामना करते हुए पं. अखिलानन्द लिखते हैं—

दुर्दशा दुर्दशां यातु सुदशा यातु भारतम्।

इति प्रार्थितवानीशमात्मोत्तेजनया यतिः ॥<sup>29</sup>

वहीं पं. अखिलानन्द वैदिकधर्मपथ का अनुगमन करते हुए भारत के प्राच्य गौरव की पुनः प्राप्ति एवं विश्वगुरु के रूप में जय-जयकार की भविष्यवाणी करते हैं—

यथा समस्ते भुवने विजृम्भतां,

स वैदिको धर्मपथः सदातनः।

तथा भवन्निः क्रियतामसंशयं,

जयो भविष्यत्यखिलेऽपि भूतले ॥<sup>30</sup>

राष्ट्रचिन्तन एवं कल्याण महर्षि दयानन्द का प्रमुख उद्देश्य था। अतः अनार्यभाव को प्राप्त हुए भारतीयों में आर्यत्व की उत्पत्ति के लिए प्रार्थना करते हुए महर्षि के शब्दों को पं. अखिलानन्द इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं—

आर्यावर्तमनार्याणामावर्तं बहवो नराः।

कल्पयन्ति मनुष्याणां धर्मनाशनतत्पराः ॥

दयामया निराधार! जगदीश्वर! सत्वरम्।

भारते करुणादृष्टिं कुरु भारतवत्सल! ॥<sup>31</sup>

राष्ट्रीय एकता— सम्पूर्ण देश में व्याप्त विविध भेदभावों के निवारणार्थ महर्षि दयानन्द ने राष्ट्रीय एकता का समुद्घोष किया। एक भाषा, एक लिपि, एक धर्म एवं एक ही ईश्वर के ऐक्यभाव के समुत्पादनार्थ पं. अखिलानन्द लिखते हैं—

उपस्थितोऽयं समयोऽस्ति धार्मिकाः, परस्परं मैयामलं  
विभाव्यताम्।

विसृज्यतां भिन्नमतानुवर्तनं, प्रवर्धतां वेदमतानुवर्धनम् ॥

न यावदस्मिंजगतीतलेऽखिले, नवीनानामतवादकल्पनाः।

विनाशमेष्यन्ति न तावदागता, भविष्यति श्रीः कथमेकदेशगा ॥

विलोक्यतां वेदचतुष्टयी परा, निवार्यतामन्धपरम्पराऽपरा।

निवेश्यतां धर्मपथे मतिः स्थिरा, न काऽप्यतो मे कथनाप्यलं  
परा ॥<sup>32</sup>

अतः संघे शक्तिः कलौ युगे की भावना को अभिव्यक्त करते हुए श्रीकान्ताचार्य ने संगठित भारत को ही स्वाधीनता का एकमात्र उपाय एवं लक्ष्य बताया—

संघीभूता चेद् भवेद् राष्ट्रशक्तिः,

जेतुं विश्वं कल्पतां यत् पुराऽभूत्।

कर्तव्यानां ज्ञापनं चेज्जनानाम्,

हस्तस्था नो देश—स्वाधीनता तु ॥<sup>33</sup>

आर्यभाषा राष्ट्रभाषा— स्वामी दयानन्द हिन्दी को ही भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में देखते थे क्योंकि एक भाषा के अभाव ने आर्यावर्त को भाषागत भेदभाव का एक ऐसा ब्रण प्रदान कर दिया जिसके कारण भारत कभी संघटित नहीं बन सका और इसी कारण स्वामी दयानन्द ने एक भाषा एक राष्ट्र की बात कही। भारत की स्वतन्त्रता के दो मार्गों के अन्तर्गत राष्ट्रभाषा के प्रचार और व्यापक आन्दोलन की

आवश्यकता की चर्चा करते हुए श्रीकान्ताचार्य लिखते हैं—

द्वी पन्यानावस्वतन्त्रस्य चास्य,  
देशस्यासाते च स्वातनयहेतुः।  
मुख्यो राष्ट्रे राष्ट्रभाषाप्रसारः,  
दास्यानुक्त्यै व्यापकान्दोलनं च ॥<sup>34</sup>

आर्यभाषा को ही राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने के महर्षि दयानन्द के दृष्टिकोण को और अधिक बल प्रदान करते हुए श्रीकान्ताचार्य लिखते हैं—

हिन्दी हिन्दुस्तानराष्ट्रस्य भाषा,  
हिन्द्या हिन्दूसंस्कृते शीघ्रबोधः।  
भेरीनादैः स्पष्टमुद्घोषयेम,  
भाषाऽस्माकं भारती भारताः स्मः ॥  
दौर्भाग्यान्नो दीर्घदास्यं गता स्मः,  
नष्टप्राद्या नो विवेकोऽपि विद्धः।  
राष्ट्रीयया नश्चेतनैवात्र लुप्ता,  
तस्माद् हिन्दी—लेखकानामभावः ॥<sup>35</sup>

भारतगौरवप्रदर्शन—भारतीय जन दासता से इतने त्रस्त हो गए थे कि वे अपनी योग्यता और प्राचीन वैभव को भी भूल चुके थे और उस वैभव एवं श्रेष्ठता को पाने की बात तो वे सपने में भी नहीं सोच सकते थे। अतः महर्षि दयानन्द ने भारतीयों में राष्ट्रगौरव के उन्हीं भावों को फिर से नई चेतना प्रदान की और इसी नवजागरण के प्रतीक बने उन पर लिखे गए ग्रन्थ। भारत के आत्मसम्मान एवं श्रेष्ठगुणों की याद दिलाते हुए आचार्य रमाकान्त लिखते हैं—

अहिंसया सत्यबलेन भास्वरो,  
ह्यचौर्यभावेन परिग्रहं विना।  
भवेद् यदि ब्रह्मगतश्च तापस—

श्चिरादसौ ना नितरां सुखायते ॥<sup>36</sup>

इसी प्राचीन ऋषि-मुनियों के त्यागमय एवं तपोमय जीवन को स्मरण करते हुए मेधाव्रताचार्य लिखते हैं—

अगस्त्यकण्वर्षिवरोत्तमाश्रमाः,  
सहस्रशिष्यालिविभूषितोत्तजाः।  
मखाग्निधूमावृतवायुमण्डला,  
निजार्थभूमौ व्यलसन् युगे-युगे ॥<sup>37</sup>

प्राचीन भारत शिक्षा क्षेत्र में तो समस्त भूमण्डल में विख्यात था। यहाँ के विश्वविद्यालय सम्पूर्ण विश्व के लिए तिलकरूप थे। आर्यसंस्कृति के इन्हीं स्तम्भों के महत्त्व को बताते हुए मेधाव्रताचार्य लिखते हैं—

काशीतक्षशिलाविशालमिथिलाश्रीविश्वविद्यालया—  
नालन्दादिमहाविहारमरणयो रेजुयुगे मध्यमे।

नानाशास्त्रचणाः कलागमविदो विद्यार्थवाः पण्डिता—

येभ्यो निर्ययुरार्यसंस्कृतियुता विश्वम्भरावर्तिनः ॥<sup>38</sup>

अतः समीक्ष्य महाकाव्यों ने युगपरिस्थितिजन्य समस्याओं के वर्णन के साथ-साथ उनके समाधान के उपाय भी बताए। समीक्ष्य कविगण अपने राष्ट्र को सुख-समृद्धि, शान्ति, ज्ञान और गौरव के उत्कर्ष से युक्त देखना चाहते थे। अतः एव राष्ट्रीय चेतना से उद्बलित अन्तःकरण वाले स्वामी दयानन्द के समान ही इन कवियों के समीक्ष्य महाकाव्य दिखाई देते हैं। वस्तुतः ये महाकाव्य राष्ट्रभक्तिकाव्य ही हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:—

1. यजुर्वेद 2/2/22
2. नैशनेलिटी एण्ड गवर्नमेण्ट – जिमर्न, पृष्ठ सं 59
3. महर्षि दयानन्द का जीवन चरित – पं. लेखराम संकलित, पृष्ठ सं. 47
4. सत्यार्थप्रकाश – महर्षि दयानन्द सरस्वती, अष्टम समुल्लास
5. युगनिर्माता स्वामी दयानन्दः – श्रीकान्ताचार्य, 1/47
6. श्रीदयानन्दचरितमहाकाव्यम् – आचार्यरमाकान्तोपाध्याय, 3/77-78
7. दयानन्ददिग्विजयम् – मेधाव्रताचार्य, 12/133-136
8. युगनिर्माता स्वामी दयानन्दः – श्रीकान्ताचार्य, 12/78
9. वही, 1/31
10. दयानन्ददिग्विजयम् – मेधाव्रताचार्य, 2/45
11. युगनिर्माता स्वामी दयानन्दः – श्रीकान्ताचार्य, 1/40-41
12. दयानन्ददिग्विजयम् – पं. अखिलानन्द शर्मा, 15/8
13. दयानन्ददिग्विजयम् – मेधाव्रताचार्य, 2/26-27
14. दयानन्ददिग्विजयम् – पं. अखिलानन्द शर्मा, 15/9
15. युगनिर्माता स्वामी दयानन्दः – श्रीकान्ताचार्य, 6/75
16. वही, 8/106
17. वही, 8/105
18. दयानन्ददिग्विजयम् – मेधाव्रताचार्य, 1/13
19. युगनिर्माता स्वामी दयानन्दः – श्रीकान्ताचार्य, 4/12
20. दयानन्ददिग्विजयम् – मेधाव्रताचार्य, 11/72
21. दयानन्ददिग्विजयम् – पं. अखिलानन्द, 21/6
22. युगनिर्माता स्वामी दयानन्दः – श्रीकान्ताचार्य, 4/13
23. वही, 4/30
24. वही, 8/28
25. “कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह

सर्वापरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपात-शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूण सुखदायक नहीं होता है।' सत्यार्थप्रकाश - महर्षि दयानन्द सरस्वती, अष्टमसमुल्लास

26. दयानन्ददिग्विजयम् - पं. अखिलानन्द, 15/12-14
27. दयानन्ददिग्विजयम् - मेधाव्रताचार्य, 11/54-55
28. वही, 11/58
29. दयानन्ददिग्विजयम् - पं. अखिलानन्द शर्मा, 5/67
30. वही, 11/18
31. वही, 7/49-50
32. वही, 11/31-33
33. युगनिर्माता स्वामी दयानन्दः - श्रीकान्ताचार्य, 8/9
34. वही, 8/105-106
35. वही, 8/111-112
36. श्रीदयानन्दचरितमहाकाव्यम् - आचार्यरमाकान्तोपाध्याय, 1/69
37. दयानन्ददिग्विजयम् - मेधाव्रताचार्य, 10/113
38. वही, 10/114

#### सहायक ग्रंथ सूची:-

1. आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय - डॉ. भवानीलाल भारतीय, 1985 ई. गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली
2. ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन - डॉ. भवानीलाल भारतीय, 2025 वि. रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत।
3. सत्यार्थप्रकाश - स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय, श्रीमती परोपकारिणी सभा, अजमेर
4. दयानन्द जीवनी साहित्य - पं. विश्वनाथ शास्त्री, 2018 वि., वैदिक यन्त्रालय, अजमेर
5. दयानन्ददिग्विजयम् - पं. अखिलानन्द शर्मा, 2027 वि., आर्यधर्म प्रकाशन, शामली, उ.प्र.
6. दयानन्ददिग्विजयम् - आचार्य मेधाव्रत, 1995 ई., कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, नरेला, दिल्ली
7. श्रीदयानन्दचरितमहाकाव्यम् - आचार्य रमाकान्तोपाध्याय
8. दयानन्द साहित्य सर्वस्व - डॉ. भवानीलाल भारतीय,

1983 ई., महर्षि दयानन्द वैदिक अनुसन्धान पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

9. नवजागरण के पुरोधः : स्वामी दयानन्द सरस्वती - डॉ. भवानीलाल भारतीय, 1983 ई., वैदिक पुस्तकालय, श्रीमती परोपकारिणी सभा, अजमेर
10. युगनिर्माता स्वामी दयानन्दः - श्रीकान्ताचार्य, 1991 ई., नागप्रकाशक, दिल्ली
11. दयानन्दभास्करोदयः - डॉ. धर्मवीर कुण्डू, 2011 ई., ग्राम टिटौली, जिला रोहतक
12. महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवनीपरक संस्कृत काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन - डॉ. धर्मवीर, 2011 ई., श्री घुडमल पट्टलाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी, राजस्थान।



## वाल्मीकि रामायण कालीन समाज में नारी के अधिकार

डॉ. प्रीती गुप्ता

पूर्व शोध छात्रा, डी. ई. आई., दयालबाग, आगरा (उत्तरप्रदेश)

भारत में प्राचीन काल से ही लिंग पर आधारित पूर्वाग्रहों को मिटाने के लिये प्रयास किये जाते रहे हैं जिनमें स्त्रियों के लिये यह प्रयास रहा है कि स्त्रियाँ सही अर्थों में पुरुष के समान ही अधिकारों का उपभोग कर सकें। भारतीय संविधान में सभी के लिये प्रतिष्ठा और अवसर की समानता तथा व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित करने की बात की गई है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15(2), 15(3), 39(घ), 42, 43, 51(क) आदि विशेष रूप से स्त्री को अधिकार प्रदान करते हैं।<sup>1</sup>

महर्षि वाल्मीकी विरचित रामायण भारत देश की सांस्कृतिक गरिमा का भव्यतम प्रतीक एवं अमूल्य ग्रन्थ है। अपने इस ग्रन्थ में महर्षि ने स्त्री की मर्यादा, उसके वैशिष्ट्य, उसकी उत्कृष्टता, उसकी साधना, और त्याग की प्रतिष्ठा के द्वारा तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति को प्रस्तुत किया है। यद्यपि रामायण में राम-सीता के चरित्र का निबद्धन है तथापि परम्परा ने राम के चरित्र को ही महत्त्व प्रदान किया है, किन्तु महर्षि वाल्मीकि ने सीता के चरित्र को ही महत्त्वपूर्ण मानते हुए स्पष्ट निर्देश दिया है कि—

“कृतस्त्वं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्”<sup>2</sup>

सम्पूर्ण रामायण काव्य में सीता का चरित्र ही महत्त्वपूर्ण है रहस्य यह है कि कवि ने रामायण में स्त्री के महत्त्व और उत्कर्ष को स्वीकार कर उसे समाज की आधारशिला माना है। सम्प्रति स्त्रियों के अधिकार और स्त्री पुरुष समानता का जो प्रश्न सामने आता है उसको वाल्मीकी ने पहले ही देख लिया था और पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी वे सभी अधिकार प्रदान किये जो गरिमामय एवं संघर्ष रहित जीवन जीने के लिये आवश्यक थे।

सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप यद्यपि विवाहोपरान्त पितृकरण से उद्धार होने के लिये व्यक्ति सन्तान के रूप में पुत्र की कामना करता था तथापि समाज में पुत्री का जन्म भी हर्ष का विषय था। पुत्री को ‘कन्यारत्न’ मानकर पालित पोषित किया जाता था। राजा जनक ने जब क्षेत्र (खेत) में हल चलाते हुए धूल में लिपटी एक कन्या को देखा तो उन्होंने स्नेहवश उस कन्या को गोदी में उठाकर कहा यह मेरी बेटी है—

ममेयं तनयेत्युक्त्वा स्नेहो मयि निपातितः।<sup>3</sup>

सीता को पाकर वे इतने प्रसन्न थे कि मानों उन्होंने कोई बहुत बड़ी समृद्धि प्राप्त कर ली हो। तत्पश्चात् उन्होंने सीता को अपनी रानी को सौंप दिया। जिन्होंने बड़े लाड़ से सीता का लालन-पालन किया। राजा कुशनाभ का भी अपनी कन्याओं के प्रति अपार स्नेह था। माता-पिता द्वारा कन्याओं की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था भी की जाती थी। स्त्रियों की शिक्षा घर में रहकर ही सम्पन्न होती थी। शैक्षिक विषयों के रूप में उन्हें ललित-कलाओं की शिक्षा दी जाती थी क्योंकि ये ही विधाएँ उनके लिये उपयोगी थी। राजा कुशनाभ की कन्याएँ गाने, बजाने और नृत्य करने में प्रवीण थीं परन्तु इनकी शिक्षा उन्होंने कहाँ से प्राप्त की थी इसका उल्लेख रामायण में नहीं है। तारा भी नीतिशास्त्र की ज्ञाता थी। स्वयं बालि ने सुग्रीव से कहा था—सुषेण की पुत्री तारा सूक्ष्म विषयों का निर्णय करने में तथा नाना प्रकार के चिह्नों को समझने में सर्वथा निपुण है। तारा की किसी भी सम्मति का परिणाम कभी भी उल्टा नहीं होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तारा

ने नीतिशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी।<sup>1</sup> इसके अतिरिक्त तारा मंत्रों की ज्ञाता भी थी। वह पति की मंगल कामना हेतु स्वस्तिक वाचन करती हैं।<sup>2</sup>

पिता को पुत्रियाँ इतनी प्रिय होती थी कि उन्हें जीवन पर्यन्त सुखी देखने के लिये पितृवर्ग चिन्तित हो जाता था। इस कामना की पूर्ति के लिये राजा जनक ने सशर्त स्वयंवर आयोजित किया था।<sup>3</sup> वहीं राजा कुशनाभ ने अपने मन्त्रियों के साथ बैठकर कन्याओं के विवाह के विषय में विचार करने के लिये एक सभा बुलाई। उस समय वहाँ यह विचारणीय विषय था कि किस देश में किस समय और किस सुयोग्य वर के साथ उनका विवाह किया जाये ?<sup>4</sup>

विवाह के अवसर पर पिता स्वेच्छा से पुत्री को कन्या धन के रूप में हाथी-घोड़े, दास-दासियाँ, सोना-चाँदी, गहने, मूँगा-माणिक्य, रत्न आदि भेंट स्वरूप देते थे। इस धन पर केवल उस स्त्री का ही अधिकार होता था। राजा जनक ने भी सीता स्वयंवर के अवसर पर बहुत सा धन दिया था रामायण के अनुसार—

अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु।

गवां शत सहस्राणि बहूनि मिथिले रः॥

कम्बलानां च मुख्यानां क्षौमान् कोट्यम्बराणि च।

हस्त्य रथपादात् दिव्यरूपं स्वलंकृतम्॥

ददौ कन्याशतं तासां दासीदासमनुत्तमम्।

हिरण्यस्य सुवर्णस्य मुक्तानां विद्रुमस्य च॥

ददौ राजा सुसंद्ष्टः कन्याधनमनुत्तमम्।<sup>5</sup>

मनुस्मृति में भी छः प्रकार के स्त्रीधन के विषय में कथन है कि—

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीति कर्मणि ।

भ्रातृमातृपितृ प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्॥

अन्वाधेयं च यदत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ।

पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत्॥<sup>6</sup>

अर्थात् (1) विवाहकाल में अग्निसाक्षित्व के समय पिता आदि के द्वारा दिया गया (2) पिता के घर से पति के घर लायी जाती हुई कन्या के लिये दिया गया (3) प्रेम-सम्बन्धी किसी सुअवसर पर पति आदि के द्वारा दिया गया तथा (4) भाई (5) माता (6) पिता द्वारा विविध अवसरों पर दिया धन स्त्रीधन कहलाता है। विवाह के पश्चात् पतिकुल में या पितृकुल में प्राप्त हुए स्त्रीधन को प्राप्त करने का अधिकार उसके पति के जीवित रहने पर भी पुत्रों या पुत्रियों का होता है।

विवाह के पश्चात् वधू के रूप में भी स्त्री वर्ग को ससुराल पक्ष से सम्मान मिलता था। पत्नी के रूप में स्त्री पति की आत्मा थी—‘आत्मा हि दाराः सर्वेषां दार संग्रहवर्तिनाम्’।<sup>7</sup> श्वसुर एवं श्वश्रू भी अपनी पुत्रवधू को विशेष स्नेह करते थे। राम के साथ वनगमन के अवसर पर सीता को वल्कल वस्त्रों में देखकर राजा दशरथ ने नाना प्रकार से विलाप किया था तथा कोषाध्यक्ष से कहकर सीता के लिये चौदह वर्ष के लिये पर्याप्त गहने और वस्त्र मँगवाए—

वासासि च वराहाणि भूषणानि महान्ति च ।

वर्षाप्येतानि संख्याय वैदेः क्षिप्रमानयः॥<sup>8</sup>

स्त्रियाँ पति के साथ युद्धादि में जाने की भी अधिकारिणी थी। देवासुर संग्राम में कैकेयी राजा दशरथ के साथ सारथी के रूप में गई थी। वहाँ राजा के घायल हो जाने पर वे उन्हें रणभूमि से दूर ले गईं और उनकी रक्षा की—

अपवाह्य त्वया देवि संग्रामानप्यचेतनः ।

तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया॥<sup>9</sup>

रामायण काल में यद्यपि पुरुष ही राज्याधिकारी होते थे तथापि पति की अनुपस्थिति में स्त्री को भी राज्य का भार सँभालने का अधिकार था। राम के वन गमन के अवसर पर स्वयं महर्षि वशिष्ठ जी ने राम की शासन सत्ता उनकी पत्नी (सीता) को सौंप देने को कहा था—

अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम्॥

आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम् ।

आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम्॥<sup>10</sup>

अर्थात् राम के लिये प्रस्तुत हुए राजसिंहासन पर उनकी पत्नी सीता बैठेंगी। सम्पूर्ण गृहस्थों की पत्नियाँ उनका आधा अंग हैं इस तरह सीता देवी भी श्रीराम की आत्मा हैं; अतः उनकी जगह ये ही इस राज्य का पालन करेंगी।

वानरराज बालि की मृत्यु के पश्चात् विलाप करती हुई तारा को समझाते हुए हनुमान जी ने कहा था कि—

सर्वे च हरिशार्दूलाः पुत्राय तवा दः । हर्षक्षपतिराज्यं च  
त्वत्सनायमनिन्दिते॥

ताविमौ शोकसंतप्तौ शनैः प्रेरय भामिनि । त्वया

परिगृहीतोऽयम दः शास्तु मेदिनीम्॥<sup>11</sup>

अर्थात् सती साध्वी देवि! ये सभी श्रेष्ठ वानर, तुम्हारे पुत्र अंगद तथा वानर और भालुओं का यह राज्य सब तुमसे ही सनाथ हैं तुम्हीं इन सबकी स्वामिनी हो। ये अंगद और सुग्रीव दोनों ही शोक से संतप्त हो रहे हैं अतः तुम इन्हें भावी कार्य के लिये प्रेरित करो जिससे तुम्हारे अधीन रहकर अंगद पृथ्वी का शासन करें।

स्त्रियों को अपने पास सम्पत्ति आदि रखने का भी अधिकार था कौशल्या के पास भी एक सहस्र गाँव थे जिनसे वे अपने आश्रितों का भरण-पोषण करती थी। स्वयं लक्ष्मण जी ने कहा था—

कौशल्या विभूयादार्या सहस्रं मद्भिधानिपि ।

यस्याः सहस्रं ग्रामाणां सम्प्राप्तमुपजीविनाम्॥<sup>12</sup>

कौशल्या पितृ पक्ष से मिले थे अथवा ससुराल पक्ष से इसका वर्णन रामायण में नहीं मिलता है।

रामायणकाल में स्त्रियों को धार्मिक अधिकार भी प्राप्त थे। वे अपने पति के साथ यज्ञ में सहभागिनी होती थीं राजा दशरथ ने भी पुत्रेष्टि यज्ञ में अपनी पत्नियों के साथ यज्ञ की दीक्षा ली थी— श्रीमांसह पत्नीभी राजा दीक्षामुपाविशत्॥<sup>13</sup>

पत्नी के अभाव (अनुपस्थिति) में पति के द्वारा धार्मिक कृत्यों का सम्पादन सम्भव नहीं था। तारा ने श्री राम से कहा था—

शास्त्रप्रयोगाद् विविधा वेदानन्यरूपाः पुरुषस्य दाराः।

दारप्रदानाद्धि न दानमन्यत् प्रदृश्यते ज्ञानवतां हि लोके।<sup>17</sup>

अर्थात् शास्त्रोक्त यज्ञ याज्ञादि कर्मों में पति और पत्नी दोनों का संयुक्त अधिकार होता है। पत्नी को साथ लिये बिना पुरुष यज्ञकर्म या अन्य धार्मिक अनुष्ठान नहीं कर सकता है। स्वयं श्रीराम ने अपने अश्वमेध यज्ञ में सीता के अभाव में सीता की स्वर्ण प्रतिमा की स्थापना की थी।<sup>18</sup> इसके पश्चात् भी प्रत्येक यज्ञ में जब-जब राम को धर्मपत्नी की आवश्यकता होती, श्री रघुनाथ जी सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा बनवा लिया करते थे।<sup>19</sup> इस प्रकार पत्नी के अभाव में पति के लिये धार्मिक अनुष्ठान करना सम्भव नहीं था परन्तु स्त्रियाँ अकेले ही देवपूजा करने की अधिकारिणी थीं। वे व्रत-उपवास आदि करती थीं। राम के राज्याभिषेक से पूर्व कौशल्या भी देव मन्दिर में बैठकर अर्चना करती हैं।<sup>20</sup>

वाल्मीकि रामायण में महर्षि ने स्त्री को अवध्या बताकर उसे सुरक्षा का अधिकार दिया। भरत ने भी मन्थरा पर क्रोधित हो रहे शत्रुघ्न को समझाते हुए कहा था— “अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदा क्षम्यतामिति।” अर्थात् स्त्रियाँ सभी प्राणियों के लिये अवध्य होती हैं। यदि मुझे यह भय न होता कि श्रीराम मातृघाती समझकर मुझसे घृणा करने लगेंगे तो मैं भी इस दुष्ट आचरण करने वाली कैकेयी को मार डालता—

हन्यमहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टाचारिणीम्।

यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्।<sup>21</sup>

लंका में प्रवेश के समय स्वयं श्री हनुमान जी ने राक्षसी लंका पर उसे स्त्री समझकर मात्र एक लघु प्रहार किया। अपने प्रहार से गिरी हुई उस लंका को देखकर स्त्री समझकर हनुमान जी को उस पर दया आ गयी।<sup>22</sup> सूपर्णखों ने भी रावण को बताया था कि ‘श्रीराम ने स्त्री हत्या के दोष से बचने के लिये ही उसकी हत्या नहीं की थी।’ रामायणकालीन समाज में विधवाओं को भी सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। विधवाओं के प्रति समाज का दृष्टिकोण उदार था और वे उपेक्षित नहीं थी। समाज में कहीं भी विधवाओं का विलाप सुनाई नहीं देता था— ‘न पर्यदेवन् विधवा’<sup>23</sup> माँगलिक अवसरों पर भी विधवा को उपस्थित रहने का अधिकार था जबकि परवर्ती ग्रन्थों में विधवा की उपस्थिति अशुभ मानी गई थी। राजा के राज्याभिषेक के अवसर पर राजा दशरथ की सभी रानियों ने स्वयं अपने हाथों से सीता जी का मनोहर शृंगार किया था—

प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः।

आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम्।<sup>24</sup>

विधवा अपने भाई-बंधुओं से सुरक्षा एवं भरण-पोषण पाने की भी अधिकारिणी थी। रावण ने अपनी बहिन सूपर्णखों के विधवा हो जाने पर उसे दान, मान और अनुग्रह द्वारा यत्नपूर्वक संतुष्ट करने की बात कही— दानमानप्रसादैस्त्वां तोषयिष्यामि यत्नतः।<sup>25</sup> तथा

उसके रहने और सुरक्षा की व्यवस्था का भी पूरा प्रयत्न किया। बालि की मृत्यु के पश्चात् तारा सुग्रीव के साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत करती है।

इस प्रकार रामायणकाल में सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप स्त्रियों को अनेक अधिकार प्राप्त थे। व्यक्ति को जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर उसकी आवश्यकता थी। पुत्री, बहिन, पत्नी, पुत्रवधू, भ्रातृजाया, माता, श्वश्रू प्रत्येक रिश्ते में उसे आदर, प्रेम, सम्मान व न्याय मिला था। अतः तत्कालीन नारी को अबला, असहाय, पीडिता, शोषिता एवं अधिकार विहीना कहना पूर्णतः अनुचित होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची:—

1. भारत का संविधान (Bare Act), सेन्ट्रल लॉ एजेंन्सी, इलाहाबाद, 2006
2. गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित वा. रा./बालकाण्ड/4/6
3. वा. रा./अयोध्याकाण्ड/118/30
4. वा. रा./किष्किन्धाकाण्ड/22/13-14
5. वा. रा./किष्किन्धाकाण्ड/16/12
6. वा. रा./बालकाण्ड/66/15-16
7. वा. रा./बालकाण्ड/33/10
8. वा. रा./बालकाण्ड/74/3-5/2
9. मनु./9/194-195
10. वा. रा./अयोध्याकाण्ड/37/24
11. वा. रा./अयोध्याकाण्ड/39/15
12. वा. रा./अयोध्याकाण्ड/9/16
13. वा. रा./अयोध्याकाण्ड/37/231/2-24
14. वा. रा./किष्किन्धाकाण्ड/21/8-9
15. वा. रा./अयोध्याकाण्ड/31/22
16. वा. रा./बालकाण्ड/13/41
17. वा. रा./किष्किन्धाकाण्ड/24/38
18. वा. रा./उत्तरकाण्ड/91/25
19. वा. रा./उत्तरकाण्ड/99/8
20. वा. रा./अयोध्याकाण्ड/4/30
21. वा. रा./अयोध्याकाण्ड/78/22
22. वा. रा./सुन्दरकाण्ड/1340
23. वा. रा./युद्धकाण्ड/128/18
24. वा. रा./युद्धकाण्ड/128/17
25. वा. रा./उत्तरकाण्ड/24/321/2



## यजुर्वेद में वर्णित आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान

डॉ. विजय सिंह मीणा

जयपुर

यजुर्वेदीय दृष्टिकोण से आयुर्वेद अर्थात् चिकित्सा संबंधी विज्ञान का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। वेद में आयुर्वेद विज्ञान विषयक अनेक मंत्र उपलब्ध होते हैं। चारों वेदों के चार उपवेद हैं। आयुर्वेद-ऋग्वेद का उपवेद है।

चरक संहिताकार तथा सुश्रुत संहिताकार दोनों आयुर्वेदीय विद्वान् आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद स्वीकार करते हैं। विषय की अनुरूपता के कारण भी आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद ग्रहण किया गया है और इसीलिए इनमें अवयवावयवी सम्बन्ध है। यद्यपि आयुर्वेदीय ज्ञान का वर्णन चारों वेदों में यत्र-तत्र उपलब्ध होता है। तथापि अथर्ववेद में इसका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी आयुर्वेद का सम्बन्ध चारों वेदों से स्थापित किया है।<sup>1</sup>

**आयुर्वेद शब्दार्थ** – आयुर्वेद शब्द आयु और वेद से मिलकर बना है। अतः आयु और वेद पर विचार करना भी समीचीन प्रतीत होता है। आयु शब्द वेदों में अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है। यथा यजुर्वेद में देवा न आयु प्रतिरन्तु जीव से<sup>2</sup>, देवहितं यदाय<sup>3</sup>, शेरिषतायुर्गन्तो<sup>4</sup> इसी प्रकार आयु शब्द यजुर्वेद में अनेक मंत्रों में उपलब्ध होता है।<sup>5</sup> आयु शब्द के द्वारा मानव के लिए दीर्घायुष्य की कामना की गई है। इसी कारण वेद और आयुर्वेद में आयु संबंधी समान दृष्टिकोण प्राप्त होता है। क्योंकि वेद में दीर्घायुष्य की कामना है और आयुर्वेद द्वारा दीर्घायुष्य तथा आरोग्यत्व की प्राप्ति करना ही मुख्य प्रयोजन है।

अमर कोश में आयु शब्द का अर्थ परमाणु किया है। इसी प्रकार भाव प्रकाश में भी आयु विषयक ऐसा ही विचार उपलब्ध होता है।<sup>6</sup> स्वामी दयानन्द ने आयु शब्द का अर्थ 'जीवनम् एव प्राणधारणम्' किया है।<sup>7</sup>

आयुर्वेद से जीवन प्राप्तार्थ संपूर्ण साधन सम्पन्न शास्त्र का ग्रहण होता है। यह शास्त्र अनेक विधधा, चिकित्सा पद्धति का ज्ञापक और बहुविध शाखा-प्रशाखा सम्पन्न चिकित्सा विज्ञान को प्रकट करता है।

**आयुर्वेद विज्ञान के प्रमुख अंग** – आयुर्वेदीय ग्रंथों में आयुर्वेद के आठ अंगों का प्रतिपादन हुआ है जो निम्न प्रकार है –

१. शल्य २. शालाकय – (१. नाक, २. कान, ३. गला अक्षिविज्ञान दन्त विज्ञान) ३. काय चिकित्सा ४. भूत विद्या ५. कौमा भृत्य ६. अगदतंत्र ७. रसायन तंत्र ८. बाजीकरण। इस प्रकार उक्त आठ अंगों से युक्त चिकित्सा शास्त्र आयुर्वेद कहलाता है।

**आयुर्वेद में शरीर विज्ञान** – न्यायदर्शन में शरीर को भोगायतन कहा है।<sup>8</sup> यजुर्वेद में इस भोगायतन के विभिन्न अंगों का वर्णन उपलब्ध होता है जो इस प्रकार है—मुख, सिर, चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, मन, बुद्धि, बाहु, होस्त, ग्रीवा, उदर स्कन्ध, कटि प्रदेश, पीठ, भुजाओं के मध्यभाग, जानुनी, उरु और जंघा के बीच का भाग नाभि, चित्त, पायु, गुप्तांग, जंघाये, पैर, अंगुली, प्राण आदि मेरी प्रजायें हैं जो सदैव पक्षपात रहित न्याय धर्म से युक्त होकर राजा के तुल्य प्रतिष्ठित रहे।<sup>9</sup> वेद में इन्द्रियों से पवित्र कर्म करने का निर्देश भी प्राप्त होता है।<sup>10</sup>

यजुर्वेद में स्वस्थ रहने की कामना – यजुर्वेद के प्रथम मंत्र में अन्न और ऊर्जा की कामना की गई है। इसलिए श्रेष्ठतम कर्म के लिए प्रेरित करते हुए 'प्रजावती, अनमीवा और अयक्ष्मा' होने की प्रबल कामना की गई है। मनुष्य कर्म करता है। वह कर्म तब ही कर सकता है जब वह शरीर से स्वस्थ एवं प्रसन्न हो इसीलिए मंत्र में 'अनमीवा'<sup>11</sup> और 'अयक्ष्मा'<sup>12</sup> होने की प्रार्थना की गई है। अनमीवा की निरुक्ति करते हुए लिखा है 'अमीवो व्याधिर्न विद्यते यासु ता'<sup>13</sup>, अर्थात् जिनमें किसी प्रकार की व्याधि न हो अर्थात् रोग से रहित हो और अयक्ष्मा शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है 'न विद्यते यक्ष्मा रोग राजो यासु ता'<sup>14</sup> अर्थात् जिनमें राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं है।

इस प्रथम मंत्र में सविता देव से प्रार्थना की गई है कि हम शारीरिक, मानसिक, वाचिक रोगों से हम सदा बचे रहें। और स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें। जिस कारण हम श्रेष्ठतम कर्म में सदा संलग्न रहें। और अपनी आत्मिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील हो सकें। स्वामी दयानन्द ने लिखा है 'यतो नैव कश्चिद्रोगाख्यो विघ्नश्चोरश्च प्रबल कदाचित् भवेत् प्रजाश्व सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयु'<sup>15</sup>, अर्थात् जिससे प्रबल रोग विघ्न और चौरों का अभाव होकर प्रजा और पुत्रादि सब सुखों को प्राप्त हों यही श्रेष्ठ काम सब सुखों की खान है। इसी प्रकार अनेकों मंत्रों में मनुष्य के स्वस्थ रहने की कामना का उपदेश यजुर्वेद में उपलब्ध होता है।

वैदिक आयुर्विज्ञान – सांख्य शास्त्र के प्रणेता महर्षि कपिल का अन्वेषण यह है कि समस्त संसारस्थ प्राणी तीन प्रकार के दुखों से दुखित हो रहे हैं<sup>16</sup> और वह है—

1. आध्यात्मिक दुख – यह दुख दो प्रकार का है। शारीरिक दुख और मानसिक दुख। शारीरिक दुख भी दो प्रकार का होता है, एक तो नैसर्गिक और दूसरा त्रिदोष जन्य। भूख, प्यास आदि नैसर्गिक दुख है, क्योंकि इनकी उत्पत्ति में किसी बाहरी कारण की आवश्यकता नहीं होती। दूसरा त्रिदोष जन्य अर्थात् वात, पित्त तथा कफ की विषमता से जो दुख उत्पन्न होता है उसे त्रिदोष जन्य दुख कहते हैं। जैसे ज्वर, अतिसार आदि। मानसिक आध्यात्मिक दुख काम, क्रोधादि मनोविकारों से उत्पन्न होता है।
2. आधिभौतिक दुख – संसार के प्राणिमात्र तथा वृक्षादि स्थावर वस्तुओं से होने वाला दुख है।
3. आधिदैविक दुख— यह दुख अति वृष्टि, अनावृष्टि, शीतोष्णवात, वर्षा शनिपातादि आदि के द्वारा उत्पन्न होता है। इन दुखों में से कुछ मनोविकारों तथा त्रिदोषजन्य दुखों को दूर करने का उपाय आयुर्वेदादि ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। यजुर्वेद तथा वैदिक ग्रन्थों के अध्ययन के आधार पर दुख दूर करने के उपायों पर अनुपाद ही विचार प्रारंभ किया जा रहा है।

वेद में 'भुव'<sup>17</sup> पद का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। जिसका अर्थ है सब दुखों से छुड़ाने वाला भुव को अपान भी कहा है। इसलिए स्वामी दयानन्द ने 'भुव' पद का अर्थ करते हुए लिखा है कि 'यो

मुमुक्षूणां मुक्तानां स्वसेवकानां धर्मात्मनां सर्वं दुःखमपनयति दूरी करोति सो अपानो दयालुः श्वरोऽस्ति'<sup>18</sup> अर्थात् जो मुक्ति की इच्छा करने वाले भक्तों और अपने सेवकों धर्मात्माओं को सब दुखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है, इसलिए परमेश्वर का नाम भुव है। वेद में भुव शक्तिदुख नाशक शक्ति है। वह सृष्टि के पदार्थों तथा उनसे उत्पन्न क्रियाओं में विद्यमान है। दुखों को दूर करने के लिए औषधियों का ज्ञान तथा भेषजतत्त्व भी परमात्मा ने प्रदान किये हैं उनके विज्ञान से विविध प्रकार के रोगादि दुख दूर होते हैं।

सृष्टि के पदार्थों में भेषजीय गुण – पं. वीरसेन वेदश्रमी ने लिखा है कि 'इस संसार में पुरुष, गौ, अश्व, भेड़ एवं भेड़ी सभी के लिए रोग व दुख दूर कर सुख देने के लिए औषधि है। अर्थात् भुव शक्ति है, वह स्व अर्थात् सुख की प्राप्ति कराती है और भू प्राण जीवन देने एवं उसको बढाने वाली है। अत औषधियों में चिकित्सा विधियों में 'भूर्भुव स्व' विद्यमान है। यही परमात्मा का मार्ग है। यह मार्ग सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त है। भूर्भुव स्व के अभाव में सृष्टि का जीवन नहीं रह सकता।'<sup>19</sup> सूर्य, वायु, अग्नि, आदि के अभाव में सृष्टि का संचालन और प्राणी, वनस्पतियों, औषधियों का जीवित रहना असंभव प्रतीत होता है। इसीलिए वेद ने कहा कि 'भेषजमसि भेषजं गवेष्वाय पुरुषाय भेषजम्।' सुखं भेषाम्य भेष्यै।'<sup>20</sup> अर्थात् हे रुद्र आप भेषज रूप है हम लोगों के गौ, अश्व, मेढक और मेढी आदि पशुओं तथा पुरुष सब मनुष्यों के लिए भेषज है। अत औषधियों के सेवन से शरीर, आत्मा, पुत्र, मित्र और पशु आदि के दुखों को प्रयत्नपूर्वक दूर करना चाहिए।

वनस्पतियों में औषधीय गुण – यजुर्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि वनस्पति हमें शान्ति प्रदान करनेवाली होवे।'<sup>21</sup> अर्थात् वनस्पतियाँ हमारे रोगों, दुखों को दूर करने वाली हैं। औषधि वनस्पतियों में विविध प्रकार की रोगनाशक शक्ति विद्यमान है। औषधियों के स्वाद भी भिन्न-भिन्न होते हैं कोई तो खट्टी है, कोई मीठी है, कोई कड़वी (नीम, करेला) कोई तीखी चटपटी मिर्चादि जैसी है। कोई कषाय जैसे आवला होता है। इस प्रकार औषधियों में भिन्न-भिन्न गुण धर्म विद्यमान होते हैं।

औषधियों वनस्पतियों को उत्तम गुण युक्त करना –

वेद में औषधि, वनस्पतियों को उत्तम गुण युक्त कैसे करना चाहिये इस विज्ञान का उल्लेख निम्न मंत्र में द्रष्टव्य है—

आपो देवीरूपं सुजं मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाप्यं।

तासामास्थानादुज्जिह्वतामोषधय सुपिप्लता।'<sup>22</sup>

इस मंत्र का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि 'हे श्रेष्ठ वैद्य पुरुष! आप प्रशंसित मधुर आदि गुणयुक्त पवित्र जलों को उत्पन्न कीजिये जिससे उन जलों के आश्रय से सुन्दर फलों वाली सोमलतादि औषधियों की रक्षा करने योग्य प्राणियों के यक्ष्मा आदि रोगों की निवृत्ति के लिए प्राप्त होवे।'<sup>23</sup> मधुर जल से औषधि सिंचित करने से वनस्पति उत्तम गुणयुक्त होती है।

औषधियों से सार्वजनिक सुख – राजा को राज्य की प्रजा, पशु

आदि को नीरोगार्थ दो प्रकार के वैद्यों की व्यवस्था करनी चाहिए एक तो सुगन्धितयुक्त पदार्थों के होम से वायु, वर्षा, जल और औषधियों को शुद्ध करें। दूसरे वैद्य श्रेष्ठ विद्वान् जिन्हें निदानादि चिकित्सा के द्वारा सब प्राणियों को रोग रहित करना चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था के विना संसार में सार्वजनिक सुख होना अति कष्टसाध्य है।<sup>24</sup>

इसी प्रकार यजुर्वेद के स्वादयुक्त औषधियों को उसी के रस की भावना देकर अच्छी गुणयुक्त औषधि बनाने की चर्चा है।

स्वाद्दी त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृतामृततेन मधुमतीम्मधुमता  
सृजामि सं सोमेन।

सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे  
पच्यस्व।<sup>25</sup> यजु. 9९/9

तीव्र रस वाली औषधियों को तीव्र औषधि रसों से भावित कर तीव्र गुण युक्त करता हूँ। सर्व रोगापहारी गुण की औषधि को नाशरहित स्वादिष्ट गुणयुक्त सिद्ध करता हूँ। मंत्र के भावार्थ में स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि 'वैद्यक शास्त्र की रीति से अनेक मधुरादि प्रशंसित स्वादयुक्त अत्युत्तम औषधियों को सिद्ध कर उनके सेवन से आरोग्य को प्राप्त होना चाहिए।'<sup>26</sup>

यज्ञ द्वारा औषधियों की गुणवत्ता की वृद्धि का उपाय – वेद में सोमादि औषधियों को यज्ञ में हवि रूप में प्रयुक्त कर के उससे उत्पन्न मेघों के जल से अन्य औषधियों के सिंचन करने से अत्रादि औषधियों, वनस्पतियों की गुणवत्ता में अत्यन्त वृद्धि होती है। ये औषधियाँ रोगों को दूर करने में आशु फल प्रदायी होती हैं। अतः औषधियों को शुद्ध वृष्टि जल से सींचना अत्यन्त हितकारी है।<sup>27</sup> इसी प्रकार वेद में औषधियों की उत्तमता<sup>28</sup> उनकी परिपक्वता<sup>29</sup> की समीचीन व्यवस्था वैद्यों को करनी चाहिये। सब प्रकार की औषधियों के गुण कर्म जानना चाहिये<sup>30</sup> जिससे औषधियों की शीघ्र क्रियाशीलता युक्त बनाना आवश्यक है।<sup>31</sup>

औषधियों से रोग निवारण की कामना – यजुर्वेद के 9२वें अध्याय के ७६, ७७, ७८, ७९ इन मंत्रों में यह कहा गया है कि औषधियाँ असंख्य प्रभावशाली होती हैं इसीलिए रोगों को शीघ्र नष्ट करने वाली होती हैं।

हे औषधियों, अश्वत्थ, पलाश तुम्हारा निवास स्थान है। सूर्य, चन्द्र की रश्मियों का सेवन करते हुए हम देहधारियों को नीरोग बनाते रहिये। इसी प्रकार ओर भी मंत्रों में औषधियों से रोग निवारण की कामना की गई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, पृ. २३२
2. यजुर्वेद, २५/१५
3. यजुर्वेद, २५/२१
4. यजुर्वेद, २५/२२
5. यजुर्वेद,  
३६/८, ३७/१२, १८/२९, २१/२, ५/१७, ५/२

इत्यादि।

6. भावप्रकाश, पृ. १
7. यजुर्वेद, दयानन्द भाष्य, ५/२, ५/१७, २१/२
8. भोगायतनम् शरीरम्। न्यायभाष्य, पृ. ४३
9. यजुर्वेद २०/५, ६, ७, ८, ९, २५/२१
10. देखें वहीं, २५/२१
11. यजुर्वेद, १/१
12. वहीं देखें
13. यजुर्वेद, १/४, दयानन्द भाष्य, पृ. ४, ५
14. वहीं, दयानन्द भाष्य
15. वहीं भावार्थ, दयानन्द भाष्य
16. दुखत्रयाभिघातात्, सांख्यकारिका – १
17. यजुर्वेद, ३/५, ३६/३, ३/३७
18. पत्तचमहायज्ञविधि संध्याप्रकरण
19. वैदिक सम्पदा, पृ. १८७
20. यजुर्वेद, ३/५९
21. यजुर्वेद, २१/२१
22. यजुर्वेद, ११/३८
23. यजुर्वेद, ११/३८, दयानन्द भाष्य, द्वितीय भाग, पृ. ३५
24. वहीं, पृ. ३५
25. यजुर्वेद, १९/१
26. यजुर्वेद भाष्य, द्वितीय भाग, पृ. ३०४
27. यजुर्वेद, १९/२
28. यजुर्वेद, १२/९९
29. यजुर्वेद, १२/८०, देखें १२/७५
30. यजुर्वेद, १२/८१
31. यजुर्वेद, १/८३



## आज के सन्दर्भ में पुराणों में वर्णित नारी की स्थिति की प्रासंगिकता

सुमन लता

मधुवन, करनाल (हरियाणा)

पुराणों में नारी की प्रतिष्ठा एवं धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में उसके महत्त्व के विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। नारी के विषय में पुराणों में दो तरह की परस्पर विरुद्ध विचारधारा का दर्शन होता है। एकतः सांसारिक जीवन-यात्रा की सफलता में नारी को प्रधान हेतु मानकर उसकी महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। अपरतः आध्यात्मिक अभ्युन्नति के मार्ग में नारी को बाधा-स्वरूप मान कर उससे विरत रहने का उपदेश दिया गया है। तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर नारी-विषयक प्रशंसा वचनों का आधिक्य दिखाई पड़ता है। संसार से सर्वथा विरक्त होकर साधना में रत रहने वाले व्यक्ति के लिए निश्चय ही नारी संसर्ग पतन का कारण हो सकता है, किन्तु सांसारिक सुख दुख के बीच रहकर जीवन यापन करते हुए विहित क्रियाओं के अनुष्ठानपूर्वक त्रिवर्ग-साधन करने वाले गृहस्थ के लिए नारी का महत्त्व सर्वोपरि है। इस दृष्टि से भी नारी के शील स्वभावानुसार दो रूप बताये गये हैं- साध्वी और दुष्टा। पहली तो कुल का उद्धार करने वाली होती है और दूसरी पतन करने वाली।<sup>1</sup> इसीलिए कहा गया है कि स्वर्ग, कुल, यश, अयश, पुत्र, दुहितृ मित्र आदि नारी के अधीन हैं।<sup>2</sup> स्पष्टतः इस कथन से नारी की प्रतिष्ठा का परिज्ञान होता है।

पारिवारिक जीवन में नारी के तीन रूप विशेष महत्त्वपूर्ण हैं-कन्या, पत्नी और माता। पुराणों में कन्या के प्रति उदार दृष्टिकोण मिलता है। विष्णु पुराण में मारिषा नामक कन्या को रत्न की कोटि में रखा गया है। ऐसा वर्णन है कि उसका संवर्धन राजा सोम ने स्वयं अपनी किरणों से किया था।<sup>3</sup> ब्रह्मा की पुत्री शतरूपा के विषय में विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्य पुराणों में वर्णित है कि ब्रह्मा के शरीर का अर्धांश उसमें प्रतिष्ठित था।<sup>4</sup> मत्स्य पुराण में कहा है कि शील सम्पन्न कन्या दस पुत्रों के समान है। कन्या का पर्याप्त आदर पितृकुल में होता था। विवाह के पश्चात् पति के घर जाने पर भी कन्या के सुख दुख की चिन्ता माता पिता को बनी रहती थी।<sup>5</sup> विष्णु पुराण में वर्णित है कि स्वयं भोजन करने के पूर्व गृही द्वारा स्वगृह वासिनी विवाहित कन्याओं को अन्न का आहार कराया जाना अपेक्षित था।<sup>6</sup>

पैतृक सम्पत्ति पर पुत्री के अधिकार के विषय में विष्णु पुराण में कहा है कि पुत्र के अभाव में ही पुत्री सम्पत्ति की अधिकारिणी हो सकती थी। वस्तुतः ऐसी परम्परा वैदिक काल में ही प्रतिष्ठित हो चुकी थी। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद में उषा की उपमा उस नारी से दी गई है, जो भ्राता के अभाव में पिता के धन को प्राप्त करती है। ऐसे उद्धरण भी उपलब्ध होते हैं, जिससे कन्या की दयनीय दशा व्यक्त होती है। मत्स्य पुराण के अनुसार कन्या की अवस्था शोचनीय होती है। वह अपने पिता के दुःख को बढ़ाती है। निर्धन पिता को दुःख देना तो उसके लिए स्वाभाविक बात है। धनवान् पिता भी कन्या के कारण चिन्ता मुक्त नहीं रहते। शास्त्रों में पुत्र का ही जन्म प्रशंस्य विहित है, पुत्र ही पिता को नरक से बचाता है।<sup>7</sup> प्रस्तुत प्रसंग में विष्णु पुराण के दो उद्धरणों को प्रस्तावित किया जा सकता है, जिनसे विदित होता है कि कन्या को सामान्य धन के समान समय-समय पर सम्माननीय अभ्यागतों को समर्पित किया जाता था। जाम्बवान् के विषय में वर्णित है कि उसने अपनी कन्या को अर्घ्य के रूप में श्री कृष्ण को समर्पित किया था। इसी प्रकार गान्दिनी

को उसके पिता ने श्वफल्क को दिया था।<sup>9</sup> विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड पुराणों में स्पष्टतः वर्णित है कि इक्ष्वाकु के अन्य सभी पुत्रों को राज्य का उत्तराधिकार मिला, पर कन्या होने के कारण सुद्युम्न को इस अधिकार से वंचित किया गया था।

जननी के रूप में नारी की प्रतिष्ठा पौराणिक युग में थी। विष्णु पुराण में समस्त संसार के रक्षक को धारण करने वाली देवकी को देवी की उपाधि दी गई है, जिसमें जगत् के भावी मंगल की आशाएं सन्निहित थीं।<sup>10</sup> वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में कश्यप की पत्नियों सौभाग्यशालिनी उद्घोषित हैं, जिनमें सम्पूर्ण लोक का मातृत्व प्रतिष्ठित था।<sup>11</sup> मत्स्य पुराण में उमा को जगत् जननी कहा गया है, जिनमें कार्तिकेय के रूप में संसार का सौभाग्य समाहित था।<sup>12</sup>

भार्या के रूप में नारी की महत्ता का परिचायक सर्वात्कृष्ट प्रमाण है—तीर्थ के रूप में भार्या की सामाजिक स्वीकृति। पदम् पुराण में कहा है—<sup>13</sup> नास्ति भार्यासमं तीर्थं नास्ति भार्यासमं सुखम्। नास्ति भार्यासमं पुण्यं तारणाय हिताय च।। तस्माद्भार्या विना धर्मः पुरुषाणां न सिध्यति। भार्या विना हि यो धर्मः स एव विफलो भवेत्।। उक्त पद्यों में जहाँ नारी के अधिकार और पुरुष के जीवन में उसके महत्त्व का बोध कराया गया है वहीं नारी के कर्तव्य का भी संकेत किया गया है। पति के निकट रह कर निरन्तर मनसा, वाचा, कर्मणा उसकी सेवा करना और अपने आचरण तथा व्यवहार से उसे सर्वदा प्रसन्न रखना नारी का परम कर्तव्य माना गया है। पति जिस किसी भी स्थिति में हो उसकी उपेक्षा या त्याग नारी के लिए वर्जित है।<sup>14</sup> पति से बढ़कर नारी के लिए अन्य कोई गुरु, पूज्य अथवा देवता नहीं है। पति ही उसके लिए सब कुछ है।<sup>15</sup>

विष्णु पुराण में पत्नी को सहधर्मचारिणी की संज्ञा दी गई है, जिसके साथ गृहस्थ-धर्म का पालन करने से महान् फल की प्राप्ति होती है।<sup>16</sup> सभी पुराणों में सहधर्मचारिणी के रूप में पत्नी रूप की प्रशंसा मिलती है। पतिव्रता की विशेष प्रशंसा पुराणों में मिलती है। जैसे नदियों में गंगा, मनुष्यों में राजा और देवों में भगवान् विष्णु श्रेष्ठ हैं वैसे ही स्त्रियों में पतिव्रता श्रेष्ठ है।<sup>17</sup> पुराणों में प्रतिपादन है कि पतिव्रता नारी देवों और ब्रह्मवादी मुनियों की भी आराध्या है।<sup>18</sup>

पुराणों में वेश्या-धर्म का विशिष्ट व्याख्यान और उनके उद्धार का उपाय निर्दिष्ट होने से प्राचीन समाज में वेश्या-वृत्ति के प्रचलन का पता चलता है।<sup>19</sup> वेश्याओं में कहीं-कहीं उच्च आदर्श की प्रतिष्ठा दिखाई पड़ती है।<sup>20</sup> सामान्यतः स्त्रियाँ धनार्जन हेतु वेश्या-वृत्ति स्वीकार करती थीं। इसलिए उनका विशेष सम्पर्क धनी नागरिकों को ही प्राप्त होता था।<sup>21</sup>

सतीप्रथा का वर्णन पुराणों में उल्लिखित है। किन्तु इसके लिये आवश्यक नियम नहीं था। यह पतिव्रता नारी की अपनी इच्छा पर निर्भर था। सम्भवतः पतिव्रता स्त्रियाँ विधवा का जीवन

स्वीकार कर जीवित रहना पसन्द नहीं करती थीं। इसलिए विशेष रूप से पतिव्रता ही पति की चिंता पर आत्मदाह करती थीं। ब्राह्मणी के लिए सती होने का निषेध किया गया है। इसके विपरीत आचरण करने पर उसे आत्महत्या का भागी होना पड़ता था।<sup>22</sup> सती प्रथा के साथ ही विधवा के जीवन-यापन, रहन सहन इत्यादि के विषय में यत्र-तत्र संकेत मिलता है। विधवा की समस्त क्रियायें संयमित होती थीं। भोजन, वस्त्र में विशेष सादगी, आचरण संबंधी पवित्रता विधवा के लिये आवश्यक थीं। बान्धवों और पुत्रों का यह दायित्व था कि वे विधवा के महाव्रत को खण्डित होने से बचावें और उसके पालन में हर तरह का सहयोग करें।<sup>23</sup> पति के प्रवास में होने पर वियोगिनी नारी के लिए बहुत कुछ विधवाओं के सदृश ही आचार-व्यवहार की व्यवस्था की गई थी। यथा-मण्डन और प्रसाधन का त्याग, भूमिशयन, भोजन में मधुर, स्निग्ध, कटु, लवण तथा पुष्टिकारक पदार्थों का त्याग, एकाहार, ताम्बूलत्याग, एकवेणी एवम् एकवस्त्र धारण इत्यादि। पति की अनुपस्थिति में शरीर संस्कार और श्रृंगार रचना करने वाली नारी को पुंश्चली कहा गया है।<sup>24</sup> उत्तेजक एवं पौष्टिक आहार तथा सुसज्जित स्वरूप विधवा एवं विरहिणी दोनों ही के पतन का कारण हो सकता है। सम्भवतः इसी कारण सात्विक और उदासीन जीवन जीने का आग्रह किया गया है।

नारी संबंधी इस विवेचन से प्राचीन भारत में उनकी स्थिति का आंकलन किया जा सकता है। तत्कालीन समाज नारी में जिन गुणों की अपेक्षा करता था वे हैं—रूप, शील, सत्य, आर्यत्व, सतीत्व, दृढ़ता, साहस, मंगल-गान, क्रियाशीलता, मधुर वचन। इन्हीं गुणों को मापदण्ड मानकर नारी का महत्त्व और उसकी श्रेष्ठता का निर्धारण किया जाता था। इसीलिए इन गुणों को नारी का आभूषण माना गया था।<sup>25</sup>

आज के सन्दर्भ में यदि हम पौराणिक नारी की स्थिति पर विचार करें तो कई तथ्य सामने आते हैं। पुराणों में जहाँ पर कहा जाता है कि पत्नी को पति की सेवा में रत रहना चाहिए किन्तु साथ ही साथ पुरुष को भी चाहिए कि वह अपनी पत्नी को प्रसन्न रखे जिससे परिवार में प्रसन्नता का वातावरण बना रहेगा। पति की मृत्यु के बाद पत्नी को विधवा रूप में रहने की जो बात कही गई है, वह आदर्श रूप में सही स्थिति है, किन्तु व्यवहार में वह बहुत उचित नहीं प्रतीत होती है। हाँ, यदि पत्नी विधवा-धर्म का निर्वाह कर ले तो उसे सर्वोत्तम माना जाएगा। किन्तु यदि कोई स्त्री कम आयु में ही विधवा हो जाए तब तो निश्चित रूप से उसका पुनर्विवाह कर देना ही कल्याणकर माना जाएगा। इस तरह पुराणों के इस सिद्धान्त में आज के सन्दर्भ में कुछ परिवर्तन को गलत नहीं कहा जाना चाहिए।

पुराणकारों ने माता को जिस रूप में आदर देने की बात कही है, उसकी प्रासंगिकता के संबंध में किसी तरह का प्रश्न भी उठाना उचित नहीं होगा। पुराण सभी आदरणीय जनों में माता को परमादरणीय मानते हैं, जो पूर्णतया उचित है क्योंकि किसी भी स्थिति में मनुष्य माता के ऋण से उद्धार नहीं हो सकता है। पुराणों में एक सामाजिक विषमता का हमें दर्शन होता है जिसकी प्रासंगिकता को सिद्ध कर पाना थोड़ा कठिन है। वह विषमता है पुत्री को पुत्र से हेय मानना। पुत्री को पैतृक

सम्पति में कम हिस्सा मिलना। पुराणकारों ने इसलिए वर्णित किया होगा क्योंकि पुत्रियाँ पराये घर को ही जाती हैं, किन्तु आज के सामाजिक सन्दर्भ में किसी तरह पुत्र और पुत्री में अन्तर करना उचित नहीं होगा।

पुराणकारों ने व्यभिचारिणी स्त्रियों के संबंध में जो भी बातें कही हैं उनमें से भी कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण अवश्य हैं किन्तु एक आदर्श समाज के लिए ऐसी स्त्रियों का अभाव श्रेयस्कर माना जाएगा। हों पुराणकारों ने व्यभिचारिणी स्त्रियों की शुद्धि के लिए जिन कृच्छ्र आदि व्रतों का उल्लेख किया है, उनका आज के समाज में पालन सम्भव नहीं लगा। यदि ऐसी गलती किसी से भी हो जाए तो मन से उसके लिए प्रायश्चित्त कर लेना अथवा सामाजिक रूप से उसके लिए क्षमा माँग लेना उचित कहा जाएगा।

सती प्रथा का प्रचलन आज के सन्दर्भ में अप्रासंगिक है। पुरुष और स्त्री—दोनों को जीवन जीने के समान अधिकार प्राप्त हैं। किन्तु आज भी कहीं—कहीं इसके संकेत प्राप्त हो जाते हैं जो अनुचित हैं। आज भी भारतीय परिवार या समाज में जो रूप हमें देखने को मिलता है वह पौराणिक कालीन समाज से बहुत कम मात्रा में ही भिन्न दिखाई देता है।

#### संदर्भ ग्रंथ सूची:—

1. साध्वी तारयते वंशान् दुष्टा पातयतेध्रुवम्। पद्म. ४९. ३१
2. दारेष्वधीनं स्वर्गं च कुलं पंकयशोऽयशः।  
पुत्रं दुहितरं मित्रं संसारे कथयन्ति च॥ पद्म. पु. ४९. ३२
3. रत्नभूता च कन्येयं वार्क्षेयी वरवर्णिनी।  
भविष्यं जानता पूर्वं मया गोभिर्विवर्धिता॥ विष्णु. १. १५. ७
4. ततो ब्रह्मात्मसंभूतं शतरूपां च तां नारीम्। विष्णु. १. ७. १७ अर्धेन नारी सा शतरूपा व्यजायत। वायु. १०. ८ अर्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत। ब्रह्माण्ड. २. ९. ३३ या सा देहार्धसम्भूता ..... शतरूपा .....। मत्स्य. ४. २४
5. पद्म. उत्तर. २३२. ६६—७५
6. ततः स्ववासिनीदुःख ..... भोजयेत्संस्कृतान्नेन प्रथमं चरमं गृही—विष्णु. ३. २२. २९
7. कन्या हि कृपणा शोच्या पितुर्दुःखविवर्धिनी।  
यापि स्यात्पूर्णसर्वाढ्या पतिपुत्रधनादिभिः। मत्स्य पु. १५४. १५८  
अतः कर्ता तु शास्त्रेषु सुतलाभः प्रशंसितः। मत्स्य पु. १५४. १५५
8. जाम्बवती नाम कन्या ..... अर्धभूता ग्राहयामास। विष्णु पु. ४. १३. ५५

- गादिनी कन्या ..... अर्धभूता प्रादात्। विष्णु प. ४. १३. १२५
9. सुद्युम्नस्तु ..... स्त्रीपूर्वकाद्रज्यलाभं न लेभे। विष्णु पु. ४. ११५
  10. त्वं सर्वलोकस्वार्थमवतीर्णा महीतले—विष्णु. ५. २. २०. २१.
  11. यास्तु श्लेषास्तदा कन्याः प्रतिजग्राह कश्यपः।  
चतुर्दश महाभागाः सर्वास्ता लोकमातरः। वायु. ६६. ५४
  12. त्वमस्य जगतोमाता जगत्सौभाग्यदेवता। मत्स्य. १३. १८
  13. पद्म. भूमि. ५९. २०—२४. ३३
  14. रोगी जगे दरिद्रो वा नेत्राभ्यां वर्जितोऽपि वा।  
न त्याज्यः स्वपतिः स्त्रीभिरिच्छन्तीभिस्तु सद्गतम्॥ पद्म. उत्तर. २०२. ६०
  15. कस्या माता पिताभ्राता कस्या स्वजनबान्धवाः।  
सर्वस्थानेपि हेर्यकोभार्या यास्तु न संशयः॥ पद्म भूमि. ५०. ५४
  16. सधर्मचारिणीं प्राप्य गार्हस्थ्यसहितस्तया —महाफलम्।  
विष्णु ० ३. १०. २६
  17. नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा प्रमदानां पतिव्रता।  
मनुष्याणां प्रजापालो देवानां च जनार्दनः॥ पद्म. पु ४७. ५०.
  18. पतिव्रता पतिप्राणा सदा पत्युर्हिते रता।  
देवानामपि साऽऽराध्या मुनीनां ब्रह्मवादिनाम्॥ पद्म. सृष्टि ४८. ५
  19. पद्म. प. २३. ९३—१४२
  20. पद्म. पु. १०६. ७८—७९
  21. पद्म. उत्तर २१४. ३६—४२
  22. या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत्।  
सा स्वर्गमात्मघातेन नाऽऽत्मानं न पतिं नयेत्।  
न म्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणी ब्रह्मशासनात्।  
प्रब्रज्यागतिमान्भोति मरणादात्मघातिनी। पद्म सृष्टि. ४९. २—७३
  23. पद्म सृष्टि. ४९. ७६—८१
  24. पद्म भूमि. ५०. ३२
  25. पद्म भूमि. ३३. ३०—३३

## श्रीमद्भागवद्गीता में भक्ति का वैशिष्ट्य

सरोजबाला

शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

शोध श्री



shodhshree@gmail.com

दर्शन के क्षेत्र में भगवद्गीता का महत्त्व अद्वितीय है। इसमें उपनिषदों के प्रायः सभी तत्त्वों को सरलतापूर्वक समझाया गया है। यह आध्यात्मिक और व्यावहारिक सामग्री से परिपूर्ण है। भगवद्गीता ग्रन्थ प्रस्थान त्रय में माना जाता है। प्रस्थानत्रय का अर्थ है कि परमात्मतत्त्व की प्राप्ति में जिसने मार्ग हैं, उनको बताने वाले उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता – ये तीन हैं। प्रस्थानत्रय में वेदों का शिरोभाग 'उपनिषद्' कहलाता है। दार्शनिकों का अन्तिम तत्त्व ब्रह्मसूत्र (उत्तरमीमांसा) कहलाता है। भगवद्गीता इन दोनों के समकक्ष कहलाती है, जो कि महाभारत रूप इतिहास ग्रन्थ में सम्मिलित है। उपनिषदों के मन्त्र हैं, ब्रह्मसूत्र के सूत्र हैं और गीता के श्लोक हैं। परन्तु भगवद्गीता के श्लोक भगवान् की वाणी होने से मन्त्र रूप हैं और सरल होने पर भी तात्पर्य गंभीर होने से सूत्ररूप हैं। इस प्रकार गीता उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र के समकक्ष है।

गीता में कर्म, ज्ञान एवं भक्ति का सर्वोत्कृष्ट दार्शनिक समन्वय है। गीता का धार्मिक और दार्शनिक महत्त्व विश्वविदित है। वह भारतीय जीवन का ही नहीं, विश्व के मानवीय धर्म का एक सुसंगठित स्वरूप भी है। गीता के 12वें अध्याय को भक्ति योग कहा गया है। 11वें अध्याय के अन्तिम दो श्लोकों में भक्ति की श्लाघा की गई है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवविधोऽर्जुन।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तवेन प्रवेष्टुं च परंतप॥<sup>1</sup>

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥<sup>2</sup>

अर्थात् अनन्य भक्ति से केवल मेरे विश्व रूप के दर्शन ही शक्य नहीं हैं, अपितु ज्ञान एवं निर्वाण पद भी प्राप्त होता है। इसीलिये मेरे निमित्त कर्म कर, मेरी शरण में रह, मेरी भक्ति कर, संसार का साथ त्याग और किसी से शत्रुता मत रख। कर्मयोगी, ज्ञानयोगी, हठयोगी, लययोगी आदि सभी योगियों में भगवान् ने "भक्तियोगी" को सर्वश्रेष्ठ कहा है। यह भक्ति योगी ही ईश्वर के समग्र रूप को पहचान सकता है।

जब समरूप परमात्मा के साथ अभिन्नता होने से पुरुष का सर्वत्र समभाव हो जाता है, तो उसका परमात्मा में प्रतिक्षण वर्द्धमान एक विलक्षण आकर्षण, खिंचाव, अनुराग हो जाता है। उसी को परा भक्ति कहा जाता है।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।

ततो मां तच्चतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥<sup>3</sup>

अर्थात् भक्ति में परमात्मा के सर्वथा समर्पित हो जाने पर जीव का स्वतन्त्र रूप से स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। इस प्रकार उसको प्रेमस्वरूप प्रेमभक्ति प्राप्त हो जाती है। अहंभाव के सर्वथा मिट जाने से ही तत्त्व का वास्तविक बोध होता है। ईश्वर में आसक्त मन वाले और अनन्यभाव से दृढ़ सम्बन्ध रखने

वाले ही उनके समग्र रूप को जान सकते हैं। निर्गुण और सगुण के सिवाय राम, कृष्ण, शिव, गणेश, शक्ति, सूर्य आदि अनेक रूपों में प्रकट होकर परमात्मा लीला करते हैं, उनको भी जान लेना यहीं पराभक्ति से 'यावान्' अर्थात् समग्ररूप को जानना है।

अनन्य भक्ति से तो मनुष्य भगवान् को तत्त्व से जान सकता है, उनमें प्रविष्ट हो सकता है और उनके दर्शन भी कर सकता है। यहाँ उस तत्त्व में प्रविष्ट हो जाना ही अनिर्वचनीय प्रेम की प्राप्ति है। इसी प्रेम को नारदभक्तिसूत्र में प्रतिक्षण वर्धमान कहा है।<sup>1</sup> जब तक भगवान् से परम प्रेम (पराभक्ति) नहीं होता, तब तक ब्रह्मभूत-अवस्था में भी "मैं ब्रह्म हूँ" यह सूक्ष्म अहंकार रहता है। जब तक लेशमात्र भी अहंकार रहता है, तब तक परिच्छिन्नता का अत्यन्त अभाव नहीं होता।

भक्ति शब्द 'भज्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है- सेवा करना, और भक्ति शब्द का अर्थ है भगवान् की सेवा। यह परमात्मा के प्रति प्रेमपूर्ण अनुराग है। नारद ने भक्ति की परिभाषा देते हुए इसे परमात्मा के प्रति उत्कट प्रेम बताया है। शांडिल्य के मत से यह परमात्मा सर्वोच्च अभिलाषा है,<sup>2</sup> जो केवल इस अभिलाषा के लिए ही है। अर्थात् इस अभिलाषा का और कोई प्रयोजन नहीं है।<sup>3</sup> यह भगवान् की करुणा के विश्वासपूर्ण आत्मसाक्षात्करण के प्रति आत्मसमर्पण है। भक्ति मार्ग के समर्थकों की लोकोत्तर मुक्ति में उतनी रुचि नहीं है, जितनी परमात्मा की अटल इच्छा के प्रति पूर्ण वशवर्तिता में। मानवीय आत्मा परमात्मा की शक्ति, ज्ञान और अच्छाई के चिन्तन द्वारा, भक्तिपूर्ण हृदय से उसके निरन्तर स्मरण द्वारा, दूसरे लोगों के साथ उसके गुणों के सम्बन्ध में चर्चा करने के द्वारा, अपने साथियों के साथ मिलकर उसके गुणों का गान करने के द्वारा और सब कार्यों को उसकी सेवा समझकर करने के द्वारा भगवान् के निकट पहुंच जाती है। "श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।" भक्त अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को भगवान् की ओर प्रेरित करता है। प्राणी और सृष्टि के मध्य भेद भक्ति धर्म का सत्त्वात्मक आधार है। भगवद्गीता में सनातन भगवान् को दार्शनिक अनुमान के परमात्मा के लय में उतना नहीं देखा गया, जितना की करुणामय भगवान् के रूप में, जिसे हृदय और आत्मा चाहते हैं और खोजते हैं, जो व्यक्तिक विश्वास और प्रेम, श्रद्धा और निष्ठापूर्ण आत्मसमर्पण की भावना को जगाता है। ज्ञान का उदय होने से पहले द्वैतता भ्रामक है, पर जब हमारी बुद्धि से भी अधिक सुन्दर है और द्वैत की कल्पना ही इसलिए की गई है कि पूजा की जा सके। फिर सत्य अद्वैत है, परन्तु द्वैत पूजा के लिए है और इस प्रकार यह पूजा मुक्ति की अपेक्षा सौगुनी महान है।

जब मन अपने किसी प्रिय का चिन्तन करता है, तब उसकी आकृति का आलम्बन लेकर सक्रिय और चिन्तन करते-करते तद्रूप हो जाता है। भक्ति मन को सांसारिक चिन्तनों से हटाकर ईश्वर के चिन्तन की ओर ले जाती है। यदि चिन्तन का विषय परोक्ष हो और चिन्तन निरपेक्ष भावयुक्त हो अथवा सापेक्षता से हो तो इन दोनों में बड़ा अन्तर होता है। यदि चिन्तन करने वाला यह जानता हो कि मैं जिसका चिन्तन करता हूँ वह मुझे प्रेम करता है, तब तो उसका मन

चिन्तन करते-करते अपने को भूल जाता है और तन्मय हो जाता है अन्यथा वह सदा सावधान रहता है कि उसके किसी व्यवहार अथवा कार्य से उसके प्रेमी का प्रेम कम न हो जाये। वह यत्नशील रहता है कि उसका प्रेम अधिकाधिक बढ़े।

भगवान् सगुण-निर्गुण रूप से सर्वत्र विद्यमान हैं और उनकी प्रतिज्ञा है कि जो जिस कामना अथवा भावना से मुझे भजता है, मैं भी उसी भावना के अनुसार उसे भजता हूँ। वे यद्यपि दीखते नहीं, परन्तु अन्तर्यामी हैं और सबके हृदय की बात जानते तथा सुनते हैं। परन्तु यह उनका सगुण रूप है। देहदारी भक्त प्रायः उन्हें देहधारी रूप में ही देखना चाहा करता है और भगवान् भी भक्त की इच्छा के अनुसार ही रूप धारण करके प्रकट होते हैं। मीराबाई, तुलसीदास तथा सुरदास आदि सगुण उपासकों के अनेकों उदाहरण हैं। दशरथ-कौशल्या, नन्द-यशोदा ने अपने-अपने पूर्व जन्म में इच्छा की थी कि भगवान् हमें पुत्र रूप से लालन-पालन करने का आनन्द प्रदान करें। गोप-गोपियों ने पूर्व जन्म में इच्छा की थी कि भगवान् हमारे साथ बाल-क्रिया करें, रुक्मिणी-सत्यभामा प्रभृति की इच्छा थी कि भगवान् हमें पति के रूप में मिलें। भगवान् ने अवतार लेकर सबकी कामनायें पूरी कीं। राधा जी और भगवान् का प्रेम बाल्यावस्था का था, युवावस्था का नहीं। जो भक्त उसमें अन्य भाव रखते हैं, वे उस पवित्र प्रेम को नहीं प्राप्त कर सकते। उनके कामी मन के दोष का उनकी भक्ति में बाधक होना अनिवार्य है। इसी अभिप्राय से कहा गया है- 'अव्यक्ता हि गति दुः खं देहवद्भिरवाप्यते।' फिर अगले श्लोक 9 में कहा कि ऐसे 'मय्यावेशित चेतसा' का मैं शीघ्र इस मर्त्यलोक से उद्धार करने वाला हो जाता हूँ।

भक्ति मार्ग का मूल अत्यन्त पुरातन काल की धुन्ध में छिपा हुआ है। ऋग्वेद की स्तुतियों और प्रार्थनाओं, उपनिषदों की उपासनाओं और भागवत-धर्म की तीव्र धर्मनिष्ठा का प्रभाव गीता के लेखक पर पड़ा है। उसने उपनिषदों के धार्मिक पक्ष से सम्बन्ध रखनेवाली उस विचारधारा को विकसित करने का प्रयत्न किया है, जिसे उपनिषद्कार उन्मुक्त और सुस्पष्ट रूप में व्यक्त नहीं कर पाए थे। भगवान् ऐसा परमात्मा नहीं है, जो कि उस समय भी शान्तिपूर्ण अव्यक्तता में शयन करता रहता हो, जबकि आर्त हृदय सहायता के लिए पुकार रहे हों, अपितु एक प्रेमपूर्ण रक्षक परमात्मा है, जिस पर भक्त लोग इसी रूप में विश्वास करते हैं और अनुभव करते हैं। वह उन लोगों को मुक्ति प्रदान करता है, जो उसमें विश्वास करते हैं। वह घोषणा करता है, "यह मेरा वचन है कि जो मुझसे प्रेम करता है, वह कभी नष्ट नहीं होगा।

जब आत्मा अपने-आपको परमात्मा के सम्मुख समर्पित कर देती है, तब परमात्मा हमारे ज्ञान व हमारी त्रुटियों को अपना लेता है और वह अपर्याप्तता के सब रूपों को परे फेंक देता है और सब वस्तुओं को अपने असीम प्रकाश और सार्वभौम अच्छाई की विशुद्धता में रूपान्तरित कर देता है। भक्ति केवल एकाकी की एकाकी की ओर उड़ान आत्मा का संसार से विराग और परमात्मा से अनुराग नहीं है, अपितु उस दिव्य भगवान् के प्रति सक्रिय प्रेम है,

जो इस संसार का उद्धार करने के लिए इस संसार में प्रवेश करता है।

यह दृष्टिकोण, कि हम स्वयं अपने प्रयत्नों द्वारा भगवान् की दया प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकते, एक तीव्र भावनामय धार्मिकता को जन्म देता है। जहाँ भक्ति में श्रद्धा और प्रेम की आवश्यकता होती है, वहाँ हम केवल अपने—आपको परमात्मा के प्रति समर्पित कर देते हैं, हम अपने—आपको उसके हाथों में सौंप देते हैं और यह निर्णय स्वयं उसके लिए छोड़ देते हैं कि वह हमारे लिए जो ठीक समझे, हमारे साथ करें। इसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि एक विश्वास की विनीत और प्रत्यक्ष भावना के साथ आत्मसमर्पण का सरल और तपस्यापूर्ण विशुद्ध सम्बन्ध स्थापित किया जाए। इसमें भक्ति के अनुशासन की तीव्रता की अपेक्षा आत्मसमर्पण की पूर्णता में वास्तविक धर्मनिष्ठा मानी गई है। हम स्वयं को अपने आत्मा से रिक्त कर देते हैं और तब परमात्मा हम पर अधिकार कर लेता है। इस परमात्मा द्वारा अधिकार किए जाने के रास्ते में बाधाएँ हमारे अपने गुण, अभिमान, ज्ञान, हमारी सूक्ष्म मांगें और हमारी अचेतन मान्यताएँ और संस्कार हैं। हमें अपने—आपको सब इच्छाओं से रिक्त करना होगा और परम सत्ता में विश्वास रखते हुए प्रतीक्षा करनी होगी। परमात्मा की व्यवस्था में ठीक जमने के लिए हमें अपने सब दावों को त्याग देना होगा। भक्ति और प्रपत्ति के मध्य का अन्तर वानर—पद्धति (मर्कटकेशोर न्याय) और बिडाल—पद्धति (माजोरकिशोर न्याय) के प्रतीकों द्वारा स्पष्ट किया गया है। बन्दर का बच्चा अपनी माँ से चिपट जाता है और इस प्रकार बचा रहता है। इसमें बच्चे की ओर से भी थोड़े से प्रयत्न की आवश्यकता होती है। बिल्ली अपने बच्चे को मुँह से उठाकर ले जाती है, बच्चा अपनी सुरक्षा के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करता। भक्ति में परमात्मा की दया किसी सीमा तक यत्न द्वारा प्राप्त की जाती है, प्रपत्ति में यह मुक्त रूप से प्रदान की जाती है। प्रपत्ति में इस बात का कोई विचार नहीं रहता कि व्यक्ति दया पाने का पात्र है या नहीं, या उसने कितनी सेवा की है। इस दृष्टिकोण का समर्थन प्राचीनतर परम्परा में प्राप्त होता है, जब यह परमात्मा स्वयं चुनता है, तभी यह उसके द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और उसी को वह अपना रूप दिखता है<sup>६</sup>। अर्जुन को बताया जाता है कि उसके सम्मुख दिव्य रूप भगवान् की दया से ही प्रकट हुआ था।<sup>७</sup> फिर यह कहा गया है कि “मुझसे ही स्मृति और ज्ञान उत्पन्न होते हैं और उनका क्षय भी मुझसे ही होता है।<sup>८</sup> पतित प्राणी के रूप में मनुष्य का उद्धार केवल भगवान् की दया से हो सकता है या मनुष्य स्वयं भी कुछ कर सकता है और अपनी मुक्ति के प्रयत्न में कुछ योग दे सकता है।

“मामैवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि”<sup>९</sup> भगवान् कहते हैं कि मेरा भक्त होने से मेरे मन वाला होने से मेरा पूजन करने वाला होने से तथा मुझे नमस्कार करने वाला होने से ही तू मुझे प्राप्त होगा अर्थात् मुझमें ही निवास करेगा। जीव मात्र भगवान् को अत्यन्त प्रिय है। केवल जीव ही भगवान् से विमुख होकर प्रतिक्षण विपुक्त होने वाले संसार (धन—सम्पत्ति, कुटुम्बी, शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण आदि) को अपना मानने लगता है, जबकि संसार ने

कभी जीव को अपना नहीं माना है। जीव ही प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाले संसार से स्वयं को नित्य जोड़ता है। इस सम्बन्ध का त्याग करके, जिनसे वास्तविक और नित्य सम्बन्ध है, उन भगवान् की शरण में जाना चाहिए। “तमेव शरणं गच्छ”<sup>१०</sup>

स्वयं भगवान् के शरणागत हो जाना “सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज”<sup>११</sup> यह सम्पूर्ण साधनों का सार है। इसमें शरणागत भक्त को कुछ भी करना शेष नहीं रहता। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री घर, कुटुम्ब, वस्तु, पुत्र—पुत्री और अपने कहलाने वाले शरीर को भी अपना नहीं मानती, प्रत्युत पति देव का ही मानकर पतिपरायण होकर पति के गोत्र में ही अपना गोत्र मिला देती है, पति के ही घर पर रहती है, उसी प्रकार शरणागत भक्त भी शरीर को लेकर माने जाने वाले गोत्र, जाति, नाम आदि को भगवान् के चरणों में समर्पित करके निश्चिन्त, निर्भय, निःशोक और निःशंक हो जाता है।

भगवान् के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण में भी मनुष्य का प्रयत्न रहता ही है। यह आत्मसमर्पण संकल्पहीन या प्रयत्नहीन नहीं हो सकता। दया के सिद्धान्त की व्याख्या विशेष चुनाव के रूप में नहीं की जा सकती, क्योंकि इस प्रकार की धारणा गीता के इस सामान्य मत से उल्टी पड़ती है कि “सब प्राणियों में भगवान् वही एक है।”<sup>१२</sup>

श्रद्धा भक्ति का आधार है। इसलिए जिन देवताओं में लोगों की श्रद्धा है, उन सबको सहन कर लिया गया है। बिल्कुल प्रेम न होने से कुछ प्रेम होना अच्छा है, क्योंकि यदि हम प्रेम नहीं करते, तो हम अपने—आप में ही रूढ़ हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, निम्नतर देवताओं को एक भगवान् के ही रूपों में स्वीकार किया गया है। इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि जब कि अन्य भक्त लोग अन्य लक्ष्यों तक पहुँचते हैं, केवल वह, जो भगवान् का भक्त होता है, परम आनन्द को प्राप्त करता है। जहाँ तक पूजा भक्ति के साथ की जाती है, वह हृदय को पवित्र करती है और मन को उच्चतर चेतना के लिए तैयार करती है। हर कोई भगवान् की मूर्ति अपनी इच्छाओं के अनुरूप ढाल लेता है। मरते हुए व्यक्ति के लिए परमात्मा शाश्वत जीवन है, जो लोग अन्धकार में भटक रहे हैं उनके लिए वह प्रकाश है। जिस प्रकार क्षितिज सदा हमारी आँखों के बराबर ऊँचाई पर ही रहता है, चाहे हम कितना ही ऊँचा क्यों न चढ़ते चले जाएँ, उसी प्रकार परमात्मा का स्वभाव भी हमारी अपनी चेतना के स्तर से ऊँचा नहीं हो सकता। निम्नतर स्थितियों में हम धन और जीवन के लिए प्रार्थना करते हैं, और भगवान् को भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला माना जाता है। बाद में चलकर चिन्तन में हम अपने—आपको सत्प्रयोजनों के साथ, जो भगवान् के प्रयोजन हैं, एकात्म करते हैं। उच्चतम स्थितियों में परमात्मा एक अन्तिम सन्तुष्टि बन जाता है, वह अपर जो मानव आत्मा को पूर्ण कर देता है और भर देता है।

स्तुति और भक्ति : स्तुति और भक्ति में साधन साध्य भाव सम्बन्ध है। उपास्य के गुण, महिमा गायन से उनके प्रति स्तोता की भक्ति दृढ़ हो जाती है, तो कभी उपास्य के विविध गुणों के प्रति, महान् कार्यों के कारण आश्चर्य, श्रद्धा, भय तो कभी उपकृत किए जाने पर भी

भक्ति का उद्रेक हो जाता है। यदुनाथ श्रीकृष्ण के द्वारा बार-बार अपने वंशधरों पर उपकार किए जाने के कारण कुन्ती की भक्ति अचल हो जाती है, श्रीकृष्ण चरणों में उसकी निष्ठा अविचल हो जाती है—

विमोचिताहं च सहात्मजाविभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ।<sup>15</sup>  
और

त्वयि में अनन्य विषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ।

रतिमुद्धतादद्धा गंगेवैधमुदन्वति ॥<sup>16</sup>

स्तुति से भक्ति पूर्ण हो जाती है और कभी भक्ति रस से सराबोर होने पर भक्त अपने उपास्य की महिमा का स्तुति के माध्यम से विज्ञप्ति करता है। भक्ति रस से सराबोर होने पर अनायास ही उसकी वाग्धारा स्फूर्त होने लगती है और वही वाग्धारा स्तुति संज्ञा से अभिहित होती है। किम्पुरुषवर्ष में स्थित भक्तराज हनुमान अन्य किन्नरों सहित भगवान् की भक्ति से विगलित होकर उनकी स्तुति करते हैं—

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।

प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्बनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ।<sup>17</sup>

जल में भगवान् की मनोरम झांकी निरखकर भक्तराज अक्रूरजी का हृदय परमानन्द से लबालब भर गया। उन्हें परम भक्ति प्राप्त हो गयी, उनका हृदय प्रेमरस से सराबोर हो गया। हृदय की वीणा मधुर स्वरों में शब्द के माध्यम से झंकृत हो गयी, स्तुति की निर्मल सरिता बह चली—

नतोऽस्यहं त्वखिल हेतुहेतुं नारायणं पुरुषमाद्यमव्ययम् ।

यन्नाभिजातदरविन्दकोशात् ब्रह्माऽऽविरासीद् यत एष  
लोकः ॥<sup>18</sup>

महाप्रस्थानिक वेला में महाभागवत भीष्म भक्तिभावित चित से प्रभु की स्तुति करते हैं। प्रभु की अलौकिक, त्रिभुवनकमनीय रूप सौन्दर्य को निहारकर पितामह शल्यजनित कष्ट से पूर्णतः स्वस्थ हो जाते हैं और विधूत-भेद मोह होकर जन्म-जन्मान्तर के आराध्य प्रभु श्रीकृष्ण के चरणों में शाश्वती गति को प्राप्त कर लेते हैं।

भगवद्गुण कथा, महिमा आदि रूप स्तुति के गायन या श्रवण से अचला भक्ति उत्पन्न होती है। स्तुति करते-करते पितामह भीष्म निश्चला भक्ति को एवं कुन्ती अखण्डात्मिका रति को प्राप्त करती है।<sup>19</sup> मैत्रेय द्वारा भगवान् के विविध लीला गुणों एवं ऐश्वर्य विभूतियों का वर्णन सुनकर भक्त-राज विदुर प्रेम मग्न हो गए तथा भक्तिभाव का उद्रेक होने से उनके आंखों से आंसुओं की धारा बह चली।<sup>20</sup> कुशल वक्ता विरोगी शुकदेव से कथा का श्रवण करने से परीक्षित को अचल भक्ति की प्राप्ति हुई, फलस्वरूप सर्पदंश के पहले ही ब्रह्ममय हो गए—

ब्रह्मभूतो महायोगी निस्सङ्गः शिञ्जन्नसंशयः ।<sup>21</sup>

भक्ति और ज्ञान वैराग्य :

भक्ति और ज्ञान वैराग्य का जनक जन्यभाव सम्बन्ध है। भक्ति

ज्ञान वैराग्य की जनयित्री शक्ति है। भागवत महात्म्य में भक्ति को ज्ञान वैराग्य की माता कहा गया है।<sup>22</sup> भक्ति हृदयस्थ अविद्या ग्रन्थि का छेदन कर भक्त हृदय में आत्मज्ञान और संसार के प्रति वैराग्य-उत्पन्न करती है। ज्ञान वैराग्ययुक्त जीव ब्रह्मदर्शन को प्राप्त करता है।<sup>23</sup> भक्ति के द्वारा तदाकार रूप ज्ञान की प्राप्ति होती है।<sup>24</sup> एकाग्र मन से भगवान् में भक्ति करने पर द्रागेव ज्ञान और वैराग्य की उत्पत्ति होती है।<sup>25</sup> भक्तिजन्यज्ञान वैराग्य संयुक्त भक्त हेयोपादेय बुद्धि का परित्याग कर समदर्शन हो जाता है।<sup>26</sup>

ज्ञान कर्म और भक्ति को छोड़कर जीव मात्र के लिए और कोई श्रेयस्कर मार्ग नहीं है।<sup>27</sup> भक्ति के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण में चरणरति, विरक्ति तथा भगवत्स्वरूप की प्राप्ति होती है।<sup>28</sup>

भक्ति और मुक्ति : मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन भक्ति ही है, जिसके द्वारा जीव दुस्तर माया का संतरण कर मुक्ति प्राप्त करता है। भक्ति के अतिरिक्त<sup>29</sup> मुक्तिप्रापणार्थ अन्य कोई सुलभ मार्ग नहीं है। जो भगवान् अखिलानन्द में दृढाभक्ति करते हैं वे संगदोष रहित हो जाते हैं।<sup>30</sup> सांख्य्याचार्य कपिल अपनी माता देवहूति के प्रति उपदेश देते हैं—“जिसका मन भगवान् वसुदेव में एकाग्र रूप से रमण करता है तो भगवान् की अनिमित्त भक्ति की प्राप्ति होती है जो सिद्धि से भी श्रेष्ठ है।<sup>31</sup>

भक्ति का लक्ष्य : भगवान् सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण ही भक्ति के परम लक्ष्य हैं। एकांत भक्ति के द्वारा भक्त भगवान् को प्राप्त कर लेते हैं। रूढ़ स्तुत्यावसर पर प्रभु से निवेदित करते हैं—

भगवान् भक्तिमत्ता लभ्यः दुर्लभसर्वदेहिनाम् ।<sup>32</sup>

भक्ति आत्मविद्वगतिदात्री है। भागवत भक्तों का यदि क्षणार्थ मात्र भी संगति हो जाती है तो वह संगति स्वर्ग, अपुनर्भव से भी श्रेष्ठ है, मर्त्यलोक के भोगों का तो कहना ही क्या। सभी कामनाओं को छोड़कर भागवत भक्त भगवान् वासुदेव का ही चरणरज प्राप्त करना चाहते हैं। भक्त जन वैसा कुछ भी नहीं चाहते जहां पर भगवच्चरणाम्बुजासव की प्राप्ति न हो।<sup>33</sup> जैसे अजातपक्ष पक्षीशावक पक्षी को, सद्यः प्रसुत क्षुधार्त वत्स अपने माता (गाय) को तथा प्रिय अपने प्रियतम को पाने के लिए लालायित रहता है उसी प्रकार भक्त भी अरविंदाक्ष को ही प्राप्त करना चाहता है।<sup>34</sup> भक्ति द्वारा भक्त देहादि की उपाधि से निवृत्त होकर प्रत्यगात्मा में स्थिर हो जाता है।<sup>35</sup> भक्त विधूत भेदमोह होकर भगवान् स्वरूप ही हो जाता है।<sup>36</sup> भगवान् के निर्मल यश के संकीर्तन से उत्पन्न भक्ति द्वारा चित्त स्थित तमोगुण एवं रजोगुण का विनाश हो जाता है और तब सत्वोद्रेक से भक्त परमानन्द को प्राप्त करता है। सांसारिक कामनाओं, भोग विलाश ऐश्वर्य-विभूति, मोक्ष इत्यादि के स्थान पर विपत्ति की ही कामना करता है, क्योंकि विपत्तियों में प्रभु बार-बार दर्शन देते हैं।<sup>37</sup> इस प्रकार भक्ति के परम लक्ष्य भगवान् ही होते हैं जिन्हें भक्तजन अपना सांसारिक पारमार्थिक सब कुछ त्याग कर सर्वात्मना प्राप्त करना चाहते हैं। भक्ति केवलानन्द स्वरूप है—जब भक्त हृदय में भक्ति उपचित होती है, उसके उपास्य

के गुण, लीला के प्रति अखंडात्मिक रति उत्पन्न होती है, तब भक्त अतिशयानन्द के सागर में निमज्जित हो जाता है। उस अवस्था में आनन्द को छोड़कर और कोई पदार्थ नहीं रहता। वह प्रेमी भक्त उस महान् वस्तु को पा लेता है, जिसके पाने पर सारी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं, वह अमृत के समुद्र में क्रीडा करता है—

यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे।

विक्रीडतोऽमृताम्भोघौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥<sup>38</sup>

भगवान् चक्रपाणि के विविध लीला गुणों को सुनकर भक्त कभी हंसता है, कभी रोता है तो कभी नाचने लगता है। बाह्य व्यवहार से रहित कभी आनन्द से परिपूर्ण होकर चुप हो जाता है। गीता में भक्ति बौद्धिक प्रेम नहीं है, जो कि अपेक्षाकृत अधिक चिन्तनात्मक और मननात्मक होता है। यह ज्ञान के आधार पर टिकी है, परन्तु स्वयं ज्ञान नहीं है। इसमें योग पद्धति का कोई निर्देश निहित नहीं है और न भगवान् का आनुमानिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा ही निहित है। शाडिल्य ने तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा है कि यह भक्ति हमें ज्ञान के बिना भी आत्मिक शान्ति प्रदान करती है, जैसे गोपियों को प्राप्त हुई थी। भक्त में एक अतिशय विनय की भावना होती है। अपने आदर्श भगवान् की उपस्थिति में वह अपने-आपको कुछ भी नहीं समझता। परमात्मा विनम्रता से, जो कि आत्मा को पूर्ण आत्मसमर्पण है, प्रेम करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 11, 54
2. वही, 11, 55
3. वही, 18, 55
4. नारदभक्ति सूत्र, 54
5. सा परानुरक्तिरीश्वरे, 1, 1, 2
6. भगद्गीता, 12, 5, 9, 17-18
7. नारदसूत्र, 16.18
8. कठोपनिषद्, 2, 23
9. कठोपनिषद्, 11, 47
10. कठोपनिषद्, 15, 15
11. श्रीमद्भागवद्गीता, 18, 65
12. वही, 18, 62
13. वही, 18.66
14. योगवशिष्ट, 2, 6, 27
15. श्रीमद्भागवत महापुराण, 1.8.23
16. वही, 1.8.42
17. वही, 5.19.4
18. वही, 10.40.1
19. वही, 1.9.43, 1.8.42
20. वही, 4.31.28

21. वही, 12.6.10
22. भागवतमहात्म्य, 445
23. श्रीमद्भागवत, 3.32.23
24. वही, 4.17.25
25. वही, 4.29.37
26. वही, 6.17.31
27. वही, 11.20.6
28. वही, 11.2.42
29. वही, 3.25.19
30. वही, 3.25.22, 23
31. वही, 3.25.33
32. वही, 4.24.34
33. वही, 4.20.24
34. वही, 6.11.26
35. वही, 5.1.27
36. वही, 1.9.42
37. वही, 1.8.25
38. श्रीमद्भागवत महापुराण, 6.12.22



## माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का उनके शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन

डॉ. दिनेश कुमार सिंह

प्रवक्ता, आई. आई. एम. टी. कालेज, मेरठ (उत्तरप्रदेश)

मानव को ईश्वर ने पाँच इन्द्रियों से विभूषित किया है, लेकिन यदि उसकी कोई भी इन्द्रिय कार्य नहीं करती है तो उसे बहुत कष्ट होता है जैसे चक्षु! यह मानव की अमूल्य निधि है। इसके दोषपूर्ण होने पर या न होने पर व्यक्ति स्वयं अपने को अपूर्ण महसूस करता है। इस अपूर्णता के कारण उन्हें जीवन के किसी भी उम्र में अत्यधिक परेशानी एवं कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। दृष्टिदोष से ग्रसित बालक अपनी दृष्टिहीनता के कारण बाह्य जगत की कल्पना मात्र भी नहीं कर सकते, दृष्टिहीनता के कारण इन किशोरों को दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। फिर भी यह वास्तविकता से दूर नहीं रहते और अपनी कमी के प्रति यद्यार्थ दृष्टिकोण रखते हैं। यही कारण है कि ये बालक प्रत्येक कार्य एवं व्यवसाय को लगन व धैर्य के साथ करते हैं। दृष्टिहीनता के अभाव की पूर्ति हेतु इनकी संवेदन व स्पर्श शक्तियाँ अत्यन्त तीव्र होती हैं। वे किसी भी कार्य को बड़ी एकाग्रता के साथ करते हैं। जिससे यह वातावरण के साथ पूर्ण सामंजस्य स्थापित करने का पूरा प्रयास करते हैं।

दृष्टि विकलांग किशोर भी सामान्य किशोरों की भाँति परिवार, समाज व विद्यालय में अपने साथियों में सम्मान, प्रशंसा व आदर चाहते हैं। ये चाहते हैं कि इन्हें सामाजिक मान्यता मिले, महत्वपूर्ण कार्यों में इनकी सलाह व सहयोग लिया जाये। इनकी विशेष शक्तियों व कार्यों की सराहना की जाये। विद्यालय में शैक्षिक आवश्यकताओं एवं शैक्षिक स्तर में वृद्धि करने के लिए उनकी पूर्ति एवं सदुपयोग के लिए पुरस्कार, ग्रेड, प्रशंसा पत्र तथा विभिन्न प्रतियोगिताओं आदि की व्यवस्था की जाती है। दृष्टि विकलांगों को इसमें पूर्ण रूप से भाग लेने के अवसर प्राप्त होने चाहिए। जिससे वे अपनी शैक्षिक आकांक्षा में वृद्धि के साथ-साथ शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन स्थापित कर सकें तथा समाज को लाभान्वित कर सकें। इसलिए हम दृष्टि विकलांगों की केवल मौलिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति न करें बल्कि उनकी मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में अपने सम्पूर्ण प्रयास लगा दें। इस प्रकार से दृष्टि विकलांगों की सम्पूर्ण शक्तियों का सदुपयोग होगा। उन्हें भी भावनात्मक, मानसिक, सामाजिक एवं शारीरिक शान्ति मिलेगी और समाज भी इससे लाभान्वित होगा।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियाँ तथा उतार-चढ़ाव आते हैं। सफल जीवन जीने के लिए इन परिस्थितियों का सामना करना आवश्यक है, और प्रत्येक व्यक्ति इन परिस्थितियों के साथ अपने आपको समायोजित करने का प्रयास करता है। दृष्टि विकलांग बालक भी अपनी सभी प्रकार की परिस्थितियों के साथ समायोजन स्थापित करने का प्रयास करते हैं, परन्तु सामान्य बालकों की भाँति यह कार्य उनके लिए आसान नहीं होता है।

प्रत्येक व्यक्ति की कुछ इच्छायें एवं आकांक्षायें होती हैं। वह इन्हीं को पूरा करने का निरन्तर प्रयास करता है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह सदैव इस कार्य में सफल ही हो। हमारी अनेक इच्छायें व आवश्यकतायें अपूर्ण ही रह जाती हैं। कुछ व्यक्ति इनके साथ समायोजन स्थापित कर लेते हैं किन्तु जो नहीं कर पाते उनका व्यक्तित्व असंतुलित व असामान्य हो जाता है। इसी प्रकार कुछ व्यक्ति अपने भौतिक, सामाजिक व आर्थिक वातावरण के साथ अपने आपको समायोजित कर सुखी जीवन व्यतीत

कर लेते हैं, जबकि कुछ सदैव ही निराश व दुःखी पाये जाते हैं। वे अपने वातावरण के साथ समायोजन स्थापित नहीं कर पाते हैं।

एक दृष्टि विकलांग बालक के लिए भी यह बहुत आवश्यक है कि उसमें पूर्ण रूप से समायोजन स्थापित करने की क्षमता का विकास हो। यदि शारीरिक रूप से विकलांग बालक अपनी विकलांगता के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण नहीं अपनाते हैं तो ये शारीरिक अनुकूलन कर पाने में असमर्थ रहते हैं। तब इस बात की सम्भावना बढ़ जाती है कि वे बालक आवश्यकता से ही बढ़कर अपने कार्यों को पूर्ण करना चाहेंगे और असफलता मिलने पर उपहास के पात्र बनते हैं। तब ऐसे बालक भावनात्मक रूप से कुंठित हो जाते हैं और उस समय इनकी विकलांगता दो गुनी हो जाती है। सामाजिक तिरस्कार, निराशा, कुण्ठा एवं आर्थिक विवशता ऐसे बालकों को अपराधी बना देती है। अतः समाज, अभिभावकों, शिक्षकों एवं प्रशिक्षकों का यह कर्तव्य है कि ये दृष्टि विकलांग किशोरों में समायोजन क्षमता को निरन्तर विकसित होने के सम्पूर्ण अवसर प्रदान करें।

किसी भी विद्यार्थी की शैक्षिक आकांक्षा तथा शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन निश्चित रूप से उनकी शारीरिक एवं मानसिक विशिष्टताओं तथा उनके व्यक्तित्व की प्रकृति पर निर्भर करता है ऐसे में यह निश्चित है कि दृष्टि विकलांग तथा सामान्य विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षाओं एवं समायोजन में अन्तर होगा। इसका कारण उनका शैक्षिक परिवेश, पारिवारिक माहौल एवं सामाजिक वातावरण हो सकता है। शोधकर्ता अपने इस शोध के माध्यम से सामान्य तथा दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर एवं शिक्षा की मुख्य धारा में समायोजन की तुलना कर प्राप्त अन्तर या समानता के कारणों का पता लगाने का प्रयास किया है शोधकर्ता काफी आशान्वित है कि शोध के परिणाम विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर को ऊँचा उठाने एवं शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में विशेष मदद मिलेगी।

सैनी (2005) ने अन्ध विकलांग छात्रों-छात्राओं के समायोजन का अध्ययन किया और पाया कि अन्ध विकलांग छात्र तथा छात्राओं की समायोजन क्षमता में सार्थक अन्तर होता है। लाजवन्त (2004) ने सामान्य छात्र व श्रवण बाधित छात्रों की आकांक्षा व समायोजन का अध्ययन किया। सामान्य छात्रों की तुलना में श्रवण बाधित छात्रों की आकांक्षा स्तर निम्न हैं, श्रवण बाधित छात्र अपने परिवार में, स्वास्थ्य की दृष्टि से, भावनात्मक दृष्टि से व विद्यालय तथा समाज में निम्न समायोजित है स्तपथी, सुजाता और सिंघल, सुशीला (2002) - दृष्टि बाधित तथा श्रवण बाधित बालकों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन किया और पाया कि दृष्टि बाधित बालकों ने श्रवण बाधित बालकों से बेहतर उपलब्धि प्राप्त की। बनर्जी, एन0 (1993): पश्चिम बंगाल में माध्यमिक स्तर पर पढ़ने वाले अन्ध विकलांग छात्रों की समायोजन समस्या का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकला कि पूर्ण दृष्टि विकलांग और कम दृष्टि विकलांगों में समायोजन का स्तर सकारात्मक पाया गया। अध्ययन में यह भी पाया गया कि वातावरण के साथ परस्पर

सम्बन्ध के कारण अन्ध किशोर छात्रों के समायोजन में उनकी उम्र का भी प्रभाव पाया गया।

**उद्देश्य -**

- माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर के सामान्य विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर के सामान्य विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन का अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन का अध्ययन करना।

**परिकल्पना-**

- माध्यमिक स्तर के सामान्य विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का स्तर उच्च है।
- माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का स्तर सामान्य है।
- माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सार्थक अन्तर है।
- माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्य धारा में समायोजन में सार्थक अन्तर है।

समष्टि एवं न्यादर्श: प्रस्तुत समस्या के अध्ययन हेतु उत्तर प्रदेश में अध्ययनरत् समस्त दृष्टि विकलांग तथा सामान्य विद्यार्थियों को समष्टि के रूप में सम्मिलित किया गया है। जिसमें से शोध हेतु न्यादर्श के रूप में समस्त उत्तर प्रदेश के माध्यमिक स्तर के सामान्य विद्यालयों तथा दृष्टि विकलांग विद्यालयों से 300 विद्यार्थियों का चुनाव गुच्छ प्रतिचयन प्रणाली से किया जायेगा।

शोध उपकरण: प्रस्तुत समस्या में शैक्षिक आकांक्षा के अध्ययन हेतु 'शैक्षिक आकांक्षा मापनी' Educational Aspiration Scale (मै), डा. वी.पी. शर्मा एवं अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित तथा शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन हेतु 'समायोजन सूची' Adjustment Inventory for School Students (AISS), डा. ए.के.पी. सिन्हा एवं डा. आर.पी. सिंह' के द्वारा निर्मित प्रमापीकृत मापनी का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्त विश्लेषण: प्रस्तुत समस्या के विश्लेषण हेतु दृष्टि विकलांग तथा सामान्य विद्यार्थियों के शैक्षिक आकांक्षा तथा उनके समायोजन को

देखने के लिए क्रान्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया है।

शोध परिकल्पना का परीक्षण :- माध्यमिक स्तर के सामान्य विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर उच्च है इसका परीक्षण करने के लिए पहले इसे शून्य परिकल्पना में परिवर्तित किया जो इस प्रकार है-

“माध्यमिक स्तर के सामान्य विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर उच्च नहीं है।”

### सारणी संख्या-1

सामान्य विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का मध्यमान और मानक विचलन

विद्यार्थियों के प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन
सामान्य विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा	150	22.88	

7.34

उपरोक्त सारणी में सामान्य विद्यार्थियों के शैक्षिक आकांक्षा स्तर का मध्यमान एवं मानक विचलन प्रदर्शित किया गया है जिसका शैक्षिक आकांक्षा स्तर मापनी के मानक सारणी (Norm Table) में तुलना करने पर पाया गया है कि उपरोक्त मान औसत श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि माध्यमिक स्तर के सामान्य विद्यार्थियों का शैक्षिक आकांक्षा स्तर औसत है।

शोध परिकल्पना का परीक्षण – माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का स्तर सामान्य है। इसका परीक्षण करने के लिए पहले इसे शून्य परिकल्पना में परिवर्तित किया, जो इस प्रकार है-

“माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का स्तर सामान्य नहीं है”।

### सारणी संख्या-2

दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का मध्यमान और मानक विचलन

विद्यार्थियों के प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन
दृष्टि विकलांग विद्यार्थी	150	20.76	6.94

उपरोक्त सारणी में दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों के शैक्षिक आकांक्षा स्तर का मध्यमान एवं मानक विचलन प्रदर्शित किया गया है जिसका शैक्षिक आकांक्षा स्तर मापनी के मानक सारणी (Norm Table) में तुलना करने पर पाया गया है कि उपरोक्त मान औसत

श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। अतः हमारी शून्य परिकल्पना यह कि माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का स्तर सामान्य नहीं है। स्वीकृत की जाती है और हमारी शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है। उपरोक्त तालिका के निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों के शैक्षिक आकांक्षा स्तर औसत है।

शोध परिकल्पना का परीक्षण: माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सार्थक अन्तर है इसका परीक्षण करने के लिए सर्वप्रथम इसे शून्य परिकल्पना में परिवर्तित किया जो इस प्रकार है-

“माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।”

### सारणी संख्या-3

सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर की सारणी

चर	प्रयोज्य एवं संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात (t)	परिणाम
शैक्षिक आकांक्षा स्तर	सामान्य विद्यार्थी (150)	22.89	7.339		0.05 स्तर पर शून्य
	दृष्टि विकलांग विद्यार्थी (150)	20.76	6.942	2.582	परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

$t 0.05 = 1.96$

0.05 स्तर पर सार्थक होने के लिए ज का मान 1.96 होना चाहिए। उपरोक्त तालिका में परिगणित (t) का मान 2.582 है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः उपरोक्त तालिका के आधार पर निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर में अन्तर पाया जाता है।

शोध परिकल्पना का परीक्षण – “माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में सार्थक अन्तर है, इसका परीक्षण करने के लिए सर्वप्रथम इसे शून्य परिकल्पना में परिवर्तित किया जो इस प्रकार है-

“माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है”।

सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन की सारणी

चर	प्रयोज्य एवं संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात (t)	परिणाम
शिक्षा की मुख्य धारा में समायोजन	सामान्य विद्यार्थी (150)	14.70	07.40	2.20	0.05 स्तर पर शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।
	विकलांग विद्यार्थी (150)	16.70	08.33		

$$t_{0.05} = 1.96$$

0.05 स्तर पर सार्थक होने के लिए ज का मान 1.96 होना चाहिए। उपरोक्त तालिका में परिगणित (t) का मान 2.20 है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः उपरोक्त तालिका के आधार पर निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में अन्तर पाया जाता है।

**व्याख्या-**

1. माध्यमिक स्तर के सामान्य विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का स्तर औसत है: किसी भी विद्यार्थी की शैक्षिक आकांक्षा, उसको मिलने वाले शैक्षिक वातावरण पर निर्भर करती है विभिन्न शोधों के परिणाम बताते हैं कि माध्यमिक विद्यालयों के शैक्षिक वातावरण में धनात्मक प्रगति नहीं हो पा रही है। जिसके कारण ही माध्यमिक स्तर के सामान्य विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का स्तर औसत है।
2. माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा का स्तर औसत है: राज्य में दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों के लिए राज्य सरकार तथा एन.जी.ओ. के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था की जा रही है जिनकी समस्त प्रकार की व्यवस्था अनुदान पर ही निर्भर होती है। अनुदान के अभाव में विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान करना सम्भव नहीं हो पाता है जिसके कारण एक स्वस्थ शैक्षिक माहौल दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों को दे पाना समय पर सम्भव नहीं हो पाता है। साथ ही साथ दृष्टि सम्बन्धी शारीरिक न्यूनता के कारण भी उनमें अपने लक्ष्य निर्धारित करने तथा उन्हें प्राप्त करने में समस्याएँ आती हैं इसी कारण से दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा उच्च स्तर की न होकर औसत स्तर की है।
3. माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों

की शैक्षिक आकांक्षा स्तर में सार्थक अन्तर होता है: सामान्य विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है इसका प्रमुख कारण सामान्य विद्यार्थियों को घर एवं विद्यालय दोनों स्थानों से पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता है वहीं अधिकतर दृष्टि विकलांग विद्यार्थी आवासीय विद्यालयों में पढ़ते हैं जिसके कारण उन्हें पारिवारिक प्रोत्साहन की प्राप्ति निरन्तर नहीं हो पाती है जिसके कारण इन्हें अपनी पूर्व सफलता के आधार पर आगे के लक्ष्य निर्धारित में वह सफलता नहीं मिल पाती है जो सामान्य विद्यार्थियों को मिलती है। इसके अतिरिक्त दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण में अन्तर एवं उनकी शारीरिक न्यूनता भी प्रमुख कारण हैं जो कि उनके शैक्षिक आकांक्षा स्तर को सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा कम करते हैं।

4. माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में अन्तर पाया जाता है: माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा कम है, इसका कारण यह हो सकता है कि माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग विद्यार्थी आवासीय विद्यालयों में रहकर अध्ययन करते हैं जिसके कारण उनका समाज से कम सम्बन्ध हो पाता है साथ ही उनकी शारीरिक न्यूनता भी एक कारण होती है जिसकी वजह से वह अपनी शैक्षिक प्रगति में सामान्य विद्यार्थियों की भाँति सीखने के सामाजिक अभिकरणों का उपयोग नहीं कर पाते हैं। इसके अतिरिक्त दृष्टि विकलांग छात्र सामान्य छात्रों की भाँति माता-पिता एवं अध्यापकों तथा साथी समूह के प्रोत्साहन को प्राप्त नहीं कर पाते हैं, तथा उन्हें अक्सर दयनीय समझा जाता है। जिसके कारण इनकी समायोजन क्षमता कम होती है। उपरोक्त कारणों के अलावा, मनोवैज्ञानिक शोधों ने यह सिद्ध कर दिया है कि बालक जिसे मूर्त रूप में देखता उनको ज्यादा समय तक याद रख सकता हो तथा ज्यादा आसानी से याद कर लेता है, चूँकि दृष्टि विकलांग विद्यार्थी, स्पर्श द्वारा, सुनकर, सूँघकर ही सीखते हैं, देखकर नहीं इस कारण से इनके सीखने की गति प्रभावित होती है जिसके कारण, सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा इनका शैक्षिक क्षेत्र में समायोजन प्रभावित होता है।

माता-पिता बच्चों को सहृदय स्वीकारें, इसके लिए कुछ सुझाव:- माता-पिता को इस बात से अवगत कराना चाहिए कि बालक की विकलांगता उसकी उन्नति को नहीं रोकती है बल्कि हीन भावना ही मार्ग रोकती है। इस हीन भावना के उत्पन्न होने में माता-पिता का बहुत बड़ा हाथ होता है। एक विकलांग बालक अति संवेदनशील बन सकता है। उसमें शर्म, स्वदया (Selfpity) आदि दुर्गुण आ सकते हैं। अधिकतर माता-पिता यह चाहेंगे कि उसका बालक अधिक अक्षम न बने, इसके लिए उन्हें बालकों को हीन भावना से बचाना चाहिए।

शिक्षण संभावनाओं का ज्ञान – कुछ माता-पिता अपने बच्चों की शैक्षिक सीमाओं को देखकर वे अपने बालकों की सम्भावनाओं का पता लगायें कि वह क्या बन सकता है ? इस कार्य में उन्हें अध्यापकों की भी मदद लेनी चाहिए।

**माता-पिता में कौशल का विकास-**

- दिन-प्रतिदिन का कार्य स्वयं करने का प्रशिक्षण दे।
- परिवार की सभी गतिविधियों में शामिल करें।
- किसी सामाजिक उत्सव में भाग लेते समय इन्हें भी साथ रखें।

**शिक्षकों का दायित्व :-** शिक्षकों को यह चाहिए कि वे माता-पिता को बालक की सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक और आर्थिक आवश्यकताओं से अवगत करायें। सभी बालकों को एक सन्तुलित भोजन, नींद और सन्तुलित आराम की आवश्यकता है। वे समान प्यार के आकांक्षी होते हैं। वे अपनी इच्छाओं के अनुसार अपना जीवन यापन करना चाहते हैं। वे दूसरों से प्रशंसा और सुरक्षा चाहते हैं। बालकों की इन विभिन्न आवश्यकताओं के प्रति जागरूक रहना माता-पिता का कर्तव्य है क्योंकि बालकों की आवश्यकताओं को अध्यापक सही ढंग से समझ नहीं सकते हैं।

**विशेष विद्यालयों की कमी को दूर करना:-** दृष्टि विकलांग बालकों के शिक्षण एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए प्रदेश में विकलांगों की संख्या को देखते हुए विशेष विद्यालयों एवं प्रशिक्षण केंद्रों का अभाव है। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अन्ध विकलांग बालिकाओं के लिए सरकारी या गैर सरकारी स्तर पर कोई भी शैक्षिक संस्था संचालित नहीं है। इसके लिए सरकार को विकलांगों की शैक्षिक समस्याओं को देखते हुए और अधिक विशेष विद्यालय एवं इनकी व्यावसायिक समस्याओं को देखते हुए प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना करनी चाहिए।

**चिकित्सा सुविधा की कमी को दूर करना:-** सरकार को स्थानीय एवं जिला स्तर पर चिकित्सकीय सुविधा उपलब्ध करानी चाहिए क्योंकि यथा समय चिकित्सा सेवा उपलब्ध न होने से उनकी शैक्षिक आकांक्षा, शिक्षा के क्षेत्र में समायोजन क्षमता एवं उत्तम अध्ययन आदतें प्रभावित होती है। चिकित्सक भी अपना कर्तव्य निभाते हुए विकलांगों की चिकित्सकीय सेवा करते हुए इनके प्रति न्याय के अपने दायित्व को निभाना चाहिए।

**संदर्भ ग्रंथ सूची:-**

1. आर.पी. सैनी (2005), "विभिन्न प्रकार के विकलांग किशोर छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि, समायोजन क्षमता एवं उनकी व्यवसायिक चिन्ता का तुलनात्मक अध्ययन" पी.एच.डी., (शिक्षा शास्त्र), कानपुर: छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय।
2. कपिल, एच. के0(2003): "अनुसंधान विधियां (व्यवहारिक विज्ञानों में), आगरा, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशन, कुल पृष्ठ संख्या- 210
3. सिंह, अरूण कुमार(2008): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षा में शोध विधियाँ, दिल्ली, मोती लाल बनारसी दास, कुल पृष्ठ संख्या- 605
4. विकलांग व्यक्तियों की पहचान - 2002, राष्ट्रीय

संस्थान (विकलांगता के क्षेत्र), सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

5. Lajwanti (2003), Aspiration and Adjustment and Associated with Hearing Impaired and Normal Children. Indian Educational Abstracts Volume-4, Number-2, July (2004) Page No.- 24

## वचित समाज का शिक्षाशास्त्र

डॉ. शुद्धात्मप्रकाश जैन

नीरज काण्डपाल

इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन एण्ड रिसर्च,

मंगलायतन विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)

शोध श्री



shodhshree@gmail.com

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ मनुष्य के अन्दर छुपी प्रतिभा को बाहर लाकर विकसित करना भले ही हो, लेकिन शिक्षा का व्यावहारिक कार्य सामाजिक हाशिये पर स्थित मानवों को समाज की मुख्य धारा में लेकर आना है। इस प्रकार स्वतः ही अन्दर छिपी प्रतिभा के साथ-साथ छिपे हुए लोग भी समाज के सामने आयेंगे। यही शिक्षा का लोकतांत्रिक लक्ष्य भी है कि सभी मनुष्यों को एक ही सुविधा मिले तथा अवसर मिले।

भारतीय संविधान की मूल भावना की रक्षा करने तथा धर्मनिरपेक्ष और समतामूलक समाज के रूप में इसकी अलग पहचान बनाए रखने के लिए भाषायी और शिक्षा की दृष्टि से समाज के हाशिये के लोगों के हितों की रक्षा के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए। इस हेतु 1960-61 में डेबर समिति का गठन किया गया। समिति ने देश की विभिन्न संस्थाओं के द्वारा अथक परिश्रम कर यह पता लगाया कि अनुसूचित जाति की बालिकाओं की शिक्षा में किन सुविधाओं की व्यवस्था नहीं हो पा रही है। डेबर समिति ने भारत की राज्य और केन्द्र सरकारों से आग्रह किया कि विशेष कार्यक्रम और निर्देशन में अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगों में परिवर्तन लाने के लिए इनमें प्राथमिक शिक्षा का विकास किया जाये।

संवैधानिक अधिकार में नागरिकों के एक समान अधिकारों एवं कर्तव्यों की विशद व्याख्या की गई है। संविधान की धारा 29 (2) के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है कि “राज्य द्वारा पोषित या राज्य नीति से सहायता प्राप्त करने या किसी शिक्षा संस्था में किसी नागरिक को धर्म, प्रजाति, जाति, भाषा या उनमें से किसी एक के आधार पर प्रवेश देने से नहीं रोका जायेगा।” राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की परिकल्पना भारतीय संविधान में दिये गये मूलभूत सिद्धान्तों से अनुप्राणित हैं। इन्हीं सिद्धान्तों पर लोकतंत्र, धर्म-निरपेक्षता तथा समाजवाद की जड़ों को मजबूत किया जा सकता है।

शिक्षा आयोग (1964-66) के अनुसार – “जो भी समाज सामाजिक न्याय को अत्यन्त आदर्श मानता है, जन-साधारण की हालत सुधारने तथा समस्त शिक्षा पाने योग्य व्यक्तियों को शिक्षित करने को उत्सुक है, उसे यह व्यवस्था करनी ही होगी कि जनता के सभी वर्गों को अवसर की अधिकाधिक समता प्राप्त होती जाये। एक समतामूलक तथा मानवतामूलक समाज, जिसमें निर्बल का शोषण कम से कम हो, बनाने का यही एक सुनिश्चित साधन है।”

हाशिये की बात करने पर आज संसार में बहुत से कारक अथवा घटक हैं जो मनुष्य को मुख्य धारा से अलग करते हैं जिनमें से मुख्य भौगोलिक अवरोध, सांस्कृतिक विलम्बना, आर्थिक स्थिति तथा अल्प विकसित समाज हैं। ये सभी घटक समाज को या समाज के सदस्यों को मुख्यधारा से दूर ले जाते हैं, जिसका कारण किसी न किसी प्रकार से वहां तक शिक्षा की पहुंच का न होना है।

समाज को अगर परस्पर शांति से आगे बढ़ना है तो वह इस हाशिये पर स्थित वर्ग से मुंह नहीं फेर सकता। ऐसा करने पर हमें हमेशा ही उग्रवाद एवं आतंकवाद जैसे विलंबकारी उत्पादों से सामना करना पड़ेगा, इसलिए यह सामान्यतः समाज का एवं विशेषतः शासन का दायित्व है कि वह नीतियां बनाये, नीतियों को

कार्यरूप दे एवं किसी भी हद तक जाकर समाज के इस वर्ग के उत्थान को सुनिश्चित करे।

इस दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ तथा उसकी प्रमुख सहयोगी शाखा यूनेस्को (यूनाइटेड नेशन्स एजुकेशनल, साइंटिफिक एण्ड कल्चरल ऑर्गनाइजेशन) तथा अन्तर्राष्ट्रीय विश्व संगठनों को इस दिशा में महान कार्य करने का श्रेय जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व मानवीय अधिकारों के अन्तर्गत निम्नलिखित क्षेत्रों में समान अवसरों की अवधारणा को स्वीकार किया है—

- नागरिक अधिकार
- राजनैतिक अधिकार
- आर्थिक अधिकार
- सामाजिक अधिकार
- सांस्कृतिक अधिकार

‘अवसरों की समानता’ से तात्पर्य उन समान परिस्थितियों से है, जिनमें सभी व्यक्तियों को विकास के समान अवसर प्राप्त हो सकें और सामाजिक भेदभाव का अन्त हो सके तथा सामाजिक न्याय के लक्ष्य की प्राप्ति भी सम्भव हो सके। प्रो. लास्की (सैंप) ने लिखा है— ‘समानता का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाय अथवा सभी को समान वेतन दिया जाये। यदि एक पत्थर ढोने वाले का वेतन एक प्रसिद्ध गणितज्ञ या वैज्ञानिक के समान कर दिया जाय, तो इससे समाज का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा, अतः समानता का अर्थ यह है कि विशेष अधिकार वाला वर्ग न रहे और सबको उन्नति के समान अवसर मिलें।’

वंचित वर्ग के लिए नीतियां बनाने, उन पर अमल करने से भी जरूरी है कि उन्हें उचित अवसर मिले कि वे स्वयं ही शिक्षा की प्रासंगिकता को समझे और उसे पाने के लिए लालायित हो उठे, यह प्रक्रिया अवश्य ही धीमी होगी, लेकिन इससे प्राप्त की गई ऊर्जा कभी क्षीण नहीं होगी, लोहिया के शब्दों में— ‘शक्ति मौका आने पर प्रकट होती है और प्रकट होते-होते आगे बढ़ती है। शक्ति दबाने पर दबती चली जाती है कि मानव हो ही नहीं, या कभी रही ही न हो।’

अवसरों की समानता के सम्बन्ध में यू.एन. डिक्लरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स ने धारा 1 एवं धारा 2 के अन्तर्गत मानवीय अधिकारों तथा समानता के अवसरों को स्वीकार किया है।

धारा-1 — ‘सभी व्यक्ति जन्म से स्वतंत्र हैं, अतः वे सम्मानजनक तथा समान अधिकारों के हकदार हैं वे सभी तर्क एवं चेतना से अभिपूरित हैं तथा उन्हें परस्पर एक-दूसरे के प्रति भाईचारे की भावना के साथ कार्य करना चाहिए।

धारा 2— ‘प्रत्येक व्यक्ति इस घोषणा में उद्धृत मूल अधिकारों तथा स्वतंत्रता का हकदार है। अतः उन्हें जाति, भाषा, धर्म, रंग, लिंग, राजनीति, मतों द्वारा पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता है।’

आज हमारा समाज हाशिये पर स्थित मनुष्यों को कुछ शब्दों में बांध तो अवश्य देता है लेकिन उनके उत्थान से डरता है। उसे डर है कहीं

यह शब्द समाप्त न हो जाये तथा समाज में उसकी तथाकथित श्रेष्ठता खत्म न हो जाये। संसार के सभी देशों एवं प्रदेशों में आज लोकतांत्रिक व्यवस्था आ चुकी है तथा लोकतांत्रिक समाज के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कई प्रयास भी किये जा रहे हैं। कुछ कागजों पर तो कुछ यथार्थ रूप ले पाने में सफल हो रहे हैं। विकसित देशों एवं विकसित समाज में यद्यपि आज उक्त वर्ग के लिए अनेकों अवसर प्रदान किये जाने की सुविधा है, तथापि अन्य देशों में अभी भी इसकी शुरुआत होनी बाकी है। आज जिन्हें शिक्षा प्राप्त नहीं हो पा रही है, निश्चित ही वह वर्ग उत्पीड़ित कहलाया जा सकता है। इस वर्ग की शिक्षा की बात करने से पहले इनके शिक्षाशास्त्र को पहचानना आवश्यक है।

‘मानवतावादी और स्वातंत्र्यवादी, शिक्षाशास्त्र के रूप में उत्पीड़ितों के शिक्षाशास्त्र की दो स्पष्ट रूप से भिन्न अवस्थाएं होती हैं। पहली अवस्था में उत्पीड़ित लोग उत्पीड़न के विश्व का अनावरण करते हैं और आचरण के जरिये उसके रूपांतरण के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। दूसरी अवस्था में, जिसमें उत्पीड़न के यथार्थ का रूपांतरण हो चुका होता है, यह शिक्षाशास्त्र केवल उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र नहीं रहता, बल्कि स्थायी मुक्ति की प्रक्रिया में सभी मनुष्यों का शिक्षाशास्त्र बन जाता है। इन दोनों अवस्थाओं में सदा ही गंभीर कर्म के जरिये, प्रभुत्व की संस्कृति का मुकाबला सांस्कृतिक रूप से किया जाता है। पहली अवस्था में यह मुकाबला उत्पीड़ितों के द्वारा उत्पीड़न के विश्व को देखे जाने के ढंग को बदल कर किया जाता है, दूसरी अवस्था में यह मुकाबला पुरानी व्यवस्था में निर्मित और विकसित उन मिथकों का बहिष्कार करके किया जाता है, जो कातिकारी रूपांतरण से उभरने वाली नई संरचना पर प्रेतों की तरह मंडराते हैं।’

उत्पीड़ितों को शिक्षित करने के लिए प्रथम स्तर पर ऐसे मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाविदों एवं समाजशास्त्रियों की आवश्यकता है जो उनके मनोविज्ञान को समझे, तथा उनकी सांस्कृतिक सीमाओं के अन्तर्गत शिक्षा का प्रादुर्भाव कर सकें। उदाहरण के तौर पर भारत जैसे कई देश हैं जिन्हें आज आजाद हुए लगभग 65 वर्ष हो गये, कई नीतियां बना चुके, कई आयोग, शिक्षा समितियां बना चुके, इसके बावजूद भी कुछ खास हासिल नहीं कर सके हैं। एक बार मनोविज्ञान को जानने के बाद संभवतः शिक्षा जैसी अमूर्त सम्पत्ति को उपादेय बनाया जा सकता है। एक बार इसमें सफलता प्राप्त होने पर मनुष्य के जमीर को जगाया जा सकता है। यह कार्य कैसे किया जाये, इसकी रूपरेखा हम विवेकानन्द के शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं— ‘सर्वप्रथम जनता को जागृत करना चाहिए, जो पेट भर भोजन पाने पर ही अपने राष्ट्र के कल्याण का कार्य करेगी। अधूतों जैसे मोची, भंगी आदि के पास जाओ और उन्हें बताओ कि तुम राष्ट्र की आत्मा हो, तुम्हारे अन्दर एक शक्ति छिपी है, जो संसार में क्रांति ला सकती है। तुम लोग उठो, तब सम्पूर्ण विश्व तुम पर आश्चर्य करेगा।’

हमारे नीतिनिर्देशकों तथा शासकों एवं प्रशासकों को यह बात मस्तिष्क में रखनी होगी कि प्रत्येक मनुष्य का उत्थान अनेक

मनुष्यों के लिए आवश्यक है। जैसा कि आइन्सटीन ने कहा है— “मनुष्य से बढ़कर मनुष्य के लिए कोई भी वस्तु उपयोगी नहीं है।” सर्वप्रथम इस ओर ध्यान देते हुए भौगोलिक अवरोध के कारण उत्पीड़ितों वाला जीवन जी रहे ग्रामीणों के लिए अमेरिका में 1785 ई० में फिलाडेलफिया समिति का गठन हुआ और उस समिति ने सुझाव दिया कि ग्रामीण जनता के उत्थान के लिए वहाँ पर ‘स्कूल से बाहर शिक्षा’ दी जाये, जिससे कि लोगों का उत्थान हो सके। इसी क्रम में सन् 1862 में प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट ने लिबर्टी हाइडवेले की अध्यक्षता में “ग्रामीण आयोग” का गठन किया। उसका उद्देश्य थे कि—

- किस प्रकार ग्रामीण जनता को नगरों में जाने से रोका जाये और
- किस प्रकार ग्रामीण जनता को कृषि तथा ग्रामीण विकास के कार्यों में लगाया जाये क्योंकि बिना कृषि के विकास के औद्योगिक विकास कठिन है, अतः अधिक से अधिक जनता गांव में रहे और कृषि का विकास करे।’

हाशिये की संकुचित विचारधारा से जकड़े लोगों को स्वतंत्रता की राह दिखाते हुए महान शिक्षाशास्त्री पाओलो फ्रेरे ने भी अनेक पुस्तकों की रचना की। लैटिन अमेरिका और अफ्रीकी देशों में उत्पीड़ित वर्ग के लिए शिक्षा के मामले में वह एक सीमा तक मसीहा बन चुके हैं। इन देशों में फ्रेरे की ‘उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र’ पुस्तक उत्पीड़ित और संघर्षरत वर्गों के लिए एक प्रकार से ‘शिक्षा की गीता’ बन चुकी है। प्रस्तुत प्रासंगिकता—अध्ययन, फ्रेरे की तीन बहुचर्चित पुस्तकों ‘पेडागॉजी आफ दी आप्रेसड’ (उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र), कल्चरल एक्शन फॉर फ्रीडम (स्वतंत्रता के लिए सांस्कृतिक कार्रवाई) तथा एजुकेशन फॉर क्रिटिकल कांशसनेस (विवेचनात्मक चेतना के लिए शिक्षा) पर आधारित है।

वास्तव में फ्रेरे का दर्शन अनुभव, व्यवहार तथा परिणाम की ठोस जमीन पर खड़ा है। यह कहना बेहतर होगा कि लैटिन अमेरिका में उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्षरत उत्पादक शक्तियों द्वारा उर्वरित मिट्टी से इस शिक्षादर्शन का जन्म हुआ। फ्रेरे ने तीसरी दुनिया (समाज के हाशिये वर्ग के लोगों की दुनिया) के सीमांत मानव या उप मानव की मुक्ति के अंकुर शिक्षा में देखे हैं, यथार्थवादी शिक्षा के दायरे में नहीं, वरन् एक ऐसी शिक्षाप्रणाली में जो उत्पादक शक्तियों तथा उत्पादन—नियंत्रक संस्थाओं के बीच के रिश्तों को संवादात्मक आयाम देगी।

आज तीसरी दुनिया के राजनैतिक, प्रशासनिक और बौद्धिक नेतृत्व वर्ग ने जहाँ नियोजित ढंग से शिक्षा का अति—सामान्यीकरण किया, वही संबन्धित देशों की वस्तुस्थितिजन्य विशिष्टताओं को भी नजरअंदाज किया गया। नतीजा यह हुआ है कि तीसरी दुनिया उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी शिक्षा की खपत मंडी बन गया। दूसरी ओर समूचा नेतृत्व स्वयं मानसिक रूप से कभी मुक्त नहीं हो सका, इसलिए वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दलाल की भूमिका निभाता रहा। स्थिति

यहाँ तक पहुँच गई कि उसने पश्चिम के मूल्यों की स्वस्थ प्रतिकृति के स्थान पर उसकी विद्रूप अनुकृति को अपने जीवन—आदर्श के रूप में स्वीकार किया। इस विद्रूप अनुकृति का ‘कैंसरी प्रभाव’ शिक्षा पर पड़ा। शासक वर्ग और जनता के बीच खाई बढ़ती चली गई। राजनैतिक वर्ग की कथित लोकतांत्रिक और समाजवादी नीतियों के बावजूद, रजनी कोठारी के शब्दों में “आज शिक्षा हमारे समाज में सुविधाभोगी वर्ग का आधार तथा उच्च शिक्षा शोषण का हथियार तथा विषमताओं की जननी बनी हुई है।

केवल उत्पीड़ित लोग ही स्वयं को मुक्त करके अपने उत्पीड़कों को मुक्त कर सकते हैं। उत्पीड़क, एक उत्पीड़नकारी वर्ग के रूप में न तो दूसरों को मुक्त कर सकते हैं, न स्वयं को, अतः यह आवश्यक है कि उत्पीड़ित लोग उस अंतर्विरोध को दूर करें, जिसमें वे फंसे हुए हैं। यह अंतर्विरोध एक नए मनुष्य के आविर्भाव से दूर होगा, जो न तो उत्पीड़क होगा और न उत्पीड़ित। वह मुक्त होता हुआ मनुष्य होगा। यदि उत्पीड़ितों का लक्ष्य पूर्ण मनुष्य बनना है तो वे अपने इस लक्ष्य तक अंतर्विरोध में पद—परिवर्तन करके या सिर्फ धुवों को बदल देने से (अर्थात् स्वयं उत्पीड़क बनकर अपने उत्पीड़कों को उत्पीड़ित बना देने से) नहीं पहुँचेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची:—

1. फ्रेरे पाओलो (1997) उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र, द्वितीय संस्करण, ग्रंथशिल्पी, नई दिल्ली
2. जोशी, रामशरण (1997) आदिवासी समाज और शिक्षा, ग्रंथशिल्पी, नई दिल्ली
3. कल्ला पी.एन., गक्खड अचला (2007) द्वितीय संस्करण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
4. ओड, एल.के., शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
5. पोखरियाल, सिद्धार्थ कुमार, (2013), 73वें संविधान संशोधन में महिला सशक्तीकरण का प्रभाव, शिक्षक अन्तर्दृष्टि... (वर्ष—1, अंक—3), पृ०—13



## हिन्द यवन शासकों के वैवाहिक संबंध और उनका राजनीति पर प्रभाव

राजुल अग्रवाल

शोधार्थी, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्यप्रदेश)

प्राचीन भारतीय इतिहास में वैवाहिक संबंधों का राजनीति पर एक अनूठा प्रभाव देखा गया है। इन वैवाहिक संबंधों के द्वारा एक शासक जब दूसरे शासक के साथ संबंध स्थापित करता था तब विवाह के रूप में एक ओर जहाँ शक्तिशाली शासक के साथ मधुर संबंध स्थापित होते थे वहीं दूसरी ओर दहेज के रूप में उसे कुछ ग्राम, राज्य क्षेत्र, सैनिक व आर्थिक सहायता भी प्राप्त होती थी। इस प्रकार उस शासक को उस राज्य का समर्थन भी प्राप्त हो जाता था, जिसका उपयोग वह अपने साम्राज्य की सुरक्षा व साम्राज्य विस्तार में करता था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि युद्धभूमि में एक शासक जब दूसरे शासक से युद्ध में पराजित होने लगता था तो शीघ्र ही वैवाहिक नीति का सहारा लेकर विजित शासक के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित कर लेता था, परिणामस्वरूप वह अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखने के साथ-साथ विजेता से मिलने वाली अपमान जनक पराजय से भी छुटकारा पा लेता था। इस प्रकार एक प्रबल केन्द्रीय सत्ता की स्थापना कर अन्य छोटे-बड़े राज्यों की विच्छेदक प्रवृत्तियों और उनके पारस्परिक वैमनस्य को रोकने के लिए यह नीति पर्याप्त शक्तिशाली थी। मैंने अपने शोध पत्र में हिन्द यवन शासकों के वैवाहिक संबंधों को बताते हुए उनका राजनीति में पड़ने वाले प्रभावों को दिखाने का एक प्रयास किया है जिसका उद्देश्य शासकों की साम्राज्यवादी नीति का अवलोकन करना भी है।

यवन आक्रमणकारी सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसके पूर्वी प्रदेशों का उत्तराधिकारी सैल्युकस हुआ। बैबीलोन तथा बैक्ट्रिया को जीतकर उसने पर्याप्त शक्ति अर्जित कर ली। वह अपने सम्राट सिकन्दर द्वारा जीते गए भारतीय प्रदेशों को पुनः अपने अधिकार में लेने को उत्सुक था। इस उद्देश्य से 305 ई.पू. के लगभग उसने भारत पर चढ़ाई की और मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त पर आक्रमण किया। किन्तु इस समय की राजनैतिक स्थिति सिकन्दर के आक्रमण से भिन्न थी। पंजाब एवं सिन्ध अब परस्पर युद्ध करने वाले छोटे-छोटे राज्य न होकर एक विशाल साम्राज्य का अंग थे।

एप्पियानस ने लिखा है कि “सैल्युकस ने सिंधु नदी पार की और भारत के मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त से युद्ध किया। अन्त में दोनों में सन्धि हो गयी जिसके परिणामस्वरूप दोनों के बीच वैवाहिक संबंध स्थापित हो गया।”<sup>2</sup>

- राजबलि पाण्डेय ने कहा है कि “इस परिस्थिति में बिना किसी लम्बे युद्ध के ही सैल्युकस को हार माननी पड़ी और वह सन्धि करने को विवश हो गया। सन्धि की चार शर्तें थीं।” सैल्युकस को वर्तमान अफगानिस्तान और बलोचिस्तान का सारा प्रदेश जो खैबर दर्रे से हिन्दुकुश तक फैला था, चन्द्रगुप्त को देना पड़ा। इन प्रदेश के अंतर्गत चार प्रान्त, हेरात- (एरिया), कन्दहार (ऐराकोशिया), पैरोपनिसद, (काबुल) और बलूचिस्तान (जेडोसिया) आते हैं।
- कन्योपायन – अर्थात् विजयी को कन्या देना। इसके अनुसार सैल्युकस ने अपनी राजकुमारी हेलेन

- चन्द्रगुप्त को ब्याह दी। उपहार में चन्द्रगुप्त ने 500 हाथी सैल्युकस को दिए।
- दूत विनिमय के अंतर्गत यूनानी राजदूत मैगस्थनीज को पाटलिपुत्र दरबार में भेजा।<sup>1</sup>
- नीलकण्ठ शास्त्री ने लिखा है कि “विवाह की शर्त पर ये चारों प्रदेश देने से लक्षित होता है कि विवाह हुआ और भूमि वधू को आंचल में दी गयी जैसा कि बौद्ध कथा में कोसलादेवी को काशी का प्रदेश आंचल/दहेज में मिला था व यूरोपीय इतिहास में बरांजा की कैथरीन को बम्बई का प्रदेश।”<sup>4</sup>

राधा कुमुद मुखर्जी ने लिखा है कि सैल्युकस को 500 युद्धपयोगी हाथी उपहार में देकर चन्द्रगुप्त मौर्य ने इस मैत्री का ओर अधिक सुदृढ़ बनाया। यह उपहार सैल्युकस के लिए बहुत अमूल्य था क्योंकि उसके संघ के कैसेंडर, लाईसिमैकस तथा तोलेमी नामक राजाओं ने, जो उसके मित्र थे, अपने समान शत्रु एटिगोनस के विरुद्ध, उससे मांगी थी, जिसके कारण वह बहुत चिंतित था। परन्तु चन्द्रगुप्त द्वारा दिए गए हाथी ठीक समय तक इट्स के रणक्षेत्र में पहुँच गए और एटिगोनस का बना बनाया खेल बिगाड़ दिया। जब चन्द्रगुप्त ने सैल्युकस को हाथी भेंट किए तो उसके बाद पश्चिमी देशों में लड़े जाने वाले युद्धों के लिए उन हाथियों की मांग होने लगी।

281 ई.पू. में पाइर्रहोस इन हाथियों को एपिरोस से इटली ले गया। 251 ई.पू. में हैसड्रुबुल ने पैनोरमस में भारतीय महावतों द्वारा चलाए जाने वाले हाथी इस्तेमाल किए। रोम के विरुद्ध द्वितीय प्यूनिक युद्ध में हैनियाल तथा हैसड्रुबुल ने इन्ही हाथियों को इस्तेमाल किया और राफिया की लड़ाई में तोलेमी के लीबियाई हाथी एंटीओकस के भारतीय हाथियों के सामने जरा देर न टिक सके।<sup>1</sup>

इस प्रकार इस वैवाहिक संबंध से जहाँ चन्द्रगुप्त के गौरव को चार चाँद लग गए व उसका साम्राज्य भारत की सीमाओं से आगे ईरान की सीमा तक फैल गया। वही सैल्युकस को प्राप्त इन पाँच सौ हाथियों के उपहार ने भी उसकी राजनैतिक स्थिति को मजबूत किया जिससे उसके राजनैतिक प्रभाव में वृद्धि हुई। यह वैवाहिक सन्धि का ही परिणाम था कि सीरियन साम्राज्य के चार बड़े प्रांत मगध साम्राज्य में मिल गए व चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिकन्दर के हाँथों हुई भारत की पराजय का बदला भी ले लिया। इस वैवाहिक संबंध के द्वारा ही मौर्यों के विदेशी राज्यों के साथ कूटनीतिक संबंध भी स्थापित हुए। यहीं कारण था कि उसके पौत्र अशोक ने अपने दो शिलालेखों (दूसरे व तैरहवें) में यह घोषणा की कि सीरिया का सम्राट एटिओकस उसका पड़ोसी अथवा प्रत्यंत राज्य था।

डा. विन्सेट स्मिथ ने इस सन्धि के महत्व को बताते हुए कहा है कि “दो हजार वर्ष से भी पूर्व भारत के प्रथम सम्राट ने उस वैज्ञानिक

सीमा को प्राप्त कर लिया था, जिसके लिए ब्रिटिश उत्तराधिकारी व्यर्थ ही आहें भरते रहे तथा जिसे सौलहवीं व सत्रहवीं शताब्दियों के मुगल सम्राट भी कभी पूर्णरूप से प्राप्त नहीं कर सके।”

वैक्ट्रिया उपनिवेश सीरिया का एक गौरवशाली प्रान्त था जो सैल्युकस के साम्राज्य का अंग था। सैल्युकस के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी एण्टिओकस द्वितीय इस राज्य का शासक हुआ। एण्टिओकस द्वितीय के वैक्ट्रिया प्रांत में डायोडोटस प्रथम एक सामन्त की स्थिति में था परंतु 205 ई.पू. में वैक्ट्रिया के सामन्त डियोडोटस व पार्थिया के सामन्त अर्सिज ने अपने आप को सैल्युकस वंशी एण्टिओकस द्वितीय के अधीन न मानते हुए अपने को स्वतंत्र कर लिया व अपने नाम के सिक्के भी उत्कीर्ण कराए।<sup>1</sup> एण्टिओकस और न ही उसके उत्तराधिकारी सैल्युकस द्वितीय एवं सैल्युकस तृतीय में से कोई इतना अधिक शक्तिशाली न था कि वह इन विद्रोहियों से प्रदेशों को अपने अधिकार में कर सके अंततः अन्तियोकस द्वितीय व उनके उत्तराधिकारियों ने अपने को असमर्थ पाकर उन प्रान्तों की स्वाधीनता स्वीकार कर ली। एण्टिओकस द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् सैल्युकस द्वितीय ने अपनी बहन का विवाह वैक्ट्रिया नरेश डियोडोटस प्रथम के साथ कर दिया। दोनों राज्यों के बीच हुआ यह वैवाहिक संबंध बहुत महत्वपूर्ण था। परिणामस्वरूप दोनों राज्यों में मैत्री संबंध स्थापित हो गए।

डियोडोटस प्रथम के लिए यह एक गौरवशाली उपलब्धि थी। जहाँ डियोडोटस प्रथम जो कि सीरिया नरेश के अंतर्गत एक सामन्त था, उसी सीरिया साम्राज्य में वैवाहिक संबंध हो जाने से उसकी राजनैतिक शक्ति एवं सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ी, वहीं सीरिया सम्राट सैल्युकस द्वितीय को भी अपने बहनोई डियोडोटस प्रथम से अपने शासन कार्यों में सुविधायें प्राप्त हुई।<sup>1</sup>

सैल्युकस द्वितीय के द्वारा डियोडोटस प्रथम से वैवाहिक संबंध स्थापित करने के बहुत से ओर भी कारण थे। सर्वप्रथम तो यह था कि उसका उद्देश्य वैक्ट्रिया से मैत्री सम्बंध बनाकर पार्थिया के विरुद्ध अपने को मजबूत बनाना था जिससे वैक्ट्रिया व सीरिया दोनों मिलकर आक्रमणकारियों से अपने साम्राज्य को सुरक्षित रख सकते थे। दूसरा उद्देश्य यह भी हो सकता है कि वैक्ट्रिया एक धनी उपनिवेश राज्य व विश्व का एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था।<sup>1</sup> राजनैतिक दृष्टि से भी वैक्ट्रिया का भारत के लिए विशेष महत्व था, क्योंकि इसको आधार बनाकर ही यूनानी, शक, कुषाण आदि ने इस देश पर कालान्तर में आक्रमण किए थे।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर ही सैल्युकस द्वितीय ने अपनी बहन का विवाह वैक्ट्रिया नरेश के साथ सम्पन्न किया होगा।

वैक्ट्रिया से यूनान के संबंध स्थापित होने से सैल्युकस द्वितीय को अपने साम्राज्य को विकसित करने में सहायता मिल सकती थी एवं

संकट के समय सैनिक व आर्थिक सहायता भी। यही कारण था कि सैल्युकस द्वितीय अपनी बहन का विवाह वैक्ट्रिया शासक डियोडोटस प्रथम के साथ कराने को सहर्ष तैयार हो गया।

डियोडोटस प्रथम की मृत्यु के पश्चात् डियोडोटस द्वितीय वैक्ट्रिया राज्य का शासक हुआ। डियोडोटस द्वितीय अपने पिता की भाँति राजनीति में चतुर एवं होशियार नहीं था। उसने अपने पिता की नीति को त्याग दिया अर्थात् उसने सीरियाई राज्य से अपने मैत्री संबंधों को समाप्त कर दिया और साथ ही सीरियाई वंश की विमाता से अपने मधुर संबंधों को खराब कर लिया।

डियोडोटस द्वितीय ने एक ओर जहाँ सीरिया से संबंध खराब कर लिए वहीं दूसरी तरफ पार्थिया से मधुर संबंध स्थापित कर लिए। इस कारण उसकी माता जो सीरिया वंश से संबंध रखती थी, डियोडोटस द्वितीय से घृणा करने लगी। वह एक महत्वाकांक्षी महिला थी जिसने अपने पति का मृत्यु के बाद एक योग्य यूनानी सरदार यूथीडेमस से पुनः विवाह कर लिया। विवाह के पश्चात् यूथीडेमस ने अपनी पत्नी के कहने पर उसके पुत्र डायोडोटस 2 की हत्या करवा दी। इस प्रकार उसकी मृत्यु के पश्चात् यूथीडेमस ने वैक्ट्रिया राज्य को हस्तगत कर उस राज्य की गद्दी पर अधिकार कर लिया।<sup>11</sup> अतः कहाँ जा सकता है कि इस वैवाहिक संबंध के कारण वैक्ट्रिया राज्य में यूथीडेमस वंश का अधिकार स्थापित हो गया व राजनीति में हलचल भी।

डियोडोटस द्वितीय के पश्चात् यूथीडेमस नामक यूनानी सरदार जहाँ वैक्ट्रिया की गद्दी पर बैठा। वहीं 223 ई.पू. में सीरिया के राजसिंहासन पर सम्राट एण्टियोकस तृतीय शासक हुआ। एण्टियोकस तृतीय बहुत ही महत्वाकांक्षी शासक था। वह सिंकदर द्वारा खोये हुए प्रदेशों को वापिस प्राप्त करना चाहता था। पार्थिया के राजा को हराने के बाद उसने वैक्ट्रिया पर आक्रमण किया।<sup>12</sup> यूथीडेमस का साम्राज्य चारों तरफ से घिर गया। दो वर्ष तक धिरे रहने के बाद यूथीडेमस ने परेशान होकर अपनी ओर से सन्धि वार्ता क लिए टेलियस नामक व्यक्ति को राजदूत बनाकर अपने पुत्र डेमेट्रियस के साथ भेजा। अंत में विवश होकर एण्टियोकस ने यूथीडेमस के साथ भी सन्धि कर ली और सन्धि को स्थिर रखने के लिए अपनी पुत्री का विवाह वैक्ट्रियन राजा के पुत्र डेमेट्रियस (दिमित्र) के साथ कर दिया।<sup>13</sup> इस प्रकार इस विवाह के द्वारा दोनों राज्यों के बीच मैत्री संबंध स्थापित हो गए जिसके परिणामस्वरूप तीनों साम्राज्यों वैक्ट्रिया, पार्थिया व सीरिया ने मिलकर भारत पर आक्रमण किया।

हिन्द यवन शासकों में मेनाण्डर का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। स्ट्रेबो, जस्टिन, प्लूटार्क आदि ने मेनाण्डर की गणना यवन विजेताओं में की है। क्लासिकल लेखकों ने इसे डेमेट्रियस के सेनापति के रूप में उल्लिखित किया है। मिलिन्दपन्नों ग्रंथ में इसके जन्म स्थान के रूप में अलसन्द (काबुल के समीप सिकन्दरिया) द्वीप

के कालसीग्राम का उल्लेख है। परंतु टार्न का विचार है कि इसका संबंध न तो किसी राजकुल से था, और न ही यह यूथीडेमस के परिवार से था।

टार्न का विचार है कि 'मेनाण्डर एक साधारण परिवार में पैदा हुआ था पर अपनी योग्यता और सैनिक प्रतिभा के बल पर वह डेमेट्रियस का सेनापति बन गया। डेमेट्रियस ने अपने इस विजेता सेनापति के साथ अपनी पुत्री यवन राजकुमारी एगाथोलिक्या से विवाह कर दिया, तब से मेनाण्डर राजवंशीय हो गया'<sup>14</sup>

बताया जाता है कि मेनाण्डर का डेमेट्रियस द्वितीय से व उसके परिवार से कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य था। सामान्यतः डेमेट्रियस द्वितीय के सिक्कों की खोज से उस समय स्पष्टतः यह ज्ञात हो जाता है कि 'पल' प्रकार के सिक्के उस समय प्रचलित थे और उसी प्रकार के सिक्के मेनाण्डर के नाम से भी अधिक मात्रा में प्रचलित थे। यूक्रेटाइडीज की मृत्यु के बाद मेनाण्डर ने अपनी शक्ति और वृण कर ली उसने एक अन्य राजकीय परिवार की कन्या एगेथोलिक्या से विवाह करके अपने अधिकार को और अधिक सम्पुष्ट कर लिया। यही राजकुमारी उसकी रानी थी।<sup>15</sup> अतः स्पष्ट है कि मेनाण्डर ने भी वैवाहिक सम्बंध के द्वारा अपनी राजनैतिक स्थिति को और अधिक मजबूत किया।

हिन्द यवन शासकों में अन्तिम शासक हर्मियस था जो यूक्रेटाइडीज वंश से सम्बन्ध रखता था। हर्मियस का राज्य केवल कपिशा, परोपेनिसद तथा काबुल तक ही सीमित था। इसकी तिथि अनिश्चित है। टार्न का मत है कि हर्मियस को न केवल पूर्वी और दक्षिणी दिशा से शकों के आक्रमण का सामना करना पड़ रहा था, अपितु अपने राज्य की दक्षिण पश्चिम सीमा पर पार्थियानों के तथा उत्तर से यू.ची के हमलों से भी अपनी रक्षा करनी पड़ रही थी।<sup>16</sup> इस प्रकार हर्मियस कई ओर से आक्रान्ताओं से घिरा हुआ था। प्रतीत होता है कि उसके लिए अपने छोटे से राज्य की रक्षा देर तक कर पाना कठिन हो रहा था। ऐसी स्थिति में यूथीडेमस तथा यूक्रेटाइडीज राजवंशों के राजाओं ने, जो अब तक एक दूसरे के उग्र विरोधी एवं प्रबल शत्रु थे, अपनी शत्रुता का परित्याग करके एकता के सूत्र में आबद्ध होने का प्रयत्न किया। इन प्रयत्नों की झलक हर्मियस तथा उसकी रानी कलियोपो की संयुक्त मुद्राओं से मिलती है। इन मुद्राओं के पुरोभाग पर राजा-रानी की आवक्ष युगल मूर्तियाँ अंकित हैं और 'वेसिलिओस सोटेरोस हरमइउस कलियोपिस लेख उत्कीर्ण है तथा पृष्ठ भाग पर राजा घोड़े पर सवार है और प्राकृत में 'महरजस ततरस हेरमयस कलियापय' लेख उत्कीर्ण है।<sup>17</sup>

मुद्राओं के आधार पर कल्पना की गई है कि कलियोपे हिल्पोस्ट्रेट्स वंश की राजकुमारी थी। जब हिप्पोस्ट्रेट्स पर गान्धार के शक शासक एजज प्रथम ने आक्रमण किया तो उस विपत्ति से बचने के

लिये सम्भवतः हर्मियस ने हिप्पोस्ट्रेटस से संधि कर ली और उसने अपने वंश की कन्या कलियोपे का विवाह हर्मियस के साथ कर दिया। इन वैवाहिक सम्बन्धों का यह परिणाम हुआ कि यूथीडेमस व यूक्रेटाइडीज राजवंशों के राजा जो अब तक एक दूसरे के शत्रु थे, उन्होंने अपनी शत्रुता को भूलकर एकता के सूत्र में बंधने का प्रयत्न किया। इन वैवाहिक सम्बन्धों ने ही राजवंशों की शत्रुता को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।”

अतः स्पष्ट है कि हिन्द यवन शासकों के वैवाहिक संबंधों ने राजनीति को बहुत अधिक प्रभावित किया। इस नीति का सहारा लेकर उन्होंने शत्रुओं से मित्रता की व अपने साम्राज्य को सुरक्षित किया। कालान्तर में इसी वैवाहिक नीति का अनुसरण करते हुए गुप्तों ने भी अपने साम्राज्य को भी विस्तृत किया व संकट के समय अपने मित्र राजाओं से अपने साम्राज्य की सुरक्षा की।

#### संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. लुणिया.वी.एन, “प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास” कमल प्रकाशन इन्दौर, 1992, पृ. 197।
2. झा, द्विजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली, कृष्ण मोहन, “प्राचीन भारत का इतिहास”, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि.वि. दिल्ली, 2005, पृ. 175।
3. पाण्डेय, राजवलि, “प्राचीन भारत”, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1994, पृ. 147।
4. शास्त्री, नीलकण्ठ, “नंद मौर्य युगीन भारत”, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1969, पृ. 171।
5. मुखर्जी, डॉ. राधा कुमुद, “चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल”, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1962, पृ. 62।
6. पाण्डेय, आर.एन., “प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2003, पृ0 155।
7. Ghosh, Late Nagendra Nath, “Early History of India”, The Indian Press private ltd., Allahabad, 1964, P-195.
8. यादव, डी.एस., “प्राचीन भारतीय राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लि. नई दिल्ली, 2010, पृ. 151।
9. जैन, कैलाश चन्द्र, “प्राचीन भारत का इतिहास”, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 222।
10. गोयल, श्रीराम, “मागध सातवाहन कुषाण साम्राज्यों का युग”, कुसुमाज्जलि प्रकाशन, मेरठ, 1998-पृ. 624।

11. डॉ. राधेशरण, “प्राचीन भारतीय इतिहास का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप”, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, 1978, पृ. 213.
12. नरायण, अवध किशोर, “ग्रीक भारतीय अथवा यवन”, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद नई दिल्ली, 1996, पृ. 21-22।
13. शर्मा, एल.पी., “प्राचीन भारत”, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1982, पृ0 151।
14. Mahajan, B.D., Lalwani B.M., Deodhar, Y.N., “Political & Cultural history of ancient india,” S. Chandra & co. Delhi, 1962, p.247
15. शोध प्रबन्ध, “मिलिन्द प्रश्न : एक आलोचनात्मक अध्ययन”, सोमनाथ त्रिपाठी, रानी दुर्गावती विश्व विद्यालय, जबलपुर, 1971, पृ0 43।
16. पाण्डेय, डॉ. राजवलि, “प्राचीन भारत”, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1994, पृ. 214।
17. गोयल श्रीराम, “मागध सातवाहन, कुषाण साम्राज्यों का युग”, कुसुमाज्जलि प्रकाशन, मेरठ, 1988, पृ. 642-43।
18. नारायण, अवध किशोर, “ग्रीक भारतीय” अथवा यवन, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, 1996, पृ.-186।



## भूमण्डलीकरण एवं आतंकवाद के संदर्भ में महात्मा गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम की प्रासंगिकता : एक विश्लेषण

डॉ. दलजीत सिंह चौधरी

राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

महात्मा गांधी एक व्यवहारिक चिन्तक और दार्शनिक थे। गांधी जी के विचार बहुआयामी हैं। गांधी जी के विचारों को अंशों में नहीं समझा जा सकता है, लेकिन उनके विचारों की भूमण्डलीकरण आतंकवाद के संदर्भ में आज भी प्रासंगिकता है। गांधीजी ने न केवल राष्ट्रीय मामले में बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भी किसी भी विवाद के हल के लिए सत्याग्रह को युद्ध से अधिक उपयोगी तथा सर्वोत्तम माना है।

महात्मा गांधी का चिन्तन राजनीतिक दर्शन का विलक्षण प्रयोग है। गांधी के चिन्तन आध्यात्मिक पृष्ठभूमि तथा भूमण्डलीकरण आतंकवाद एवं सामाजिक प्रणाली के विभिन्न पक्षों के संदर्भ में उनके तत्व ज्ञान के परिव्याप्त प्रभाव के कारण उनके चिन्तन के विलक्षण स्वर को विचारधाराओं की परम्परागत परिधि में बाधना संभव नहीं है।<sup>1</sup>

गांधी केवल राजनीतिज्ञ और राजनेता ही नहीं थे, बल्कि विश्व आवश्यक प्रघटना थे। वे दक्षिण अफ्रीका एवं कालान्तर में भारत में राजनीतिक अग्रज के रूप में निर्णायक के रूप में प्रस्तुत हुए। यही कारण है कि गांधी जी का मानव के प्रति उदारवादी, विकासवादी, कल्याणवादी, न्यायवादी, आध्यात्मकवादी और सुधारवादी दृष्टिकोण है।<sup>2</sup>

गांधी चिन्तन का सार कर्म प्रधान व मूल्य प्रधान है। इसकी जीवन्ता भी विचार एवं सौष्ठवपूर्ण कर्म के अर्धपूर्ण सामन्जस्य में ही अन्तर्निहित है। विचार एवं कर्म की सादृश्यता, एकता एवं समरसता गांधीय प्रत्ययीकरण की विशिष्टता है। उनकी दृष्टि में दलितों, दुखियों, परित्यक्ता, उपेक्षितों एवं दरिद्र नारायणों की बहुसंख्यक विश्वजनीत आबादी और उसके उद्धार का प्रश्न महत्वपूर्ण है। महात्मा गाँधी ऐसे राजनीतिक चिन्तक हैं जिनके सिद्धान्त अपने देश में राष्ट्रीय संघर्षों के बीच में विकसित हुए किन्तु जिनका उद्देश्य केवल अपने ही देश में राजनीतिक परिवर्तन लाना नहीं है, परन्तु विश्व के सभी समाजों में सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्रांति की स्थापना करना है। गाँधीजी ने केवल सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही नहीं किया, उन्होंने विशाल जनसमूहों का गठन किया, उन्हें सम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद और साथ ही साथ पूँजीवाद और सामन्तवाद की शक्तियों के विरुद्ध एक जीवन और मरण के संघर्षों में झोंका, और सामाजिक क्रांति के लिए प्रभावपूर्ण साधनों का विकास करने में भी उन्हें पर्याप्त सफलता मिली।<sup>3</sup>

अध्ययन में गाँधीय चिन्तन के मूल आधार, गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम, समसामयिक समस्याओं के संदर्भ में एवं भूमण्डलीकरण एवं आतंकवाद की चुनौतियों का गाँधीय विकल्प की विवेचना करने का प्रयास किया है।

अध्ययन यद्यपि सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के संदर्भ में मूल्यांकन रचनात्मक कार्यक्रमों तक सीमित रखा गया है लेकिन गाँधी के सम्पूर्ण चिन्तन से उनका सामंजस्य सम्पूर्ण अध्ययन में रखने का प्रयास

किया गया है।

वर्तमान विश्व भूमण्डलीकरण, आतंकवाद एवं उदारीकरण के नये दौर से गुजर रहा है। मानव जीवन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आतंकवाद से प्रभावित है। भूमण्डलीकरण ने दुनिया को छोटे से गांव में परिवर्तित कर दिया है। इस विकट एवं विषम परिस्थितियों में कर्मयोगी महात्मा गांधी एक सुन्दर विकल्प के रूप में प्रस्तुत होते हैं। आतंकवादी, अप्रजातातिक दूषित नेतृत्वविहिन व्यक्ति एवं राष्ट्र के लिए गांधी का अध्ययन एक आशा की किरण जगाता है।<sup>1</sup> राजनीति के क्षेत्र में गांधी जी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन साधनों के शुद्धता, सत्य, अहिंसा व आध्यात्मिकता को पुनः स्थापित करना है। सत्याग्रह वर्तमान राजनीतिक जटिलताओं व युद्ध की प्रचण्ड विभीषिकाओं से बचाये रखने और शांतिपूर्ण सह अस्तित्व की स्थापना का एक मात्र तरीका है।<sup>2</sup>

आतंकवाद की जड़े मुख्य रूप से भारत और पाकिस्तान सहित सम्पूर्ण एशिया, दक्षिण पूर्व एशिया, अफगानिस्तान, रूस, तजाकिस्तान, अमेरिका, चीन, मध्य एशिया, सऊदी अरब, ईरान, मिश्र, अफ्रीका के कुछ भागों में अत्यन्त गहरी हो गयी है। एक ओर जहाँ आतंकवादी गतिविधियों के कारण देशों में राजनैतिक अस्थिरता उत्पन्न होती है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक असुरक्षा की भावना के विकास के कारण, अलगावादी, शक्तियों का विकास भी तीव्र गति से होता है। बीसवीं सदी के अस्सी के दशक में आतंकवादी गतिविधियों का तीव्र गति से विस्तार हो रहा है।<sup>3</sup>

वर्तमान के इस दौर में गांधी जी वसुदेव कुटुम्बकम की भावना व रचनात्मक व्यक्ति कार्यक्रम के माध्यम से तथा अहिंसा की नीति का पालन कर हम बहुत कुछ सीमा तक आतंकवाद का सामना कर समाप्त कर सकते हैं।<sup>4</sup>

महात्मा गांधी आधुनिक भारतीय चिन्तन को सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, सहयोग तथा रचनात्मक कार्यक्रम को अस्त्र प्रदान कर न केवल भारत अपितु विश्व चिन्तन में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। धर्म तथा राजनीति का समुचित सम्मिश्रण, ज्ञापन तथा साध्य का सम्पर्क सम्बन्ध पूँजीवाद का न्यायधारिता के सिद्धान्त द्वारा शमन, सत्ता का विकेन्द्रीकरण, ग्राम स्वराज्य, आर्थिक समानता, धार्मिक समानता आदि महात्मा गांधी के ऐसे विचार थे जिन्होंने, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन को गरिमा व विश्व प्रियता प्रदान की। सामाजिक दृष्टि में हरिजनों द्वारा का कार्य निष्पक्ष सामाजिक, न्याय का प्रतीक था आर्थिक क्षेत्र में पूँजीवाद के दुगुणों को शांतिपूर्वक ढंग से दूर करने का इनका विचार साम्यवादी वर्ग संघर्ष से बचने का एक मात्र उपाय है गांधी चिन्तन का केन्द्रीय तत्व रचनात्मक कार्यक्रम है।<sup>5</sup>

गाँधीजी ने आदर्श राज्य की कल्पना को क्रियान्वित करने के लिये एक आदर्श राज्य का स्वरूप चित्रित किया है। उनके विचार से पूर्ण

स्वराज्य के ध्येय की प्रगति के लिये जन सम्प्रभुता का नैतिक सत्ता पर आधारित होना आवश्यक है। यद्यपि आदर्श व्यक्तियों की आवश्यकता होगी फिर भी आदर्श राज्य की कल्पना मानव की उर्ध्वगामी विकास का लक्ष्य अवश्य निर्धारित करेगी। गाँधीजी द्वारा आदर्श राज्य व्यवस्था को 'राम राज्य' शब्दों से सम्बोधित किया गया है।<sup>6</sup>

गाँधीजी ने न केवल राष्ट्रीय मामलों में बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भी किसी भी विवाद के हल के लिये सत्याग्रह को युद्ध से अधिक उपयोगी तथा सर्वोत्तम माना है जब 1942 ई. में जापानी सेना ने बर्मा पर अधिकार कर लिया तब गाँधीजी ने जापानी आक्रमण का 'मुकाबला करने के लिये एक अहिंसक प्रतिरोध की योजना बनाई' गाँधीजी ने कहा कि 'यदि लोग जापानी सेना का सामना नहीं कर सकते तो उन्हें वही करना चाहिये जैसा कि सशस्त्र सैनिक करते हैं। जैसे दबाव ज्यादा हो तब पीछे हटने पर एक बात उन्हें कभी नहीं करनी चाहिये, जापानियों के आगे वे कभी आत्म समर्पण न करें'। महात्मा गाँधी ने धर्म, कर्म, ज्ञान, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, त्याग और ब्रह्मचर्य ऐसे अनेक शब्दों का विश्व की वर्तमान परिस्थितियों में उनका क्रांतिकारी संस्करण कर डाला। सभी जीवों में करुणा एवं प्रेम देखना ही सत्य है, भगवान है, मोक्ष है।<sup>7</sup>

गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम के संदर्भ

गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों में मुख्यतः अग्रकित संदर्भ सम्मिलित थे :

- कौमी एकता।
- असृश्यता निवारण।
- शराबबंदी।
- खादी ग्रामोद्योग को बढ़ावा।
- ग्रामीण कुटीर उद्योगों के माध्यम से स्वरोजगार को बढ़ावा।
- गाँवों एवं शहरों की सफाई तथा स्वास्थ्य बुनियादी शिक्षा पर जोर।
- प्रौढ़ शिक्षा।
- सामाजिक एवं आर्थिक समानता लाने के लिये छोटे-छोटे उद्योग धन्धे लगाने पर जोर।

इन सब कार्यक्रमों को गाँधीजी ने स्त्रियों पर नारी उद्धार कार्यक्रमों को शामिल कर लिया था। 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत जब काँग्रेस ने मंत्री पद ग्रहण किया, उन्होंने सभी काँग्रेसियों को रचनात्मक कार्यक्रमों में लगे रहने का आह्वान किया था।<sup>8</sup>

आज भारतीय बाजारों में पूँजी व विदेशी कम्पनियों का प्रभुत्व कायम हो गया है। दूसरी तरफ हमारी रचनात्मक संस्थाओं के पास इतना बजट नहीं है कि वह इस प्रतियोगिता में सम्मिलित होकर

विदेशी कम्पनियों को देश से चले जाने को विवश कर सकें। रचनात्मक कार्यक्रम में संलग्न संस्थाओं का लक्ष्य ग्राम स्वराज को प्राप्त करना था लेकिन संस्थाएँ इस दिशा में सफलता अर्जित नहीं कर सकती हैं। परिणामस्वरूप ये संस्थायें अपने वास्तविक उद्देश्य से अभी बहुत दूर हैं। इसके बावजूद इन संस्थाओं में जो शून्यवत ख्याति थी उससे उठकर आज तो ख्याति संस्थाओं की है उसके लिए यही कहा जायेगा कि आत्म स्वावलम्बन के सिद्धान्त का पालन करते हुए ये संस्थायें उत्तरोत्तर विकास की ओर बढ़ी हैं। ये संस्थायें आज करोड़ों रुपये के उत्पादन बिक्री कर जनता की सेवा कर रही हैं। बेरोजगारों को रोजगार देना भी संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य रहे है। आज भारत में 50 लाख लोगों को रोजगार देने में ये सक्षम रही है।<sup>2</sup>

#### संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. रूद्रदत्त एवं के.पी. सुंदरम्: भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चांद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 2006.
2. विनोबा : स्वराज्य-शास्त्र, सर्व संघ प्रकाशन, वाराणसी, सन् 2000.
3. आर.के. प्रभु: " मेरे सपनों का भारत", नवजीवन, अहमदाबाद, 1960
4. अप्पादोराय, अर्जन:मॉडर्न एिटी एट लार्ज : कल्चरल ड्राईमेंशन्स ऑफ ग्लोबलाइजेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ मिनेसोटा, मिनी पोलिस, 1996.
5. अप्पादोराई, ए. : डाक्युमेंट्स ऑन इन्डियाज फोर पॉलिसी एण्ड रिलेशंस, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982.6. अबुब, मोहम्मद : इण्डिया, पाकिस्तान एण्ड बांग्लादेश : सर्च फॉर न्यू रिलेशनशिप, नई दिल्ली, 1975.
7. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.): ए ग्लोबलाइजेशन : क्रिएटिंग अपॉरचुनिटिस फॉर ऑल : रिपोर्ट ऑफ दि वर्ल्ड कमीशन ऑन द सोशल ड्राइमेंशन ऑफ ग्लोबलाइजेशन, जेनेवा, 2004.
8. गोपीनाथधवन: "सर्वोदय तत्व दर्शन", नवजीवन, अहमदाबाद, 1963,
9. गांधी: "यंग इण्डिया", 2 जुलाई, 1931.
10. गांधी: "हरिजन", 7 नवम्बर, 1936
11. किशोर लाल मशरूवाला: "गांधी विचार-दोहर", सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1999.
12. जेरेमी सीब्रुक : "दि सोल ऑव मेन अंडर ग्लोबलिज्म," रेस एंड क्लास: इंस्टीट्यूट ऑव रेस रिलेशंस, खंड 43(4), 2001



## दक्षिण एशियाई देशों के सामाजिक आर्थिक प्रतिमान

भावना शर्मा

शोध छात्रा, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

आज विश्व राजनीति में क्षेत्रीय अध्ययनों पर बल दिया जाने लगा है और विश्व का अध्ययन आज इन क्षेत्रीय अध्ययनों के अन्तर्गत किया जाने लगा है जैसे यूरोपीय समुदाय, अमेरिकी समुदाय, मध्यपूर्वी यूरोप, दक्षिण पूर्वी एशिया, दक्षिण एशिया आदि। क्षेत्र अपने भीतर तथा बाहर अन्य क्षेत्रों से किस प्रकार का व्यवहार करते हैं यह एक महत्वपूर्ण अध्ययन का विषय बनता जा रहा है। 1985 से पूर्व तक दक्षिण एशिया का अध्ययन उतना महत्वपूर्ण नहीं माना जाता था जितना कि आज। इससे पूर्व पश्चिम के लेखक दक्षिण पूर्वी एशिया के साथ इसका अध्ययन करते थे। इसे दक्षिण एशियाई उपक्षेत्र, एक अधिनस्थ प्रणाली या उपक्षेत्रीय संगठन कहा जाता था।

क्षेत्रीयतावाद वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की एक प्रमुख अवधारणा है। आज विश्व का प्रत्येक राष्ट्र सम्पन्न बनने की कामना रखता है, किन्तु वर्तमान प्रतिस्पर्धा युक्त अर्थव्यवस्था के युग में आत्मनिर्भर विकास असम्भव है इसीलिए स्वतंत्र व सम्प्रभु राष्ट्रों ने अपने आर्थिक, सामाजिक व सुरक्षात्मक हितों की रक्षा के लिए क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा दिया है। क्षेत्रवाद एक विशिष्ट सम्प्रत्यय है जिसमें दो या दो से अधिक राष्ट्र अपनी भौगोलिक सीमाओं द्वारा पारस्परिक रूप से जुड़े हुये हों एवं सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समानताएँ रखते हों। क्षेत्र वह है जिसका अपना इतिहास व भूगोल हो और जिसमें पास आने एक साथ रहने की आकांक्षा हो। यदि हम सम्पूर्ण विश्व को एक इकाई मानकर अध्ययन करें तो क्षेत्र एक उपक्षेत्र होगा इस उपक्षेत्र के भीतर घात प्रतिघात एक दूसरे को प्रभावित करने के प्रयास चलते रहेंगे और विश्व राजनीति इस उपक्षेत्र को प्रभावित करने या नियंत्रित करने का प्रयास करेगी। अतः स्पष्ट है कि क्षेत्र के अन्तर्गत भौगोलिक समीपता के साथ-साथ आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक एकरूपता भी स्वतः समाहित है। इसके अन्तर्गत अन्तर्निर्भरता आपसी हितों पर आधारित सम्बंधों से निर्धारित है।

माइकल ब्रेकर के अनुसार सम्पूर्ण दक्षिण एशिया एक राजनैतिक और भागौलिक क्षेत्र है। यह एक भौगोलिक और राजनैतिक विचार है। ब्रेकर ने निम्न बिन्दुओं के आधार पर दक्षेस को पृथक क्षेत्र के रूप में इंगित किया है। यथा—

- इसका क्षेत्र भौगोलिक होता है।
- इस भौगोलिक क्षेत्र में कम से कम तीन कर्ता या राज्य होने चाहिए।
- अन्य राज्य इनको एक विश्व प्रणाली में, एक निश्चित समुदाय मानते हैं।
- इसके सदस्य अपने को इस क्षेत्र का सदस्य स्वीकार करते हैं।
- इसके सदस्य राज्य प्रमुख सदस्य राज्य से कम शक्ति रखते हैं।
- प्रमुख प्रणाली (विश्व में परिवर्तन से क्षेत्रीय प्रणाली बहुत अधिक प्रभावित होती है, किन्तु क्षेत्रीय

- प्रणाली में परिवर्तन से विश्व प्रणाली इतनी प्रभावित नहीं होती।<sup>2</sup>

दक्षिण एशिया के राज्य आपस में सामान्य इतिहास, वंश, जाति, भाषा, संस्कृति आदि के द्वारा आपस में जुड़े हुये हैं ऐतिहासिक दृष्टि से इस सम्पूर्ण क्षेत्र का एक अत्यधिक प्राचीन इतिहास है, यह सारा क्षेत्र आर्य सभ्यता का केन्द्र रहा है।

इमाजुदीन अहमद दक्षिण एशिया को एक विशिष्ट क्षेत्र मानते हैं इन्होंने कहा है— “ दक्षिण एशिया क्षेत्र के कुछ विशेष लक्षण हैं जबकि दक्षिण एशिया के दूसरे राष्ट्रों की कोई समान सीमा नहीं है, उनमें से चार की भारत के साथ भू सीमा है तथा दो की सामूहिक सीमा है। दक्षिण एशियाई राष्ट्र भारत के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक बन्धनों तथा ऐतिहासिक अनुभवों से जुड़े हुए हैं। भारत की सर्वश्रेष्ठ स्थिती केवल जनसंख्या तथा आकार के तहत ही नहीं है बल्कि उपस्रोतों के संसाधन तथा सम्भावित विशेषताओं से कुछ जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं। यही कारण है कि दक्षिण एशिया क्षेत्र एक इ.डो क्षेत्र के रूप में परिलक्षित होता है।<sup>3</sup>

**दक्षिण एशिया का स्वरूप एवं प्रकृति:**— दक्षिण एशिया में सात देश भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, मालदीव सम्मिलित हैं। अफगानिस्तान को दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन का सदस्य बना लिया गया। लेकिन केवल इस नाते वह दक्षिण एशिया क्षेत्र का सदस्य नहीं बन जाता है। यह एक विवाद का प्रश्न है अफगानिस्तान वस्तुतः भौगोलिक दृष्टि से पश्चिम एशिया में आता है लेकिन ऐतिहास, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक दृष्टि से उसका जुड़ाव दक्षिण एशिया के साथ रहा है। दक्षिण का कुल क्षेत्रफल 432 मिलियन वर्ग किलोमीटर है दक्षिण एशिया नामकरण भले ही नवीन हो, लेकिन क्षेत्र प्रचीन है इस भाग को भारतीय उपमहाद्वीप, भारतीय पेनिनसुला और दक्षिण एशिया आदि नामों से भी जाना जाता है। दक्षिण एशिया नामकरण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शीतयुद्ध का परिणाम है इस नामकरण का आधार सामरिक— राजनीतिक है।

भौगोलिक दृष्टि से यदि देखा जाए तो दक्षिण एशिया वह भू भाग है जो कि आस्ट्रेलियन टेक्टोनिक प्लेट के उत्तर पूर्वी भाग को छूता है। इस क्षेत्र को तीन भागों में बाटा जा सकता है— उत्तर पर्वतीय भू-भाग, गंगा दोआब का मैदान तथा भारत का दक्षिण प्रदेश जो कि सुदूर दक्षिण में श्रीलंका को छूता है। उत्तरी पर्वतीय प्रदेश को फिर से तीन भागों में बाटा जा सकता है हिन्दुकुश, कराकोरम एवं हिमालय प्रदेश। दक्षिण एशिया की तीन व्यवस्थाओं में ब्रह्मपुत्र, गंगा व सिन्धु के मध्य गंगा दो आब का मैदान का फैलाव है। यह पश्चिमी घाट से लेकर अरब सागर तथा पूर्वी घाट से लेकर बंगाल की खाड़ी तक फैला है। भारतीय प्लेट दक्षिण की तरफ दक्षिणी प्लेट से लेकर मालाबार पर्वत श्रृंखला तथा कोरामण्डल तटीय प्रदेश तक इस का फैलाव है।

यह एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, क्रिश्चियन आदि सभी धर्मों के लोग निवास करते हैं। इसी प्रकार आप, द्रविड, तिब्बती, मंगोलियन, एस्ट्रो-मंगोलिया, अरब, मुस्लिम आदि सभी प्रजातीय समूह के लोग यहाँ रहते हैं। विविध धर्म, प्रजातीय, भाषायी जैसी जटिल संरचनाओं का धनी दक्षेस राजनैतिक प्रयोगों का घर भी है। एकाधिकारवादी तानाशाही, लोकतांत्रिक, राजतंत्रीय, एक दलीय तानाशाही, सैन्य शासन आदि सभी प्रकार की शासन व्यवस्थाएँ दक्षिण एशिया में विद्यमान हैं। दक्षिण एशिया क्षेत्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह क्षेत्र भारतोन्मुखी है कुछ लोग इसी कारण इसको इण्डिया लाकड रीजन की संज्ञा देते हैं।<sup>4</sup>

क्षेत्रफल तथा जनसंख्या के हिसाब से भारत दक्षिण एशिया का सबसे बड़ा राष्ट्र है, उसके बाद पाकिस्तान का क्रम आता है। सबसे छोटा राष्ट्र मालदीव है। भारत का क्षेत्रफल 3288 हजार वर्ग कि.मी. है तथा जनसंख्या 1095 मिलीयन थी वहीं पाकिस्तान का क्षेत्रफल 796 हजार वर्ग कि.मी. तथा जनसंख्या 156 मिलीयन थी। मालदीव का क्षेत्रफल 0.30 हजार वर्ग कि.मी. तथा जनसंख्या 0.33 मिलीयन थी। अमेरिकन डॉलर की प्रचलित दर पर प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय सर्वाधिक 232 डॉलर मालदीव में, उसके बाद श्रीलंका 1180 डॉलर तथा न्यूनतम 270 डॉलर नेपाल की थी। प्राकृतिक कारणों से एवं स्वास्थ्य सेवाओं में बेहतर सुधार के कारण सर्वाधिक जीवन प्रकाश दर 70 वर्ष श्रीलंका में, उसके बाद मालदीव 67 वर्ष तथा न्यूनतम 62 वर्ष नेपाल की थी। शिक्षा के बेहतर प्रयास के कारण व्यस्क साक्षरता दर सर्वाधिक 96 प्रतिशत मालदीव में, उसके बाद श्रीलंका में 91 प्रतिशत तथा 49 प्रतिशत न्यूनतम नेपाल में थी।<sup>5</sup>

**दक्षिणी एशियाई देशों के महत्वपूर्ण सामाजिक संकेतांक:**— विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था बाह्य कारकों के साथ-साथ आन्तरिक कारकों से ज्यादा प्रभावित होती है। विकासशील देशों का आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक ढांचा ऐसा जटील है कि वे वहाँ के जीवन-स्तर को सीधे-सीधे प्रभावित करते हैं। ये देश अपने इसी ताने-बाने के साथ तादात्मक स्थापित कर विकास के लिये संघर्षरत हैं व अग्रसर हैं। प्रस्तुत तालिका के माध्यम से सार्क देशों के विकास कारकों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।<sup>6</sup> 2008 में मानव विकास सूचकांक बांग्लादेश में 147, भूटान में 131, भारत में 132, मालदीव में 99, नेपाल में 145, पाकिस्तान में 139 व श्रीलंका में 104 था। मानव विकास सूचकांक का अध्ययन करने पर बांग्लादेश तथा नेपाल बेहतर स्थिति में दिखाई देते हैं परन्तु जनसंख्या के हिसाब से भारत सबसे बड़ा देश है। ऐसी स्थिति में भारत की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर है। जनसंख्या के हिसाब से भारत सबसे बड़ा तथा मालदीव सबसे छोटा देश है। भारत की जनसंख्या जहाँ 1186.2 मिलीयन थी वहीं मालदीव की जनसंख्या मात्र 0.3 मिलीयन है। जनसंख्या वृद्धि दर के हिसाब से सबसे ज्यादा वृद्धि नेपाल में 2.1 प्रतिशत थी वहीं सबसे कम श्रीलंका में 0.6 प्रतिशत थी। भारत की जनसंख्या वृद्धि दर 1.4 प्रतिशत थी। शहरी

जनसंख्या, समग्र जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में सर्वाधिक 3.5 प्रतिशत, पाकिस्तान व मालदीप में थी वहीं सबसे कम 1.5.1 प्रतिशत श्रीलंका में थी। भारत की शहरी जनसंख्या का प्रतिशत 29.2 प्रतिशत था। जीवन प्रत्याशा दर सर्वाधिक 72 श्रीलंका में थी तथा न्यूनतम 64 बांग्लादेश व नेपाल की थी। भारत में जीवन प्रत्याशा दर 65 वर्ष है। प्रति एक हजार पर शिशु मृत्यु दर सर्वाधिक 78 पाकिस्तान में थी वहीं न्यूनतम 11 श्रीलंका में थी। भारत में यह दर प्रति हजार 57 थी। जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में प्रतिदिन 1.25 अमेरिकन डॉलर (वर्तमान प्रचलित दर पर) उपार्जन के हिसाब से गरीबी प्रतिशत सर्वाधिक 6.8 प्रतिशत नेपाल में थी वहीं न्यूनतम 1.4 प्रतिशत श्रीलंका में थी। भारत में गरीबी प्रतिशत 4.2 प्रतिशत थी। प्रतिदिन 1.35 डॉलर उपार्जन के हिसाब से (2005 की प्रचलित दर पर) एशियाई गरीबी रेखा पर जीवन-यापन करने वालों की सर्वाधिक जनसंख्या 740.4 मिलीयन भारत में थी वहीं न्यूनतम 0.2 मिलीयन भूटान में थी। एशियाई गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वालों का सर्वाधिक प्रतिशत 65.3 प्रतिशत भारत में था, वहीं न्यूनतम 18.4 प्रतिशत श्रीलंका में था। गिनी सूचकांक सर्वाधिक 47.3 प्रतिशत नेपाल में था, वहीं सबसे कम 3.1 प्रतिशत बांग्लादेश में था। व्यस्क साक्षरता दर सर्वाधिक 97 प्रतिशत मालदीप में थी तथा सबसे कम 5.3 प्रतिशत बांग्लादेश व भूटान में थी। शिक्षा में समेकित सकल नामांकन सर्वाधिक 71.3 प्रतिशत मालदीप में तथा सबसे कम 39.3 प्रतिशत पाकिस्तान में था। प्राथमिक शिक्षा में सर्वाधिक शुद्ध नामांकन प्रतिशत 98.1 प्रतिशत मालदीप में तथा सबसे कम 65.6 प्रतिशत पाकिस्तान में था। प्राथमिक शिक्षा में छात्र-शिक्षक अनुपात सर्वाधिक 5.1 प्रतिशत बांग्लादेश में तथा न्यूनतम 16.4 प्रतिशत मालदीप में था। जीडीपी के प्रतिशत के रूप में स्वास्थ्य दर सर्वाधिक व्यय 9.2 प्रतिशत अफगानिस्तान में तथा न्यूनतम 2 प्रतिशत पाकिस्तान में था। प्रति व्यक्ति स्वास्थ्य व्यय (अमेरिकन डॉलर में) 24.5 मालदीप में तथा न्यूनतम 1.2 डॉलर बांग्लादेश में था।

दक्षिण एशियाई देश व गरीबी है दक्षेस शुद्ध रूप से एक आर्थिक समूह है और इसे अंतर्देशीय साझेदारी मंच की बजाय राष्ट्रीय समृद्धि और स्थायित्व बढ़ाने का माध्यम माना गया। 1985 में दक्षेस के पहले शिखर सम्मेलन के उद्घाटन में ही यह ध्वनि हुआ था। उस समय तत्कालीन नेपाल नरेश वीरेन्द्र वीर विक्रम शाहदेव ने कहा था, “ सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, तकनीकी और आर्थिक जैसे क्षेत्रों में प्रयासों और आपसी बातचीत के जरिये शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व का स्थायी वातावरण तैयार करने को जल मिल सकेगा। उन्होने दक्षेस को भविष्य में दुनिया के इस हिस्से में शान्ति, विकास और स्थायित्व को प्रोत्साहित करने

वाले उपकरण के रूप देखा था।

किसी क्षीय संगठन का हिस्सा बनने के बाद हर देश के लिए क्षेत्रीयता का अर्थ और उद्देश्य बदल जाता है। भौगोलिक समीप्य किसी भी क्षेत्रीय ब्लाक के गठन की आधार शिला होती है। क्षेत्रीय एक जुटता और सहयोग के लिए एक-दूसरे का हाथ धामने वाले देशों के लिए यही भौगोलिक समीप्य प्राकृतिक उत्प्रेरक का काम करता है। तार्किक उपसिद्धान्त के मुताबिक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक गठबन्धन देशों की सीमा के पार लोगों को करीब लाता है। जिससे आर्थिक-सामाजिक मुद्दों में सहयोग को प्रोत्साहन और देशों के बीच आपसी विश्वास पैदा होने की उम्मीद की जाती है। उभरते राजनैतिक परिपेक्ष्य के आलोक में दक्षेस देश रीति रिवाज, सांस्कृतिक नस्लीय और धर्म के लिहाज से एक दूसरे के करीब हैं। दक्षिण एशिया क्षेत्र की विपुल और विविधताओं से भरी संभावना उसके जमीनी स्वरूप, जलवायु क्षेत्रों, वन स्रोतों की विविधता और वृहद स्तर पर जल विद्युत उत्पादन की सम्भावनाओं की समेटे नदियों के विस्तृत जाल के साथ-साथ प्रचुर खनिज संपदा में दिखाई देता है। दक्षिण एशिया के आठ देश एशिया महादेश के 10 प्रतिशत से ज्यादा भू-भाग और दुनिया के 24 प्रतिशत भू-भाग को घेरते हैं। इन देशों में एशिया की आबादी का 34 प्रतिशत और दुनिया की आबादी का 16 प्रतिशत निवास करती है। क्रय शक्ति पत्र पर आधारित इन देशों की जी.डी.पी. 3.57 खरब डॉलर है। वर्ष 2010 में इनकी सम्मिलित विकास दर 7 प्रतिशत से ज्यादा रही और क्षेत्र में उपभोक्ता आधार पर 42.5 करोड़ लोग मध्यम वर्ग की श्रेणी में हैं और 42.3 अरब श्रम शक्ति है। यह संख्या दुनिया के अन्य किसी भी आर्थिक खण्ड से ज्यादा है। इस पर अर्थात् यह है कि गरीबी पर विश्व बैंक के 2010 आंकड़े के मुताबिक क्षेत्र की 40 प्रतिशत से ज्यादा आबादी रोजाना 1.85 डॉलर से भी कम पर गुजर-बसर करती है। यह अंतर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा से भी नीचे है।

दक्षिण एशिया में गरीबी किसी भी देश के परिप्रेक्ष्य में आर्थिक असमानता एक बड़ा व्यापक दृष्टिकोण है। आर्थिक असमानता एक क्षेत्र में परस्पर हो सकती है तथा राष्ट्र के मामले में व्यापक रूप से क्षेत्रवार हो सकती है। आर्थिक असमानता के कई कारण हो सकते हैं। प्रस्तुत तालिका में पाकिस्तान में पंजाब प्रान्त में आर्थिक असमानता को शिक्षा क्षेत्र में प्राथमिक स्कूलों में बच्चों के नामांकन की सहायता से रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। इसके अनुसार प्राथमिक नामांकन ज्यादा होने पर आर्थिक असमानता कम होती है। मसलन पाकिस्तानी पंजाब के उत्तरी जिलों में नामांकन औसत 108 था तब गरीबी रेखा का प्रतिशत 30 प्रतिशत था। मध्यवर्ती जिलों में प्राथमिक औसत नामांकन 92 था तब गरीबी की रेखा का प्रतिशत 32 प्रतिशत था वहीं दक्षिणी जिलों में प्राथमिक नामांकन 60 था तब गरीबी की रेखा का प्रतिशत 40 प्रतिशत था। पाकिस्तान में अशिक्षा व आर्थिक असमानता का मुख्य कारण धार्मिक उनमाद, कट्टरपंथ, कबीलाई व्यवस्था व जटिल सामाजिक व्यवस्था का होना

हैं। महिला शिक्षा का अभाव भी इसका एक मुख्य कारण है।<sup>9</sup> किसी भी देश की जनसंख्या की जीवन प्रत्याशा व आयु वर्ग पर देश के आर्थिक विकास, भौगोलिक कारकों, स्वास्थ्य कारकों, सामाजिक कारकों व अन्य मनोवैज्ञानिक कारकों का प्रभाव पड़ता है। जीवन प्रत्याशा स्तर ज्यादा होने के कारण व जन्म दर पर नियंत्रण के कारण बड़े विकसित देशों में जनसंख्या की मध्याह्न आयु ज्यादा है वहीं विकासशील देशों में जीवन प्रत्याशा दर कम होने, जन्म-दर अनियंत्रित होने एवं मृत्यु दर ज्यादा होने के कारण जनसंख्या की औसत मध्याह्न आयु कम है। अर्थात् युवा पीढ़ी ज्यादा है। बांग्लादेश, ब्राजील, चीन, भारत व पाकिस्तान में 1950 में जहाँ मध्याह्न आयु क्रमशः

20.5 वर्ष, 19.2 वर्ष, 23.9 वर्ष, 21.3 वर्ष व 24.2 वर्ष थी वहीं विकसित देशों अमेरिका व यूरोपीय देशों में क्रमशः 30 वर्ष व 29.7 वर्ष थी। शिक्षा के प्रसार, स्वास्थ्य सेवाओं में सुधान व तीव्र आर्थिक विकास के कारण जीवन प्रत्याशा बढ़ने, मृत्यु दर नियंत्रित होने व जन्म-दर के नियंत्रण के कारण विकसित देशों के साथ-साथ विकासशील देशों में भी मध्याह्न आयु बढ़ी है। 2010 में बांग्लादेश, ब्राजील, भारत की जनसंख्या की मध्याह्न आयु क्रमशः 24.5 वर्ष, 29 वर्ष व 25 वर्ष थी वहीं अमेरिका तथा यूरोपीय देशों की मध्याह्न आयु 36.6 वर्ष व 40.2 वर्ष थी। 2050 तक विकासशील देशों में मध्याह्न आयु लगभग दुगुने के बराबर होने की आशा है।

#### शहरीकरण की समस्या

Urban Agglomeration	Population			Rank			Average annual rate of change (%)		Population residing in agglomeration, 2007, as % of	
	1975	2007	2025	1975	2007	2025	2005-2010	2020-2025	Total population	Urban population
Bangalore (India)	2.1	6.8	59.7	67	36	31	2.2	2.0	0.6	2.0
Chennai (India)	3.6	7.2	10.1	34	35	26	1.8	2.0	0.6	2.1
Chittagong (Bangladesh)	1.0	4.5	7.6	174	56	46	3.6	2.7	2.9	10.7
Delhi (India)	4.4	15.9	22.5	23	6	3	2.5	1.9	1.4	4.7
Dhaka (Bangladesh)	2.2	13.5	22.0	65	9	4	3.3	2.5	8.5	32.0
Hyderabad (India)	2.1	6.4	9.1	70	40	36	2.0	2.0	0.5	1.9
Karachi (Pakistan)	4.0	12.1	19.1	26	12	10	2.4	2.4	7.4	20.7
Kolkata (India)	7.9	14.8	20.6	9	8	8	1.7	1.9	1.3	4.3
Lahore (Pakistan)	2.4	6.6	10.5	56	38	24	2.5	2.5	4.0	11.2
Mumbai (India)	7.1	19.0	26.4	15	4	2	2.0	1.9	1.6	5.6

स्रोत : सामाजिक व आर्थिक मामलात विभाग, जनसंख्या डिवीजन, संयुक्त राष्ट्र संघ

प्रस्तुत तालिका में सार्क देशों के मुख्य नगरों की शहरीकरण, जनसंख्या, परिवर्तन की दर व शहरी समूह में रहने वाली जनसंख्या की तुलना की गई है। भारत के बैंगलोर शहर में जहाँ 1975 में जनसंख्या 2.1 मिलीयन थी तथा वरीयता सूची में 67वां स्थान था, 2007 में जनसंख्या 6.8 मिलीयन हो गई व वरियता सूची में स्थान बढ़कर 36 वां हो गया। 2005-10 की अवधि में शहरीकरण की दर 2.2 प्रतिशत थी तथा समूह में रहने वाली जनसंख्या कुल जनसंख्या का 0.6 प्रतिशत एवं शहरी जनसंख्या का 2 प्रतिशत थी। बांग्लादेश का ढाका शहर की जनसंख्या 1975 में 2.2 मिलीयन थी, वहीं 2007 में 13.5 मिलीयन हो गई। 1975 में वरीयता सूची में स्थान 65वां था जो कि 2007 में बढ़कर 9वां हो गया। परिवर्तन दर 2005-10 रहने वाली जनसंख्या कुल जनसंख्या का 8.5 प्रतिशत थी व शहरी जनसंख्या का 32 प्रतिशत थी। इसी प्रकार 2025 की जनसंख्या, शहर वरीयता क्रमांक व परिवर्तन दर का आंकलन किया गया है। इसी अनुक्रम में चेन्नई, बम्बई, कोलकाता, दिल्ली (भारत), घिट्टगांव (बांग्लादेश), कराची, लाहौर (पाकिस्तान) की 1975-2025 की जनसंख्या, वरीयता क्रमांक, परिवर्तन दर की तुलना की गई है। शहरीकरण का मुख्य कारण लोगों के जीवन स्तर में सुधार व मूलभूत आवश्यकताओं की आसानी से पूर्ति होना रहा है।

दक्षिण एशिया की कुल जनसंख्या (2004) 1,431 मिलियन है तथा 2000-2005 के मध्य जनसंख्या वृद्धि दर 1.7 प्रतिशत के लगभग रही है। विश्व की कुल जनसंख्या का 2.3 प्रतिशत भाग दक्षिण एशिया में निवास करता है जबकि यह विश्व के कुल भू-भाग का मात्र 2 प्रतिशत है। दक्षिण एशिया की सकल राष्ट्रीय आय (2400) 600 अमरीकी डालर रही है, जो कि विकासशील देशों की सकल राष्ट्रीय आय (1502 डालर) से कहीं कम है। इसी प्रकार सकल घरेलू उत्पाद 5 प्रतिशत रहा है। दक्षिण एशिया का मानव विकास सूचकांक (0.576) है जो कि विकासशील देशों के सूचकांक (0.679) से काफी कम है। दक्षिण एशिया की वयस्क शिक्षा का प्रतिशत 58 है, जबकि विकासशील देशों का 78.9 प्रतिशत रहा है। दक्षिण एशिया की लगभग 32.4 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करती है। भूटान, नेपाल जैसे देश आज भी संरचनात्मक विकास की दृष्टि से प्रारम्भिक अवस्था में हैं। क्रय शक्ति पक्ष पर इन देशों की जी.डी.पी. 3.57 खरब डॉलर है, वर्ष 2010 में इनके सम्मिलित विकास पर 7 प्रतिशत से ज्यादा रही है। और क्षेत्र में उपभोक्ता आधार पर 42.5 करोड़ लोग मध्यम वर्गीय की श्रेणी में है। 4.23 अरब श्रम शक्ति है गरीबी पर विश्व बैंक के 2010 के आकड़े के मुताबिक क्षेत्र की 40 प्रतिशत से ज्यादा आबादी रोजाना 1.85 डॉलर से भी कम पर गुजर बसर करती है। यह अन्तरराष्ट्रीय गरीब रेखा से भी नीचे है। इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि दक्षिण एशिया दुनिया में सबसे कम जहाज वाला

क्षेत्र है। जहाँ अन्तर दक्षिण एशियाई व्यापार क्षेत्र के सम्मिलित जी.डी.पी. का महज 3 प्रतिशत आंका गया है जबकि उसके मुकाबले पूर्वी एशिया में अन्तर क्षेत्रीय व्यापार 20 प्रतिशत होता है। इससे आगे सार्क के भीतर नगण्य 5 प्रतिशत व्यापार के मुकाबले अन्य क्षेत्रीय संगठनों के भीतर होने वाला व्यापार इस प्रकार है :- नाफ्टा 37 प्रतिशत, ईयू 63 प्रतिशत और आशियान 38 प्रतिशत। 10 दक्षिण एशियाई देशों का समाज व अर्थव्यवस्था का स्वरूप विभिन्न विचित्रताओं से भरा हुआ है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :-**

1. ए.पी. राना, ए. रीजनलिज्म एज एन एप्रोच टू इन्टरनेशनल ऑर्डर : ए कन्सेच्युअल ओवरव्यू, " इन्टरनेशनल स्टडीज (नई दिल्ली) 1979 अंक 13 '91'।
2. अर्नेस्ट हॉस "द स्टडी ऑफ रीजनल एन्टीग्रेशन : रिफ्लेक्शन ऑन दी जाय एण्ड एग्विरा ऑफ प्री थ्योराइजिंग, " इन्टरनेशनल आर्गनाइजेशन (बोस्टन) भाग 24 नम्बर 4, 1970 : 612
3. डी.सी. हेलमान, "दी इमर्जेस ऑफ एन ईस्ट ऐशियन इन्टरनेशनल सब सिस्टम" इन्टरनेशनल स्टडीज क्वार्टली (मिशीगन) भाग 13.7 : 4 दिसम्बर 1969 : 412-22
4. वीरेन्द्र नारायण एवं बी.सी. उप्रेती (संपादक), दक्सेस एस्टडी ऑफ पर्सपेक्टिव एण्ड पॉलिसीज साउथ एशियन, (नई दिल्ली) 1991 : पृष्ठ 2, 3 व 5
5. स्त्रोत डाटा कम्प्लेटेड फ्रॉम वर्ल्ड डवलपमेन्ट रिपोर्ट्स 2007 एण्ड अदर वर्ल्ड बैंक फाइल
6. स्त्रोत वर्ल्ड डवलपमेन्ट इन्डीकेटरस : अ द वर्ल्ड बैंक, की एण्टीकेटरस फॉर एशिया एण्ड द पेसिफिक : द एशियन डवलपमेन्ट बैंक स्टैटिक्सअल इअर बुक फॉर एशिया एण्ड द पेसिफिक 2008 : द यूनाईटेड नेशन्स इकॉनॉमिक एण्ड सोशियल कमिशन फॉर एशिया एण्ड द पेसिफिक (ई. एस. सी. ए. पी.)
7. नोट - मोस्ट रिसेन्ट पॉवर दी इस्टीमेट ऑर दोज इस्टीमेटेड बाई द वर्ल्ड बैंक, द मेथड यूज्ड फॉर कम्प्यूटिंग ग्रोथ इलेक्ट्रीसिटी वरीज अमंग कन्ट्रीज बांग्लादेश ' वूडन (2001), इण्डिया डिपेंडेंस एण्ड ड्रेज (2002) : नेपाल दत्त एण्ड रिवेलेशन (1992) : पाकिस्तान : बारग्यूलेगन (2003) : श्रीलंका बारग्यूलेगन (2003)
8. डिपार्टमेन्ट ऑफ इकॉनॉमिक्स एण्ड सोसल अफेयर्स पाप्यूलेशन डिविजन युनाईटेड नेशन्स।
9. डिपार्टमेन्ट ऑफ इकॉनॉमिक्स एण्ड सोसल अफेयर्स पाप्यूलेशन डिविजन युनाईटेड नेशन्स।
10. प्रो. त्रिदिप चक्रवर्ती, सार्क नई विश्व व्यवस्था में उगता सूर्य, वर्ल्ड फोकस नवम्बर 2012 पृष्ठ 34



## खाद्य सुरक्षा का अधिकार: चुनौतियाँ एवं समाधान

पुष्पा मीणा

शोध छात्रा, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

संयुक्त राष्ट्र सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों में से पहला लक्ष्य वर्ष 2015 तक विश्व से गरीबी व भूख को खत्म करना है। दुनिया में व्याप्त भूखमरी व कुपोषण को समाप्त कर एक “स्वस्थ मानव” वर्तमान समाज की माँग है। रोटी, कपड़ा एवं मकान प्रत्येक व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकता है। कम कपड़े और बिना मकान के व्यक्ति जीवित रह सकता है, परन्तु भोजन के बिना उसका जीना सम्भव नहीं है। इसी कारण प्रत्येक सरकार का यह दायित्व बनता है कि वह किसी देश की सीमाओं के भीतर निवास कर रहे लोगों को खाद्यान्न सुरक्षा उपलब्ध करवाए। ब्राजील विश्व का पहला देश है, जिसने भोजन के अधिकार को कानूनी रूप से लागू किया, जो उसके “जीरो हंगर प्रोग्राम” का हिस्सा था।

भारत में 15 अगस्त, 2009 में 62वें स्वतन्त्रता दिवस पर प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा था कि “हम चाहते हैं, कि हमारे देश का कोई भी नागरिक कभी भी भूखा न सोए। इसीलिए हमारा लक्ष्य है कि हम एक खाद्य सुरक्षा कानून बनाएँगे जिसके तहत गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले हर परिवार को हर महीने एक निश्चित मात्रा में रियायती दरों पर अनाज दिया जाएगा।” इसी लक्ष्य को पूरा करते हुए राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा बिल 2011 को 22 दिसम्बर, 2011 को उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मन्त्री श्री के. वी. थॉमस ने लोकसभा में पेश किया था। लम्बे गतिरोध के बाद अन्ततः 5 जुलाई, 2013 को राष्ट्रपति के अध्यादेश के जरिए इसे लागू किया गया। बाद में इसे लोकसभा ने 26 अगस्त, 2013 को तथा राज्यसभा ने 2 सितम्बर, 2013 को पारित कर दिया जिस पर राष्ट्रपति ने अपनी स्वीकृति 12 सितम्बर, 2013 को दे दी है। यह कानून देश की 75 प्रतिशत ग्रामीण तथा 50 प्रतिशत शहरी कुल मिलाकर 67 प्रतिशत आबादी अर्थात् लगभग 82 करोड़ लोगों को खाद्य सुरक्षा का अधिकार देता है। भारत के राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून को भूख से लड़ने वाले, दुनिया के सबसे बड़े कार्यक्रम के रूप में देखा जा रहा है।

खाद्य सुरक्षा से तात्पर्य सभी लोगों को सदैव भोजन की उपलब्धता, पहुँच और उसे प्राप्त करने की क्षमता से है। अर्थात् सभी लोगों के पास पर्याप्त भोजन उपलब्ध हो। सभी लोग खाद्य पदार्थ खरीद पाने की क्षमता रखते हों तथा खाद्य की उपलब्धता में कोई बाधा न हो। भारतीय संविधान निर्माताओं ने भी गरीबों, वंचितों सहित देश के प्रत्येक नागरिक के गरिमामय जीवन जीने के अधिकारों को मूल अधिकार माना। अनुच्छेद-21 में इसे शामिल किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस अनुच्छेद की व्याख्या राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के तहत अनुच्छेद 39(क) के साथ की है। इसमें कहा गया है कि राज्य अपनी नीतियों को इस प्रकार बनाएँगे कि स्त्री-पुरुष सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार सुनिश्चित हो इसी प्रकार राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त के अन्तर्गत अनुच्छेद 47 में भी कहा गया है कि राज्य अपने नागरिकों के पोषाहार स्तर, जीवन स्तर को ऊँचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में शामिल करें। भारतीय नागरिकों को भूख से सुरक्षा का अधिकार अनुच्छेद 21 से प्राप्त है, जो कि अनुच्छेद 39(क) तथा 47 के तहत राज्यों की जिम्मेदारी है कि वे खाद्यान्न उत्पादन, परिरक्षण, वितरण का अपनी नीतियों के माध्यम से उन्नयन करें।

भारत का राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून बच्चों, महिलाओं व पुरुषों को भूखमरी से बचाने के लिए एक

क्रान्तिकारी कदम है।

प्रत्येक राज्य सरकार राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक के कार्यान्वयन, अधीक्षण एवं पुनर्विलोकन के लिए एक राज्य खाद्य आयोग का गठन करेगी। राज्य आयोग में एक अध्यक्ष, पाँच सदस्य एवं एक सचिव होगा। जो इस कानून के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे।

**खाद्य सुरक्षा अधिकार के मुख्य बिन्दु:-**

- प्रत्येक व्यक्ति को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से रियायती दर पर हर माह खाद्यान्न की एक निश्चित मात्रा प्राप्त करने का अधिकार होगा। इसमें लाभार्थियों की दो श्रेणियाँ बनाई गई हैं- 1 प्राथमिकता श्रेणी, 2 सामान्य श्रेणी। प्राथमिकता श्रेणी, में समाज के उन लोगों को शामिल किया गया है जो गरीबी रेखा से नीचे हैं। दूसरी, सामान्य श्रेणी है। प्राथमिक श्रेणी में 46 प्रतिशत लाभार्थी हैं। जिनमें प्रत्येक व्यक्ति को 5 किलोग्राम अनाज चावल, गेहूँ तथा मोटा अनाज क्रमशः 3, 2 तथा 1 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से दिया जाएगा। जबकि सामान्य श्रेणी में 28 प्रतिशत लाभार्थी हैं। इन्हें यह अनाज न्यूनतम समर्थन मूल्य की 50 प्रतिशत कीमत पर प्राप्त होगा।
- 0-6 वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चों को बुनियादी पोषण, स्वास्थ्य तथा एकीकृत बाल विकास सेवा के तहत स्कूल पूर्व शिक्षा की सुविधाएँ पाने का अधिकार होगा। इसके तहत पूरक पोषाहार, वृद्धि की निगरानी, टीकाकरण, स्वास्थ्य जाँच आदि सम्मिलित हैं।
- गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं को पका हुआ पोषाहार या घर ले जाने लायक राशन, जो साल भर स्थानीय आंगनबाड़ी केन्द्र या अन्य स्थानीय संस्था के जरिए उपलब्ध कराया जाएगा।
- मातृत्व सहायता के दौरान हर माह 1000 रुपये छः माह तक दिए जाएँगे, ताकि गर्भवती महिलाओं को गर्भावस्था के दौरान तथा प्रसव के बाद पोषण व अन्य देखभाल संबंधी जरूरतों को पूरा करने में मदद मिल सके।
- छः माह से तीन वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों को स्थानीय आंगनबाड़ी केन्द्र से पका हुआ पोषाहार या घर ले जाने लायक राशन उपलब्ध कराया जाएगा। 3-6 वर्ष तक के आयु वर्ग के बच्चों को आंगनबाड़ी केन्द्र से कम-से-कम 300 दिन तक एक बार ताजा भोजन या नाश्ता कराया जाएगा। 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को मध्याह्न भोजन के माध्यम से छुट्टियों के दिन को छोड़कर पूरे साल पूरे दिन में एक बार ताजा पका हुआ भोजन मुहैया कराया जाएगा।
- 14 वर्ष तक की आयु वर्ग के सभी बच्चे आंगनबाड़ी केन्द्र, मध्याह्न भोजन उपलब्ध कराने वाले केन्द्र, बेसहारा सहायता केन्द्र आदि किसी भी संस्थान में जाकर ताजा पका हुआ भोजन खा सकते हैं। इस कानून के तहत बच्चों को किसी भी हालत में इंकार नहीं किया जा सकता है।

- 6 वर्ष की आयु तक, कुपोषण के किसी भी स्तर से प्रभावित सभी बच्चों को विशेष पोषण परामर्श के जरिए स्थानीय बेहतर पोषणीय मदद, देखभाल, स्वास्थ्य जाँच के जरिए हरसंभव मदद की जाएगी। बेहद कम वजन वाले अल्पपोषित या बेहद कुपोषित बच्चों को पूरक पोषाहार हासिल करने का अधिकार होगा।
- प्रवासी लोगों को भी उनके वर्तमान निवास पर ही सभी अधिकार उपलब्ध कराए जाएँगे। निःसहाय लोगों को बिना किसी शुल्क के पका हुआ पोषक भोजन हासिल करने का अधिकार होगा।
- कोई भी व्यक्ति या परिवार जो भुखमरी की स्थिति में हो या भुखमरी का शिकार बनने वाला हो, उसे तत्काल अतिरिक्त सहायता पाने का अधिकार होगा। इसके तहत उसे तुरन्त मुक्त, निशर्त तथा भुखमरी से निजात पाने के सभी माध्यमों के तहत मदद पाने का अधिकार होगा। राज्य सरकार भुखमरी से प्रभावित व्यक्तियों और परिवारों की पहचान करेगी एवं भुखमरी पर नियंत्रण पाने के लिए तुरन्त प्रभावी कदम उठाएगी।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत दिए गए अधिकारों में भी किसी प्रकार की कटौती नहीं की जाएगी। 12वीं पंचवर्षीय योजना के खत्म होने तक ऐसा नहीं होगा, भले ही खाद्यान्न की मात्रा बढ़े या दाम बढ़ जाए या अन्य कोई कारण हो, साथ ही इससे जुड़े अन्य किसी भी अधिकार में, कानून में संशोधन के अलावा किसी और तरीके से कटौती नहीं की जा सकती।

**खाद्य सुरक्षा कानून का क्रियान्वयन:-** इस कानून के तहत किए गए प्रावधानों को लागू करने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली, एकीकृत बाल विकास सेवाएँ तथा मध्याह्न भोजन योजनाओं का इस्तेमाल किया जाएगा। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में पारदर्शी ढाँचा होगा, इसमें खाद्यान्न उपलब्धता एवं उचित मूल्य दुकान तक राहत पहुँचाने से कार्डधारकों तक पहुँचाने तक की प्रक्रिया पर सामुदायिक संस्थाओं के जरिए निगरानी रखी जाएगी। भण्डारण के लिए पर्याप्त ढाँचागत सुविधा की व्यवस्था व विकास वैज्ञानिक आधार पर किया जाएगा। उचित मूल्य की दुकानों को लाइसेंस देते समय, सामुदायिक संगठनों, ग्राम पंचायतों, स्वसहायता समूहों अथवा सरकारी समितियों को प्राथमिकता दी जाएगी। दुकानों के प्रबंधन का जिम्मा महिलाओं को सौंपा जायेगा। हर राज्य द्वारा विशेष तौर पर चिन्हित खाद्य कूपन जारी किए जाएँगे, ताकि दुकानों से कार्ड धारकों तक खाद्यान्न के परिवहन की निगरानी की जा सके। सार्वजनिक वितरण प्रणाली की सम्पूर्ण व्यवस्था कम्प्यूटरीकृत होगी। सामाजिक अंकेक्षण तथा सर्तकता समिति की मदद से सामुदायिक निगरानी होगी। इसमें राशनकार्ड में एक विशेष "अधिकार पेज" पर स्थानीय भाषा में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत दिए गए अधिकारों का उल्लेख होगा। यह राशनकार्ड परिवार की किसी वयस्क महिला के नाम पर होगा। लाभार्थियों की विशिष्ट पहचान के लिए "आधार कार्ड" का

प्रयोग किया जाना शामिल है।

भारत में भुखमरी, कुपोषण को समाप्त करने के लिए ये सर्वाधिक सब्सिडी (1,25,000 करोड़ रुपये) वाला खाद्यान्न का अधिकार है। जिसके द्वारा देश की 2/3 आबादी को खाद्यान्न की उपलब्धता को सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती है। भारत में उद्योगों के विकास और आवासीय परियोजनाओं के चलते पिछले दो दशक में कृषि योग्य भूमि लगभग 2 प्रतिशत तक घट गई है। अतः इस अधिकार के समक्ष महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं:-

- भण्डारण का उचित प्रबन्धन होने के कारण हजारों टन अनाज सड़कर नष्ट हो जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में एक वर्ष में जितना अनाज बर्बाद होता है उतने में 70 लाख लोगों को दो वक्त का भोजन मिल सकता है। स्टोर की क्षमता न होने से किसान अपनी फसल को कम दामों पर बेच देते हैं, जो बड़े व्यापारी द्वारा जमाखोरी को बढ़ा देते हैं। फलस्वरूप उनकी बाजार में कीमतें भी ज्यादा हो जाती है।
- भुखमरी, कुपोषण से मरने वालों की संख्या भारत में सर्वाधिक है। वैश्विक भूख सूचकांक में भारत 63वें स्थान पर है। यहाँ के व्यक्ति द्वारा लिए जाने वाले भोजन में ज़िंक, कैल्शियम व प्रोटीन जैसे विटामिन्स अन्य पोषक तत्वों की कमी होती है।
- खाद्य सुरक्षा के समक्ष विश्व जलवायु परिवर्तन जैसी गंभीर समस्या है। वैश्विक स्तर पर ग्लोबल वार्मिंग, होने वाले जलवायु परिवर्तन के कारण फसल उत्पादन का अनियमित होना मानव स्वास्थ्य एवं मौसम की विषमता जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। अनावृष्टि, बाढ़, सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में अधिक उपज देने वाली फसलों का उत्पादन करना चुनौतीपूर्ण है।
- खाद्य उत्पादन में अत्यधिक उपज प्राप्त करने के लिए बढ़ता रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग से मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। कृषि रसायनों का अत्यधिक प्रयोग से कृषि भूमि का उपजाऊपन तथा मृदा स्वास्थ्य भी बिगड़ता जा रहा है।
- खाद्य सुरक्षा कानून के अन्तर्गत सही व्यक्ति एवं पात्रता का चुनाव करना तथा बढ़ती भ्रष्टाचार की समस्या के अन्तर्गत खाद्यान्नों को बिना किसी रिसाव के सुरक्षित एवं सही मात्रा में पहुँचाना एक बड़ी चुनौती है।

वैश्विक स्तर पर भारत के खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। ये W.T.O. (विश्व व्यापार संगठन) के साथ किया गया एग्रीमैण्ट ऑन एग्रीकल्चर का उल्लंघन कर रहा है। इस समझौते के तहत कोई भी देश में खाद्य सब्सिडी की सीमा उसकी कुल कृषि पैदावार का अधिकतम 10 प्रतिशत हो सकती है। जबकि इस कार्यक्रम के माध्यम से देश की दो तिहाई आबादी को 2 जून की रोटी के लिए अत्यधिक रियायती दर पर जरूरी अनाज देने की गारंटी दी गई है। इसमें सरकार को

प्रतिवर्ष 125-150 करोड़ रुपए खर्च करने होंगे जो W.T.O. से किए कृषि करार का उल्लंघन होगा।

विकसित देश कृषि करार में संशोधन के बदले भारत के घरेलू बाजार को खाद्यान्न आयात के लिए खोलने की माँग कर रहे हैं, जो देश की खाद्य सुरक्षा व किसानों के समक्ष एक बड़ी चुनौती है। इस करार में कृषि उत्पादों की FERR (Fixed External Reference Rate) 1986-88 में निर्धारित की गई थी, इसे मुद्रास्फीति को ध्यान में रखते हुए परिवर्तित नहीं किया गया। जिसकी विकासशील देश माँग करते हैं।

हाल में ही दिसम्बर, 2013 में बाली (इण्डोनेशिया) में W.T.O. का मंत्रिस्तरीय सम्मेलन के दौरान सदस्य देशों ने एक 'Peace Clause' पारित किया है, जिसके अनुसार चार वर्षों के दौरान भारत तथा अन्य विकासशील देश यदि सब्सिडी की सीमा को पार करते हैं, तब भी इनके विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठायी जायेगी तथा इन 4 वर्षों के दौरान एक ऐसा स्थाई समाधान निकाला जायेगा, जो कि विकासशील देशों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने में कोई अड़चने उत्पन्न न करें। इस प्रकार इस सम्मेलन में भारत ने स्वयं के एवं विकासशील देशों के हितों को सुरक्षित रखने में सफलता प्राप्त की, क्योंकि सब्सिडी में कमी करना गरीबों पर भार डालना है।

यद्यपि इन चुनौतियों के बीच नागरिकों के लिए खाद्य सुरक्षा का लक्ष्य आसान नहीं है, तथापि असम्भव भी नहीं है। बेहतर प्रबन्धन, कुशल उत्पादन की सहायता से खाद्यान्न की उपलब्धता को सुनिश्चित किया जा सकता है। इसके लिए प्रमुख समाधान हैं:-

- सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत वितरित होने वाले अनाज भण्डारण व परिवहन के प्रबन्धन व आधारभूत ढाँचे को सुदृढ़ करना होगा। भण्डारण और प्रोसेसिंग को मनरेगा के साथ भी जोड़ा जा सकता है। इस सन्दर्भ में दीर्घकालीन वैज्ञानिक भण्डारण क्षमता सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने 20 लाख मीट्रिक टन भण्डारण क्षमता तैयार करने को मंजूरी दे दी है। जिससे खाद्यान्न भण्डारण की आवश्यकता को पूरा करने में सहायता मिलेगी।
- खाद्य सुरक्षा के लिए होने वाले खाद्य अपव्यय को रोकना आवश्यक है। किसी भी समारोह में भोजन की बर्बादी को रोककर ही खाद्यान्न संकट को कम किया जा सकता है। सैम पित्रोदा द्वारा गठित संस्था 'इंडिया फूड नेटवर्क' द्वारा भी खाद्य अपव्यय रोकने के लिए 'एस एम एस अलर्ट' प्रोग्राम चलाया जा रहा है, जिसके तहत प्राप्त सूचनाओं के आधार पर समारोह स्थलों से बचे खाने को एकत्रित कर जरूरतमंदों में वितरित किया जाता है। इसी प्रकार के प्रयास खाद्यान्न सुरक्षा हेतु आवश्यक है।
- भोजन की समस्या के समाधान हेतु खाद्य-प्रसंस्करण पर बल देना आवश्यक है। दुनिया के प्रसंस्करण खाद्य बाजार में हमारी हिस्सेदारी मात्र 1 से 1.5 प्रतिशत है। इसी कारण देश में फल व सब्जियों का औद्योगिकरण आज तक नहीं हुआ है।

• फसल की नई किस्मों का विकास किया जाना आवश्यक है, जो प्रोटीन, जिंक, कैल्सियम युक्त हो, जिससे कुपोषण की बढ़ती समस्या से निजात पाई जा सके। वित्त मंत्री ने बजट 2013-14 में न्यूट्री कृषि पर प्रायोजित कार्यक्रम शुरू करने के लिए 200 करोड़ रुपये के आवंटन का भी प्रस्ताव किया है।

- किसानों द्वारा उत्पादित फसलों का उचित मूल्य देना चाहिए, ताकि वे अत्यधिक फसल उत्पादन हेतु प्रोत्साहित हो सकें। साथ ही फसल-बीमा जैसी योजनाओं का कुशलता से संचालित किए जाने की आवश्यकता है।
- मिश्रित खेती व सहफसली खेती करके जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम से निपटा जा सकता है। साथ ही फसल कीटों, रोगकारकों के प्राकृतिक शत्रुओं के नियंत्रण का बेहतर तरीका अपनाया जाए ताकि रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग कम हो तथा कृषि जैव विविधता भी उचित स्तर तक बनी रहे।
- जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जाए ताकि टिकाऊ खाद्य सुरक्षा के साथ पोषण सुरक्षा भी प्राप्त हो सके।
- संसाधनों के बेहतर दोहन हेतु फव्वारा सिंचाई विधि, ड्रिप सिंचाई प्रणाली जैसी उच्च तकनीकों का प्रयोग किया जाए, जिसे कृषि-उत्पादकता में वृद्धि की जा सके।
- खाद्य-सुरक्षा कानून के उचित क्रियान्वयन के लिए जन-जागरूकता को बढ़ाना होगा, साथ ही तंत्र को सुदृढ़ करना होगा, भ्रष्टाचार जैसी समस्या को नियंत्रित कर सुव्यवस्थित आपूर्ति शृंखला के माध्यम से पात्र व्यक्ति तक इसकी पहुँच को उपलब्ध करवाना आवश्यक है।

भूखे व्यक्ति को भोजन मिले, ताकि वह एक बेहतर मानव-संसाधन बन सके, जो राष्ट्र निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए खाद्य-सुरक्षा अधिकार भारत सरकार द्वारा दिया गया। ये भारत को एक लोककल्याणकारी राज्य के रूप में परिभाषित करता है। यदि भारत को विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में शामिल होना है, तो पहले उसे अपनी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करनी होगी। प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत करना, जो उसका मूल अधिकार है, के सन्दर्भ में भोजन का अधिकार महत्वपूर्ण है जो भुखमरी व कुपोषण की समाप्ति के लिए एक अग्रसर पहल है। ये शिक्षा के अधिकार को भी सफल बनाता है क्योंकि स्कूल में मिलने वाला भोजन बच्चों को स्कूल आने के लिए प्रेरित करेगा। उन्हें स्कूल में पौष्टिक भोजन प्राप्त होगा जो देश के बौद्धिक भविष्य का निर्माण करेगा। इस अधिकार को पूरी संवेदनशीलता के साथ क्रियान्वित करना आवश्यक है, ताकि आँकड़ों में भूख से होने वाली मौतों में कमी आए तथा एक स्वस्थ राष्ट्र का सृजन हो।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में समाजवादी एवं

सामाजिक-आर्थिक न्याय जैसे शब्दों को शामिल किया गया है। भारत सरकार द्वारा प्रस्तुत खाद्य सुरक्षा कानून इन्हीं शब्दों को समाहित करता है। ये समाज के उस व्यक्ति तक, जो अत्यधिक गरीब हैं भोजन की उपलब्धता को सुनिश्चित करता है। भारी मात्रा में रियायतों वाला ये कार्यक्रम यद्यपि भण्डारण-समस्या, भ्रष्टाचार, सार्वजनिक वितरण प्रणाली की समस्या, प्रबन्धन की अपर्याप्तता जलवायु परिवर्तन, खाद्य अपव्यय की वजह से चुनौतियों का सामना कर रहा है, परन्तु इनके समाधान के लिए खाद्यान्नों की घर-घर तक आपूर्ति, कम्प्यूटरीकृत सहित सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग, विशिष्ट पहचान आधार कार्ड एवं लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत उपभोक्ता वस्तुओं की विविधता आदि में सुधार होना आवश्यक है। तभी भुखमरी, कुपोषण, भूखजनित बीमारियों से मुक्ति मिल सकेगी। इस खाद्यान्न सुरक्षा के अधिकार के प्रभावी क्रियान्वयन के द्वारा आर्थिक व सामाजिक विकास को संभव किया जा सकता है। भारत सरकार द्वारा ये सामाजिक समावेश का ऐसा कदम है, जिसमें महिलाओं व बच्चों के स्वास्थ्य को भी ध्यान में रखा गया है। इसमें खाद्य सुरक्षा के तहत महिलाओं को गृहस्थी का मुखिया बनाया गया है। कहा जाता है कि एक बालिका को शिक्षित किया जाए, तो उसका पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है, ठीक उसी प्रकार गृहस्थ की मुखिया एक महिला हो तो खाद्य सुरक्षा अपने आप आ जाएगी। ये महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। ये एक ऐसा ऐतिहासिक कदम है, जो सशक्त, स्वस्थ एवं सम्पन्न भारत के निर्माण में सहायक होगा।

#### संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. यू.एन.ओ. सहस्राब्दी विकास लक्ष्य, 2000
2. खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013
3. भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
4. 'खाद्य अपव्यय पदचिन्ह : प्राकृतिक संसाधनों पर प्रभाव' रिपोर्ट, खाद्य एवं कृषि संगठन।
5. नवंबर, 2013, क्रॉनिकल मासिक पत्रिका, नई दिल्ली।
6. नवंबर, 2013, दैनिक ट्रिब्यून समाचार पत्र।
7. दृष्टिकोण मंथन, पाक्षिक पत्रिका, नई दिल्ली।
8. बाली (इण्डोनेशिया) सम्मेलन रिपोर्ट, दिसम्बर, 2013



## भारतीय राष्ट्रवाद : समसामयिक चुनौतियाँ

डॉ. अमृता चौधरी

राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

भारतीय राष्ट्रवाद, एकता की भावना, जनचेतना, ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक, भाषाई, सांस्कृतिक एकता और नागरिकों के सामान्य हितों में समानता के मनोवैज्ञानिक तत्वों पर आधारित है। भारत में राष्ट्रवाद की अनेक धाराएँ, राष्ट्रीय आन्दोलन के समानान्तर विकसित हुईं। इन धाराओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप को व्यापक रूप तक प्रभावित किया।

वर्तमान में जो राष्ट्रवाद उभर कर सामने आ रहा है उसमें गांधीवादी विचारों के साथ-साथ वैश्वीकरणवादी पर बल दिया जा रहा है क्योंकि वर्तमान युग आर्थिक हितों पर टिका हुआ है। इसलिए इन आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए प्रत्येक राष्ट्र अपने यहां पर औद्योगीकरण को बढ़ावा दे रहा है और प्रत्येक व्यक्ति भी इन आर्थिक हितों से जुड़ रहा है।

आधुनिक राष्ट्रवाद का विकास उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। विभिन्न आन्दोलनों, भारतीय विचारों, साहित्यकारों और विभिन्न राष्ट्रवादी घटनाओं के द्वारा राष्ट्रवाद की भावना का विकास हुआ।

भारतीय राष्ट्रवाद में उपस्थित निम्नांकित चुनौतियों का अध्ययन किया जायेगा –

1. क्षेत्रीयतावाद
2. भाषावाद
3. आतंकवाद
4. साझा सरकार

**क्षेत्रीयतावाद:-** आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की सबसे बड़ी समसामयिक चुनौती क्षेत्रीयतावाद है। क्षेत्रीयतावाद के आधार पर ऐसे नवीन राजनीतिक दलों का उदय होने लगा, जो कि क्षेत्रीय हितों को लेकर शक्ति अर्जित करने लगे। क्षेत्रीयता के आधार पर राज्य केन्द्र से सीदेबाजी करने लगे हैं। राष्ट्रीय एकता विरोधी आंदोलन नागालैण्ड और मिजोरम दोनों क्षेत्रों के अलग होने के आन्दोलन, गोरखालैण्ड की माँग का आन्दोलन, असम में बोडो आन्दोलन पंजाब में खालिस्तान की माँग और आतंकवाद की भयानकता, जम्मू-कश्मीर में लगने वाले स्वतंत्रता के नारे आदि क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति के विकृत रूप हैं। 1987-89 के वर्षों के मध्य खालिस्तान आन्दोलन के साथ-साथ बंगाल का गोरखालैण्ड आन्दोलन तथा जम्मू-कश्मीर में बढ़ती हुई आतंकवादी प्रवृत्तियाँ इसी प्रकार के क्षेत्रवाद का परिणाम हैं। बुन्देलखण्ड राज्य की माँग क्षेत्रीयतावाद के आधार पर की जा रही है। उत्तर प्रदेश के पांच व मध्य प्रदेश के 16 जिलों को मिला कर 21 जिलों वाले बुंदलेखण्ड राज्य की माँग विगत पांच दशकों से की जा रही है। क्षेत्रीयतावाद के आधार पर कई नये राज्यों का गठन किया गया। नवगठित छत्तीसगढ़ राज्य 1 नवम्बर, 2000 को अस्तित्व में आया। अगस्त 2000 में संसद में उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 पास करके उत्तरांचल राज्य के निर्माण को स्वीकृति दे दी तथा 9 नवम्बर 2000 को नया उत्तरांचल राज्य अस्तित्व में आया। अगस्त, 2000 में ही संसद ने बिहार पुनर्गठन अधिनियम पारित करके झारखण्ड राज्य के निर्माण को 15 नवम्बर 2000 को मंजूरी दी। ये

विभिन्न राज्य क्षेत्रीयतावाद का ही परिणाम है। भारतीय राष्ट्रवाद की बढ़ती हुई चुनौती क्षेत्रीयतावाद ने हमारे सामाजिक, आर्थिक तथा राष्ट्रवादी विकास को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। जन आकांक्षाओं और चार दशकों के लंबे संघर्ष के मद्देनजर कांग्रेस कार्य समिति के द्वारा आखिरकार आंध्रप्रदेश को विभाजित कर अलग तेलंगाना राज्य के गठन को मंजूरी 30 जुलाई को दी गई। यह देश का 29वां राज्य होगा। आंध्र प्रदेश के 23 जिलों में से 10 जिलों को मिलाकर तेलंगाना राज्य का गठन किया जाएगा। इस तरह शेष आंध्र प्रदेश में जिसे 'सीमा-आंध्र' भी कहा जाता है, रायलसीमा के चार जिले एवं तटीय आंध्रप्रदेश के 9 जिले होंगे। तेलंगाना का अर्थ है - 'तेलुगू भाषियों की भूमि। 1972 में तेलंगाना संघर्ष के विरोध में आंध्र और रायलसीमा क्षेत्र में 'जय आंध्र आंदोलन' की शुरुआत। 2001 में चंद्रशेखर राव के नेतृत्व में गठित तेलंगाना राष्ट्र समिति (टी.आर.एस.) द्वारा प्रथम तेलंगाना की मांग। फरवरी 2010 में तेलंगाना राज्य के गठन की संभावना का जायजा लेने के लिए न्यायमूर्ति बी.एन. कृष्णा की अध्यक्षता में 5 सदस्यीय पैनल का गठन। जनवरी 2011 में तेलंगाना पृथक्करण सहित तेलंगाना हेतु छः संभावनाओं से युक्त कृष्णा समिति की रिपोर्ट पेश की गई। जुलाई, 2013 में कांग्रेस वर्किंग कमेटी द्वारा तेलंगाना राज्य का अनुमोदन। तेलंगाना को भारत का 29वां राज्य बनाये जाने के कारण देश के अन्य राज्यों में भी छोटे-छोटे राज्य बनाने की मांग उठ रही है जैसे उत्तर प्रदेश से पश्चिमांचल हरित प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश से बुदेलखंड, अवध प्रदेश, पूर्वांचल, पश्चिमी बंगाल से गोरखा लेण्ड, असम से कारबी आंगलॉग, महाराष्ट्र से विदर्भ और आंध्र प्रदेश से तेलंगाना आदि जो देश की राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए समस्या बन कर सामने आई है इससे विघटनकारी शक्तियों को बढ़ावा मिल रहा है।

**भाषावाद:-** आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की समसामयिक समस्याएँ जैसे क्षेत्रीयतावाद, आतंकवाद तथा सम्प्रदायिकतावाद से जुड़ी हुई एक अन्य समस्या भाषावाद की है। भाषा अभिव्यक्ति और विचारों के संवहन का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। वर्तमान में भाषा-विवाद के कारण कितने हिंसक आन्दोलन हो रहे हैं। भाषा के आधार पर नये राज्यों का निर्माण हुआ है, भाषावाद के आधार पर अनेक राजनीतिक दल अपने निहित स्वार्थों को पूरा करके, राष्ट्रीयता के विकास में गम्भीर बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। भाषावाद ने राष्ट्रवादी एकता, सुरक्षा और आर्थिक विकास में बाधा डाली है। 1960 में भाषा के आधार पर बम्बई राज्य को गुजरात और महाराष्ट्र के दो राज्यों में 1966 में पंजाब को पंजाब और हरियाणा के दो राज्यों में पुनर्गठित किया गया। भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की समस्या आज भी विद्यमान है। भाषावादी प्रान्तों के विचार ने पृथक्तावादी प्रवृत्तियों को बल दिया है जो राष्ट्रवाद की विरोधी अवधारणा है। भाषावाद के आधार पर राजनीति में नए दबाव गुटों का उदय हुआ जो राष्ट्रवाद के विरोधी है। भाषा के आधार पर महाराष्ट्रियों और गुजरातियों ने अपने

संगठन 'संयुक्त महाराष्ट्र समिति और महागुजरात जनता परिषद' बनायी गई है इन्होंने लगभग पूरी तरह से राजनीतिक पार्टियों की जगह ले ली है।

राष्ट्रवाद की चुनौती भाषावाद के कारण नये भाषायी राज्यों के निर्माण के अपरान्त भी भाषायी अल्पसंख्यकों की समस्या बनी हुई है। उत्तर प्रदेश में उर्दू का सवाल, कर्नाटक में मराठी भाषा-भाषियों का सवाल, पंजाब में हिन्दी भाषा-भाषियों की स्थिति भाषायी अल्पसंख्यकों की समस्याएँ उत्पन्न करती है। कर्नाटक में बसे मलयालियों और तमिलों में अब असुरक्षा की भावना पैर जमाने लगी है। कन्नडवासियों का गुस्सा धीरे-धीरे बढ़ रहा है और 1982 के हिंसक आन्दोलन में तो ज्वालामुखी फट ही पड़ा।

**राष्ट्रवाद की चुनौती: आतंकवाद:-** आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की सबसे बड़ी समसामयिक चुनौती आतंकवाद की है। आतंकवाद ने सम्पूर्ण भारत में अशान्ति फैला रखी है। आतंकवाद केवल भारत में ही नहीं बल्कि यह सम्पूर्ण विश्व को अपनी चपेट में ले चुका है। जम्मू-कश्मीर राज्य में भी 1987 से ही आतंकवाद की स्थिति बढ़ती जा रही है। इसमें पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित संगठन जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रन्ट, कश्मीर लिबरेशन आर्मी, हिजबुल मुजाहिद्दीन, जमाते तुलबा, अलफरान, हरकत-उल-अंसार, लश्कर-ए-तैय्यबा, जैश-ए- मोहम्मद और ऑल पार्टी हुरियत कांग्रेस आदि प्रमुख है। इनका उद्देश्य स्वतंत्र सम्प्रभु कश्मीर राज्य की स्थापना करना है।

इस समय भारत को सबसे बड़ी समसामयिक चुनौती, पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित छापामार युद्ध और आतंकवाद है। भारतीय संसद और कश्मीर विधान सभा भवन पर हमला भारतीय लोकतंत्र की नींव पर हमला है। 11 जुलाई, 2006 को क्रमवार हुए मुम्बई की ट्रेनों में विस्फोटों में 200 लोग मारे गये और 700 से ज्यादा लोग जख्मी हुए। आज आतंकवादियों के पास रॉकेट, रॉकेट लांचर, तोपे, मशीनगनें, शक्तिशाली बम, आर.डी.एक्स., एंथ्रेक्स व मानव बम जैसी विस्फोटक सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। आतंकवाद आज कई रूपों में दिखाई देने लगा है।

दिसम्बर 2002 से अगस्त 2003 तक मुम्बई में 7 बम विस्फोटों ने महानगर में 71 मौतों व 300 लोगों को घायल किया इन बम विस्फोटों में जैश-मोहम्मद, लश्कर-ए-तैय्यबा, हरकत-उल-मुजाहिद्दीन जैसे कई जेहादी संगठनों का हाथ था। आजादी के बाद भारत में जम्मू-कश्मीर, पंजाब, नागालैण्ड, असम, मिजोरम, त्रिपुरा, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर आदि राज्य आतंकवादी गतिविधियों से परेशान हैं।<sup>10</sup>

गृह मंत्रालय की विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार 2001 से लेकर 30 जून, 2006 तक की अवधि में देशभर में 9471 आतंकवादी घटनाएँ हुईं जिनमें 32 हजार लोग मारे गये।

राष्ट्रवादी एकता विरोधी नक्सलियों का कार्यक्षेत्र विशेष रूप से कर्नाटक, तमिलनाडू, उत्तरांचल, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और बिहार जैसे राज्यों में है।<sup>11</sup> समसामयिक

राष्ट्रवाद की चुनौती को बढ़ावा देने वाला उल्फा भारत से अलग स्वतंत्र असम की मांग कर रहा है। त्रिपुरा में "त्रिपुरा नेशनल वालंटियर्स" (टी.एन.वी.) नामक उग्रवादी संगठन सक्रिय है। इसके अलावा "आल त्रिपुरा टाईगर फोर्स" व "नेशनल लिबरेशन फ्रन्ट आफ त्रिपुरा" भी हिंसात्मक कार्यवाही करने वाले संगठन हैं।

11 सितम्बर को एक भी गोली चले बिना, अमरीका को विश्व में शर्मिन्दगी का मुंह देखना पड़ा। उसके ही विमानों को अपहरण के बाद उसकी 110 मजिली दो इमारतों और रक्षा मुख्यालय पेंटागन से टकरा कर तबाही मचाई। अमेरिकी राष्ट्रपति का आवास व्हाइट हाउस खाली करना पड़ा। भारत के साथ-साथ विश्व के अनेक देश आतंकवाद की आग में जल रहे हैं। इसी तरह विश्व मानचित्र पर इजरायल-जार्डन में फिलीस्तीनी गुरिल्ले लड़ाके, स्पेनिश में बास्क, ईरान-इराक में कुर्ज, जापान में रेड आर्मी, लीबिया में अबू नियाद संगठन, जर्मनी में बादर-मीनहोफ तथा फिलीपीन्स में हुकवाल, हेप्स एवं मोरोज आदि आतंकवादी संगठन कार्यरत हैं जिनसे राष्ट्रवादी एकता को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।<sup>12</sup>

आतंकवादी हमलें:- 8 सितम्बर, 2006 को माले गांव नासिक महाराष्ट्र में बम धमाके हुए। इनसे 37 लोगों की मौत हुई व 125 घायल हुए। 13 सितम्बर, 2008 को दिल्ली में बम धमाके हुए जिसमें 30 लोगों की मौत व 100 लोग घायल हुए। 27 सितम्बर, 2008 दिल्ली के महारौली प्लाई ओवर मार्केट में आतंकवादी बम धमाके हुए। 13 मई, 2008 को जयपुर राजस्थान में 7 बम धमाके हुए जिसमें 60 लोगों की मौत हुई और 150 लोग घायल हुए। 25 जुलाई, 2008 को बैंगलोर में 9 आतंकवादी धमाके हुए। 26 जुलाई, 2008 को अहमदाबाद में 21 आतंकवादी बम धमाके हुए। 26 नवम्बर 2008 से 29 नवम्बर, 2008 को मुम्बई में आतंकवादी हमले हुए जिसमें 173 लोगों की मौत हुई और 308 लोग घायल हुए।<sup>13</sup> 3 मार्च, 2009 को पाकिस्तान में श्रीलंका क्रिकेट टीम पर हमला हुआ जिसमें 6 क्रिकेट खिलाड़ी घायल हुए और 6 पाकिस्तानी पुलिसकर्मी मारे गये।

साझा सरकार:- आधुनिक राष्ट्रवाद की आज सबसे बड़ी राजनीतिक चुनौती साझा सरकारों की है इन सरकारों ने साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया है। भारतीय राष्ट्रवाद में साझा सरकारों ने बहुत सी समस्याओं को भी जन्म दिया है जैसे राजनीतिक अस्थायित्व, राजनीतिक दल-बदल को बढ़ावा देना, मंत्रीमण्डल और मुख्यमंत्री की प्रतिष्ठा का ह्रास, केन्द्र राज्य मतभेद और तनाव, चुनावों में धन की बढ़ती हुई भूमिका, अनवरत होने वाले चुनाव, और चुनावों में बाहुबल का बढ़ता प्रयोग आदि ऐसी समस्याएँ हैं जो राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीय एकता को विखंडित करती हैं। राष्ट्रवाद विरोधी साझा सरकारों की अस्थिरता के कारण देश को बहुत बार मध्यावधि चुनावों का सामना करना पड़ता है। राष्ट्रवाद विरोधी साझा सरकारों ने

राजनीतिक अपराधीकरण को बढ़ावा दिया है। राजनीतिक अपराधीकरण पहले केवल बिहार राज्य तक ही सीमित था। बिहार में 1977 के विधान सभा चुनावों में 10 हिस्ट्रीशीटर विधायक बने थे। कालान्तर में यह राजनीतिक अपराधीकरण साझा सरकारों के गढ़ उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, गुजरात महाराष्ट्र आदि तक फैल गया है।<sup>14</sup>

पन्द्रहवीं लोकसभा के लिए अप्रैल-मई 2009 में पांच चरणों में सम्पन्न चुनावों में सोनिया गांधी की अध्यक्षता वाले संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (यूपीए) ने अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की है जिसके चलते पहले से भी अधिक शक्ति के साथ यूपीए ने सत्ता में वापसी की है तथा डॉ. मनमोहन सिंह ने एक बार फिर पुनः प्रधानमंत्री के रूप में सरकार की कमान संभाली है। लोकसभा की 543 सीटों में से 261 सीटों पर विजय प्राप्त करने वाला यूपीए गठबन्धन कांग्रेस 206, डीएमके 18, तृणमूल कांग्रेस 19, राकांपा 9, नेशनल काङ्ग्रेस 3, आईयूएमएल 1 व झामुमो 2 सीटों के आधार पर अकेले अपने ही दम पर सरकार के गठन हेतु स्पष्ट बहुमत के निकट पहुंच गया।

आधुनिक राष्ट्रवाद की चुनौती, साझा सरकारों स्वयं में राजनीतिक व्यवस्था के लिए चुनौती है अथवा इसके कारण राष्ट्रीय हितों की पूर्ति अनिवार्यतः बाधित होती है। साझा सरकारों का दौर देश में विद्यमान सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्रीय विविधताओं की सहज राजनैतिक परिणति है। वर्तमान में भारत में क्षेत्रीय राजनीति का बढ़ता हुआ प्रभाव इस बात का संकेत है कि देश में आने वाला समय साझा सरकारों का समय है, तथा इस प्रकार की सरकारों का भविष्य भारत की दलीय व्यवस्था के स्वरूप पर निर्भर करता है जो कि राष्ट्रवादी भावना के समक्ष गंभीर चुनौती के रूप में उभर रही है।<sup>15</sup>

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. ए.आर. देसाई: भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ संख्या 48
2. विपिन चन्द्र: भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004, पृ.सं. 6.
3. डॉ. मधु राठौड़: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर 2002, पृ.सं. 329
4. प्रकाश नारायण नाटाणी: भारत में सामाजिक समस्याएँ, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 2000, पृ.सं. 86
5. डॉ. एम.एम. लवानियां, शशि के जैन: भारत में सामाजिक समस्याएँ, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर 2001, पृ.सं. 286, 290
6. क्रॉनिकल: सितम्बर 2013, पृ.सं. 16-18
7. राम आहूजा: सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2002, पृ.सं. 375

8. महेश चन्द्र शर्मा:विभाजन अस्वीकार, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1998, श्री कुलदीप नैयर का लेख – भारत पाकिस्तान संबंधों में सुधार, पृ.सं. 33
9. इण्डिया टुडे:8 सितम्बर, 2003, पृ.सं. 36
10. गणेश पांडे:अपराध शास्त्र, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 2004, पृ.सं. 340
11. इण्डिया टुडे:25 अक्टूबर 2006, पृ.सं. 22
12. कृष्ण कुमार रत्नू : जिहाद और आतंक, बुक एनक्लेव, जयपुर 2002, पृ.सं. 11, 196
13. द टाइम्स ऑफ इण्डिया:27 जुलाई, 2008
14. रजनी कोठारी:दी कॉंग्रेस सिस्टम इन इण्डिया, एलाइड पब्लिशर्स, बोम्बे, 1967
15. एस.एस. अवस्थी:इण्डियन गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स, हरानन्द पब्लिशर्स, न्यू दिल्ली।



## भारत में महिला सशक्तिकरण: दशा एवं दिशा

मधु मीणा

व्याख्याता, मानवता महाविद्यालय, फुलेरा

समाज में नारी की स्थिति जितनी सुदृढ़ होगी, समाज उतना ही विकसित और प्रभावपूर्ण होगा, हमारे धर्मग्रन्थों में भी लिखा गया है—‘यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता’ अर्थात् जहाँ नारी की पूजा की जाती है, वहाँ देवताओं का निवास होता है। लेकिन इसके बावजूद हमारे देश में नारी को अबला की संज्ञा देते हुए सदैव अपमानित और पद दलित किया जाता रहा है।

“तुम देवि आह! कितनी उदार, तुम मातृ-मूर्ति हो निर्विकार।

तुम क्षमानिलय में हो रहती, सबका दुःख अपने पर सहती।।”

विद्याता की सृष्टि में यदि कोई अनुपम कृति है तो वह है ‘नारी’। सृष्टि संरचना में यदि नारी की उत्पत्ति नहीं तो ईश्वर के सारे विधान ‘आकाश कुसुम’ की भाँति महज कल्पना बन रह जाते क्योंकि नारी सृष्टि की धुरी व जगत् संचालन का अमूल्य वरदान है। दया, करुणा, ममता, क्षमा, त्याग, बलिदान जैसे दिव्यगुणों से विभूषित नारी सदैव अग्रपूज्या व वंदनीय रही है क्योंकि भारतीय मनीषियों ने नारी को भोग का साधन न मानकर वर्णाश्रम व्यवस्था के स्तम्भ गृहस्थाश्रम की रीढ़ बताया है।

नेपोलियन बोनापार्ट ने नारी की महत्ता बताते हुए लिखा था कि—“मुझे एक योग्य माता दे दो मैं एक योग्य राष्ट्र दे दूँगा।”

सदैव से यातना और शोषण की शिकार रही महिला के उन्नयन हेतु विश्व स्तर पर पहली बार संगठित प्रयास 1903 में अमेरिका में वूमन ट्रेड यूनियन के गठन के साथ शुरू हुआ। 1910 में अमेरिका में महिला दिवस मनाए जाने का मुद्दा उठाया गया। शुरू में विभिन्न देशों में अलग-अलग तिथियों को महिला दिवस मनाया जाता था। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा बाद में इसके लिए 8 मार्च की तिथि घोषित की गई। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के सशक्तिकरण में इस दिवस ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

पाँचवें दशक में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों की घोषणा के साथ ही महिलाओं के लिए विश्व स्तर पर समानता की बात उठी। महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देने तथा लिंग भेदभाव समाप्त करने में संयुक्त राष्ट्र संघ की मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणा ने प्रेरक का काम किया। 1960 में अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस की 50वीं वर्षगाँठ पर महिलाओं को राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों में वृद्धि करने की घोषणा को स्वीकृति प्रदान की गई।

**क्या है महिला सशक्तिकरण**

1985 में नैराबी में सम्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में महिला सशक्तिकरण को परिभाषित किया गया। महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य—महिलाओं की पुरुषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायत्तता है, भारत में महिला सशक्तिकरण से आशय प्राथमिक रूप से महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक दशा में सुधार लाना है।

महिला सशक्तिकरण की दिशा में किए जा रहे प्रयासों को और ठोस रूप देने के लिए 1993 में बीजिंग में सम्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में विधायिका में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया। भारत में इस दिशा में प्रयास करते हुए महिला आरक्षण विधेयक संसद में कई बार प्रस्तुत किया गया, किन्तु विभिन्न आपत्तियों के कारण वह अभी तक पारित नहीं हो सका है।

भारत के संविधान में महिला-पुरुष अमीर-गरीब तथा साक्षर-निरक्षर सभी को समान रूप से सुरक्षा प्रदान की गयी है। विधि के समक्ष समानता तथा शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए कटिबद्ध हमारे संविधान निर्माताओं ने सभी को सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय देने का आश्वासन देते हुए संविधान की प्रस्तावना में ही यह स्पष्ट दिया है कि संविधान के समक्ष स्त्री एवं पुरुष में कोई भेद नहीं है। संविधान की प्रस्तावना में 'प्रतिष्ठा और अवसर की समता' तथा 'व्यक्ति की गरिमा' इत्यादि वाक्यांशों का प्रयोग कर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि भारत में अब भेदभाव जैसी पुरानी मान्यताओं को कोई स्थान नहीं मिलेगा।

भारत के संविधान में महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान:- स्वतंत्रता के पूर्व देश में महिलाओं की दयनीय स्थिति को देखते हुए संविधान में महिलाओं को समाज के सभी क्षेत्रों में विकास हेतु अवसर उपलब्ध कराने के लिए कुछ विशेष व्यवस्थाएँ की गयी हैं। महिला अधिकारों को संरक्षित करने तथा महिलाओं को विकास के समान अवसर उपलब्ध कराने वाली संवैधानिक व्यवस्थाओं का विवरण इस प्रकार है-

- अनुच्छेद 14-संविधान के इस अनुच्छेद में व्यक्ति को विधि के समक्ष समता अथवा विधि के समान संरक्षण का आदेश राज्य को दिया गया है। यह अनुच्छेद महिला तथा पुरुष दोनों के मामले में लागू होता है।
- अनुच्छेद 15-इस अनुच्छेद में धर्म, जाति, लिंग, मूलवंश इत्यादि आधारों पर विभेद न करने का निर्देश दिया गया है। अनुच्छेद 15(3) में यह भी कहा गया है कि राज्य द्वारा महिलाओं तथा बच्चों के हित को देखते हुए बनाया कोई कानून इस अनुच्छेद के विरुद्ध नहीं माना जाएगा।
- अनुच्छेद 16-इस अनुच्छेद द्वारा लोक नियोजन में पुरुष तथा महिला को समान अवसर दिये जाने का निर्देश है। समान कार्य के लिए समान वेतन का निर्देश भी इसी अनुच्छेद में है।
- अनुच्छेद 23-24-इस अनुच्छेद द्वारा नारी के शोषण, बलात् श्रम, महिलाओं का क्रय-विक्रय इत्यादि पर रोक लगाए जाने का निर्देश है।
- अनुच्छेद 39-इस अनुच्छेद में कहा गया है कि राज्य ऐसी नीतियों का निर्माण करेगा जिससे (क) स्त्री पुरुष दोनों के जीवन निर्वाह की स्थितियाँ बनें (ख) स्त्री पुरुष दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिल सके।

- अनुच्छेद 42-इस अनुच्छेद में राज्य को ऐसी व्यवस्था करने का निर्देश है जिससे महिलाओं को प्रसूति काल में वे सुविधाएँ मिल सकें जो उन्हें मानवीय आधार पर मिलनी चाहिए।

महिला अधिकारों के संरक्षण के लिए कानून:- संविधान द्वारा प्रदत्त इन महिला अधिकारों को सम्यक् ढंग से लागू करने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा समय-समय पर विधियों का निर्माण किया गया है। मादा भ्रूणों को प्रसव के पूर्व ही नष्ट कर दिए जाने की बढ़ती प्रवृत्ति को देखते हुए केन्द्र सरकार द्वारा प्रसवपूर्ण निदान तकनीक अधिनियम, 1994 लागू किया गया जो मादा भ्रूण का पता लगाने की अत्याधुनिक तकनीक के उपयोग पर प्रतिबंध लगाता है। इसके अतिरिक्त महिलाओं को वेश्यावृत्ति से मुक्ति दिलाने के लिए वेश्यावृत्ति निवारण अधिनियम, 1956, अनैतिक व्यापार (निरोधक) अधिनियम, 1959 (1986 में यथा संशोधित) दहेज की कुप्रथा को समाप्त करने के उद्देश्य से दहेज निषेध अधिनियम, 1961 तथा महिलाओं को प्रसूति सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करने के लिए प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961 लागू किया गया। सती प्रथा पर प्रभावी नियन्त्रण के उद्देश्य से सती निषेध अधिनियम, 1987, कम उम्र में बालिकाओं के विवाह को रोकने के लिए बाल विवाह निषेध अधिनियम, 1976 तथा स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध किए जाने वाले अश्लील प्रदर्शनों पर रोक लगाने हेतु स्त्री अशिष्ट निरूपण निषेध अधिनियम, 1986 लागू किया गया। इसके अतिरिक्त भारतीय दण्ड संहिता में स्त्री की मर्यादा के विरुद्ध कार्य करने पर संहिता की धारा 354 के अन्तर्गत दण्ड की व्यवस्था की गई है। धारा 509 में भी स्त्री की लज्जा का अनादर करने वाले संकेतों अथवा प्रदर्शन पर दण्ड की व्यवस्था है। धारा 377 के अन्तर्गत बलात्कार को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।

महिला एवं बाल विकास विभाग:- महिलाओं और बच्चों के विकास को वांछित गति प्रदान करने के लिए 1985 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन महिला एवं बाल विकास विभाग का गठन किया गया था। यह विभाग महिलाओं एवं बच्चों के विकास की देखरेख के लिए एक नोडल एजेंसी के रूप में काम करता है। इस क्षेत्र में काम करने वाली सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं में समन्वयन का काम भी यह विभाग करता है।

महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा महिलाओं तथा बच्चों के अवैध व्यापार, यौन उत्पीड़न तथा महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अन्य अपराधों पर प्रभावी नियन्त्रण के लिए 1998 में राष्ट्रीय कार्यवाही योजना तैयार की गई थी। इस योजना का उद्देश्य दुराचार की शिकार महिलाओं को समाज की मुख्य धारा से जोड़ना है। महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा एक केन्द्रीय सलाहकार समिति का गठन भी किया गया है जो विभाग के सचिव की अध्यक्षता में केन्द्रीय मंत्रालयों के सदस्यों के साथ मिलकर काम करती है। राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में मुख्य सचिव अथवा अतिरिक्त मुख्य सचिव की अध्यक्षता में राज्यस्तरीय सलाहकार

समिति का गठन किया गया है।

राष्ट्रीय महिला एवं बाल विकास विभाग पर महिलाओं तथा बच्चों के विकास के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की यूनिसेफ तथा यूनिफेम जैसी संस्थाओं के साथ समन्वय की जिम्मेदारी है। इसके अतिरिक्त इस विभाग पर निम्नलिखित अधिनियमों को लागू करने की भी जिम्मेदारी है—

- अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम, 1959
- स्त्री अशिष्ट निरूपण निषेध अधिनियम, 1986
- दहेज निषेध अधिनियम, 1961
- सती प्रथा निरोधक अधिनियम, 1987
- शिशु दुग्ध विकल्प, दुग्धपान बोतल एवं शिशु आहार
- उत्पादन, आपूर्ति और वितरण अधिनियम, 1992

राष्ट्रीय महिला एवं बाल विकास विभाग अपने सभी दायित्वों का निर्वहन तीन स्वायत्त संगठनों 1. राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान 2. केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड तथा 3. राष्ट्रीय महिला कोष तथा एक सांविधानिक संस्था राष्ट्रीय महिला आयोग के माध्यम से करता है।

राष्ट्रीय महिला आयोग:— केन्द्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना 31 जनवरी, 1992 को की गई। राष्ट्रीय महिला आयोग में एक अध्यक्ष तथा पाँच सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त आयोग का एक सचिव भी होता है। अध्यक्ष, सदस्यों तथा सचिव की नियुक्ति केन्द्र सरकार की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। आयोग का मुख्य कार्य भारतीय संविधान तथा अन्य प्रचलित विधियों की परिधि में रहते हुए महिलाओं को प्राप्त अधिकारों के हनन से सम्बन्धित मामलों की जाँच करना, महिलाओं को प्रभावित करने वाले संवैधानिक प्रावधानों तथा अन्य विधियों की समीक्षा करना तथा आवश्यक संशोधन हेतु संस्तुति करना है। आयोग महिलाओं के अधिकारों के हनन के मामलों की जाँच भी करता है तथा दोषी अथवा सम्बन्धित व्यक्ति को बुलाकर उसका बयान भी लेता है। आयोग स्वयंसेवी संस्थाओं तथा सरकारी एजेंसियों के माध्यम से अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। आयोग का वार्षिक बजट लगभग 5 करोड़ का रहता है।

राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति—(2001):— भारत में वर्ष 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष घोषित किया गया था। इसी उपलक्ष्य में देश में पहली बार राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति की घोषणा की गई। महिला सशक्तीकरण की दिशा में केन्द्र सरकार द्वारा उठाया गया यह अभिनव कदम था। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के उत्थान तथा सशक्तीकरण के लिए इस नीति में कई दिशा-निर्देश और मानक तय किए गए हैं। इस नीति के कुछ महत्त्वपूर्ण तत्व अग्रलिखित हैं—

- देश में महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार तथा सामाजिक सुरक्षा हेतु आधारभूत ढाँचा तैयार करना तथा सभी प्रकार की सामाजिक गतिविधियों में उन्हें शामिल

करना।

- महिलाओं के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए उचित माहौल बनाना तथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और न्यायिक सभी क्षेत्रों में आधारभूत स्वतन्त्रता में उन्हें समान रूप से भागीदार बनाना।
- महिलाओं के लिए ऐसा वातावरण बनाना जिसे उन्हें यह अनुभव हो सके कि वे देश के आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में भागीदार हैं।
- महिलाओं के प्रति किसी तरह के भेदभाव को दूर करने के लिए समुचित नियमों, निर्देशों और कानूनों का प्रणयन करना।
- महिलाओं के प्रति यौन उत्पीड़न तथा घरेलू हिंसा को रोकने के लिए समुचित कानून बनाना।
- महिलाओं के सामाजिक अधिकार को स्थापित करने हेतु प्रयास करना।

राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति, 2001 को देश में पूरी तरह लागू करने हेतु 10 वर्ष का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। केन्द्र सरकार द्वारा इस दिशा में कई उल्लेखनीय प्रयास किए गए हैं।

महिला सशक्तीकरण की दिशा में किए गए कुछ प्रमुख विधिक प्रयास:— महिलाओं के सशक्तीकरण की दिशा में एक अभिनव प्रयास हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 पारित करके किया गया। इस संशोधन द्वारा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 4 की उपधारा 2 तथा धारा 23 एवं 24 का लोप कर धारा 6 को अंत स्थापित किया गया है। इस संशोधन के द्वारा पिता की सम्पत्ति में पुत्रियों को वही अधिकार दिया गया है जो पुत्रों को प्राप्त है। इतना ही नहीं अधिनियम में पूर्व में मृत पुत्री की सन्तानों को वही अधिकार दिया गया है जो पूर्व में मृत पुत्र के सन्तानों को प्राप्त है। अधिनियम की धारा 24 को लोप कर दिया गया है। यह धारा पुनर्विवाह करने वाली स्त्री के पिता की सम्पत्ति पर से अधिकार को समाप्त करती थी। इसी प्रकार महिला को निवासगृह के सम्बन्ध में विभाजन की माँग करने से वंचित करने वाली धारा 23 का विलोपन कर दिया गया है।

घरेलू उत्पीड़न से सुरक्षा हेतु एक विधेयक संसद द्वारा वर्ष 2005 के मानसून सत्र में पारित किया गया। Protection of Women from the Domestic Violence Act, 2005 नामक इस अधिनियम को राष्ट्रपति की स्वीकृति सितम्बर, 2005 में मिली। जम्मू-कश्मीर को छोड़कर शेष भारत में लागू इस अधिनियम के अन्तर्गत महिलाओं को शारीरिक, मानसिक, मौखिक, आर्थिक तथा यौन उत्पीड़न सहित सभी तरह की पारिवारिक हिंसा से संरक्षण प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। अधिनियम में महिलाओं को निःशुल्क कानूनी सहायता भी उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया है। यह अधिनियम बिना विवाह के किसी पुरुष के साथ रह रही महिलाएँ, विधवाओं तथा अकेले जीवन व्यतीत कर रही महिलाओं को भी संरक्षण प्रदान

करता है। अधिनियम में किसी महिला के उत्पीड़न के लिए दोषी व्यक्ति को एक वर्ष की सजा तथा 20,000 रुपए का जुर्माने का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त सरकार के पास 'परित्यक्तताओं हेतु गुजारा भत्ता (संशोधन) विधेयक, बालिका अनिवार्य शिक्षा एवं कल्याण विधेयक आदि विचाराधीन है।

संविधान के अनुच्छेद 40 में दिए गए निर्देशों के अनुपालन में संसद द्वारा 73वाँ एवं 74वाँ संविधान संशोधन, 1992 पारित किया गया है। इस संशोधन द्वारा ग्राम पंचायतों तथा नगरपालिकाओं में क्रमशः अनुच्छेद 243(घ) तथा अनुच्छेद (न) द्वारा आरक्षित तथा अनारक्षित वर्ग की महिलाओं हेतु 33 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

विधायिका में महिला आरक्षण के मामले पर सभी गतिरोधों को समाप्त करने के लिए एक नया प्रस्ताव सरकार के पास विचाराधीन है। इस प्रस्ताव के अन्तर्गत महिलाओं को समुचित प्रतिनिधित्व देने के लिए संसदीय एवं विधान सभाई सीटों की वर्तमान संख्या में एक तिहाई की वृद्धि कर उसे महिलाओं के लिए आरक्षित करने की योजना है। महिलाओं को इस प्रकार से आरक्षण देने के लिए संविधान में संशोधन करना होगा, क्योंकि संविधान के वर्तमान प्रावधानों के अनुसार निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या में वर्ष 2026 तक कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

15 फरवरी, 2006 को सर्वोच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने विवाह के रजिस्ट्रेशन को अनिवार्य किये जाने का निर्देश दिया। महिला सशक्तीकरण की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण न्यायिक कदम है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के मुताबिक केन्द्र सरकार शीघ्र ही इसके लिए एक विधेयक लाने जा रही है। उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय महिला आयोग ने विवाह पंजीकरण पर केन्द्रीय कानून बनाने की सिफारिश की थी। विवाह पंजीकरण कानून लागू हो जाने पर पुरुषों द्वारा विवाह को नकारने की घटनाओं पर रोक लग सकेगी। साथ ही पति पत्नी तथा महिला और उसके ससुराल जनों के बीच विवाद की स्थिति में विवाह को साबित करने की जिम्मेदारी महिला पर नहीं होगी। परिवार कल्याण मन्त्रालय द्वारा इस विधेयक का प्रारूप तैयार किया जा चुका है। फिलहाल यह प्रारूप सभी मन्त्रालयों तथा राज्य सरकारों को भेजा गया है। इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार एड्स अथवा एच आई वी संक्रमण की स्थिति में विवाह से इन्कार करने, विवाह पूर्व एड्स को तलाक का मान्य आधार बनाने के लिए एक विधेयक लाने पर विचार कर रही है। इस प्रस्ताव में एड्स से ग्रसित महिला को गर्भधारण न करने का अधिकार दिए जाने का प्रावधान सम्मिलित किया जाना है।

केन्द्र सरकार द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता में संशोधन कर अपरिहार्य परिस्थितियों को छोड़कर सूर्यास्त के बाद और सूर्योदय के पूर्व महिलाओं की गिरफ्तारी को विधि विरुद्ध घोषित किया गया। इस संशोधन द्वारा पुलिस अभिरक्षा में महिला के साथ हुए यौन उत्पीड़न अथवा बलात्कार की न्यायिक जांच को अनिवार्य कर दिया गया है। बाल विवाह पर रोक लगाने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा नया कानून बनाया जा रहा है। इसके लिए बाल विवाह

प्रतिषेध-विधेयक 2004 राज्य सभा द्वारा दिसम्बर 2006 में पारित किया जा चुका है। इस नए कानून में बाल विवाह कराने वाले माता-पिता के लिए सजा का प्रावधान है साथ ही ऐसे विवाह से असंतुष्ट महिला (लड़की) की शिकायत पर विवाह को शून्य ठहराए जाने का प्रावधान भी विधेयक में किया गया है।

**महिला सशक्तीकरण के लिए विशेष कार्यक्रम:-** महिला सशक्तीकरण को मूर्त रूप देने के लिए महिलाओं के शैक्षिक, स्वास्थ्य एवं सामाजिक स्तर में सुधार की अनिवार्यता को देखते हुए केन्द्र सरकार द्वारा विभिन्न कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों का विवरण इस प्रकार है:-

- **स्वाधार-यह योजना केन्द्र सरकार द्वारा 2 जुलाई, 2001 से आरम्भ की गई।** इसका उद्देश्य गम्भीर परिस्थितियों में स्थित महिलाओं को समग्र व समन्वित सहायता प्रदान करना है। परिवार से अलग कर दी गई महिलाएँ, जेल से मुक्त की गई महिलाएँ, प्राकृतिक आपदा से पीड़ित महिलाएँ, वैश्यालयों से मुक्त कराई गई महिलाएँ/लड़कियाँ आदि इस योजना की पात्र हैं। इस योजना में भोजन, आवास/आश्रय, स्वास्थ्य सेवा, कानूनी मदद और सामाजिक व आर्थिक पुर्नवास की सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं। यह योजना केन्द्र व राज्य सरकारों के सम्मिलित संसाधनों से पंचायतों एवं स्वयं सहायता समूहों तथा गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से चलाई जा रही है।
- **स्वावलम्बन-महिलाओं को प्रशिक्षण के माध्यम से रोजगार उपलब्ध कराना इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है।** इसमें मुख्यतः कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग, मेडिकल ट्रांसक्रिप्शन, टेलीविजन मरम्मत, हथकरघा व लिपिकीय क्षेत्र में प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। 1979 में शुरू की गयी नोराड महिला प्रशिक्षण योजना को 1982 में स्वावलम्बन नाम से शुरू किया गया है।
- **आशा योजना-11 फरवरी, 2005 को केन्द्र सरकार द्वारा इस योजना की घोषणा की गई।** योजना के अन्तर्गत ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए प्रत्येक गाँव में स्थानीय स्तर पर एक आशा कार्यकर्ता की तैनाती का प्रावधान है। योजना को राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत प्रथम चरण में 15 राज्यों में मई 2005 से लागू किया है।
- **स्वर्णिम योजना-पिछड़े वर्ग की ऐसी महिलाएँ जो गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले परिवारों की हैं, उन्हें आर्थिक रूप से सक्षम बनाने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा इस योजना का संचालन किया जा रहा है।** इस योजना के अन्तर्गत पिछड़े वर्ग की महिलाओं को 50 हजार रुपए तक का ऋण 4 प्रतिशत वार्षिक दर पर दिया जाता है। योजना के अन्तर्गत महिला उद्यमियों को ऋण वापसी हेतु 12 वर्ष की लम्बी अवधि प्रदान की गई है।

- बालिका प्रोत्साहन योजना-वर्ष 2006-2007 के वार्षिक बजट में घोषित इस योजना के अन्तर्गत कक्षा 8 पास करने वाली बालिका को कक्षा 9 में नामांकित होने पर 3000 रुपये की एकमुश्त धनराशि दी जाती है।
- इंदिरा गांधी इकलौती बालिका छात्रवृत्ति योजना-देश में बढ़ते लैंगिक असंतुलन को देखते हुए केन्द्र सरकार द्वारा इकलौती कन्या मुफ्त शिक्षा योजना शुरू की गयी है। वर्ष 2005-2006 में शुरू इस योजना के अन्तर्गत माता-पिता की इकलौती कन्या सन्तान को 6 से 12 कक्षा तक निःशुल्क शिक्षा तथा विश्वविद्यालय स्तर पर इंदिरा गांधी छात्रवृत्ति योजना के अन्तर्गत छात्रवृत्ति दिये जाने का प्रावधान है।
- अल्पावधि प्रवास गृह-1969 में शुरू की गयी इस योजना के अन्तर्गत बहिष्कृत अथवा परित्यक्ता महिलाओं के लिए पुनर्वास सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। वर्ष 1999 से यह योजना केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड के अधीन है।
- परिवार परामर्श केन्द्र-1984 से केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड के अधीन स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से चल रही इस योजना के अन्तर्गत पारिवारिक असहयोजना की समस्या से जूझ रही महिलाओं/बालिकाओं को पुनर्वास सम्बन्धी सहायता उपलब्ध कराई जाती है। इस तरह की सहायता पुलिस मुख्यालयों, महिला कारागार, विवाह पूर्व परामर्श केन्द्रों पर भी उपलब्ध कराई जा रही हैं।

राजस्थान में महिला सशक्तिकरण के लिए गए प्रमुख प्रयास:-

मुख्यमंत्री एकलनारी सम्मान पेंशन योजना:-

18 वर्ष या अधिक आयु की विधवा/परित्यक्ता/तलाकशुदा महिला जो, राजस्थान की मूल निवासी हो व राजस्थान में रह रही हो, जिसके जीवन निर्वाह हेतु स्वयं की नियमित आय का कोई स्रोत न हो। 75 वर्ष से कम आयु के पेंशनर को 500 रुपये प्रतिमाह, 75 वर्ष से अधिक आयु के पेंशनर को 750 रुपये प्रतिमाह की दर से पेंशन देय।

राजस्थान जननी-शिशु सुरक्षा योजना:-

यूपीए सरकार की जननी-शिशु सुरक्षा योजना की शुरुआत एक जून, 2011 को हरियाणा राज्य के मेवात जिले में यूपीए चेंबरपर्सन, श्रीमती सोनिया गांधी जी के द्वारा की गई। राज्य सरकार द्वारा भी प्रदेश में मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में कमी लाने एवं राजकीय चिकित्सा संस्थानों में संस्थागत प्रसव को बढ़ावा देने की दिशा में 12 सितम्बर, 2011 से केन्द्र सरकार की जननी सुरक्षा योजना को राजस्थान सरकार द्वारा पूर्ण तैयारी के साथ 'राजस्थान जननी-शिशु सुरक्षा योजना' के रूप में प्रारम्भ की गई। इस योजना के अन्तर्गत सभी प्रसूताओं एवं नवजात शिशुओं को आवश्यकता होने पर (30 दिवस तक) सरकारी चिकित्सा संस्थाओं में सभी प्रकार की निःशुल्क सेवाएँ एवं परिवहन उपलब्ध करवाया जा रहा है। इससे संस्थागत प्रसव 71 प्रतिशत से बढ़कर

81 प्रतिशत हो गया है। योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को 1400 रुपये एवं शहरी क्षेत्र की महिलाओं को 1000 रुपये की प्रोत्साहन राशि का भुगतान किया जा रहा है। इस योजना में मई, 2013 तक 21 लाख प्रसूताओं निःशुल्क दवा, 13 लाख की निःशुल्क लैब जाँच, 14.74 लाख को निःशुल्क भोजन, 10.93 लाख को चिकित्सा संस्थान से घर तक निःशुल्क परिवहन की सुविधा उपलब्ध करायी गई। इस योजना में नवजात शिशुओं को मई, 2013 तक 4.04 लाख को निःशुल्क दवा, 1.12 लाख की निःशुल्क लैब जाँच, 45 हजार को चिकित्सा संस्थान से घर तक निःशुल्क परिवहन की सुविधा उपलब्ध करायी गई। एक-एक करोड़ रुपये की लागत से प्रदेश के समस्त जिला चिकित्सालयों में लेबर रूम का उच्चीकरण एवं मरम्मत कराई जा रही है। राजस्थान जननी-शिशु सुरक्षा योजना के अन्तर्गत 104 जननी एक्सप्रेस सेवा 2 अक्टूबर, 2012 से प्रारम्भ की गई है। जिसके अन्तर्गत 400 वाहनों के द्वारा प्रसूताओं को घर से अस्पताल लाने ले जाने के लिए परिवहन सुविधा उपलब्ध कराई गई है। इसमें 200 नई 'जननी एक्सप्रेस' शामिल की जाएगी। मुख्यमंत्री शुभलक्ष्मी योजना लागू कर दिनांक एक अप्रैल, 2013 व उसके पश्चात् संस्थागत प्रसव से बालिका का जन्म होने पर 2100 रुपये तथा एक वर्ष की आयु एवं टीकाकरण पूर्ण होने पर 2100 रुपये अतिरिक्त देय होंगे। बालिका की 5 वर्ष आयु होने व स्कूल में प्रवेश लेने पर 3100 रुपये की अतिरिक्त राशि देय होगी। इस योजना के प्रारम्भ होने से 30 जून, 2013 तक 94,701 बालिकाओं के जन्म पर प्रोत्साहन राशि के चेक वितरित किए जा चुके हैं।

महिलाओं को रोडवेज की सभी श्रेणी की बसों में 30 प्रतिशत की छूट:-

राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम की सभी श्रेणी की बसों में राज्य सरकार की घोषणा के अनुरूप सभी वर्ग की महिलाओं को 30 प्रतिशत की छूट के आदेश जारी कर दिए गए हैं। अब रोडवेज की साधारण, एक्सप्रेस, सेमी डिलक्स, डीलक्स, वातानुकूलित व सुपर लज्जरी बसों में महिलाओं को जहाँ तक राजस्थान रोडवेज की बसें जाती हैं, 30 प्रतिशत छूट का लाभ दिनांक 20 जून, 2013 से मिलना शुरू हो चुका है। निगम की बसों में 2 लाख से 3 लाख महिलाएँ प्रतिदिन यात्रा करती हैं। राजस्थान रोडवेज की बसें राजस्थान सहित 10 अन्य राज्यों में जम्मू कश्मीर, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, गुजरात, महाराष्ट्र में संचालित की जा रही हैं। राज्य सरकार द्वारा निगम को वर्ष 2013-14 के लिए 100 करोड़ रुपये का पुनर्भरण किया जा रहा है।

बालिकाओं को साइकिल वितरण:- इस योजना के अन्तर्गत अपने रहवास वाले गाँव से अन्य स्थान पर राजकीय विद्यालयों में कक्षा 9 व 10 में अध्ययनरत छात्राएँ साइकिल वितरण से लाभान्वित। वर्ष 2012-13 से राजकीय विद्यालयों में कक्षा 9 में प्रवेश लेने वाली सभी छात्राओं को साइकिल वितरित की

जाएगी। वर्ष 2011-12 में 1,41,444 बालिकाओं एवं वर्ष 2012-13 में 86,893 बालिकाओं को साइकिल वितरित की गई। इस वर्ष 5 लाख बालिकाओं को साइकिल वितरण का कार्यक्रम।

भारत सरकार ने वर्मा समिति की सिफारिशों को संज्ञान में लेते हुए भारतीय दण्ड संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, आपराधिक प्रक्रिया संहिता में संशोधन हेतु 3 फरवरी, 2013 को एक अध्यादेश जारी कर दिया। इस अध्यादेश में लड़कियों/महिलाओं पर तेजाब फेंकने, यौन उत्पीड़न, दृश्यपरिवृत्ता, (घूरने), लुक-छिप कर पीछा करने, को अपराध की श्रेणी में रखने के लिए भारतीय दण्ड संहिता धारा 354 सी को जोड़ा है। धारा 354 ए को जोड़कर यौन उत्पीड़न के लिए एक से पाँच वर्ष की सजा का प्रावधान है। बुरी नजर से घूरने पर एक वर्ष से सात वर्ष की सजा का प्रावधान किया गया है। तेजाब फेंकने के मामले में धारा 326 ए जोड़कर कम से कम दस वर्ष तथा अधिकतम आजीवन कारावास तथा दस लाख रुपए तक के अर्थदण्ड का प्रावधान किया गया है। धारा 326 बी के तहत तेजाब फेंकने के प्रयास पर भी पाँच से दस वर्ष तक के कारावास की सजा का प्रावधान है। महिलाओं को सार्वजनिक रूप से वस्त्रहीन करने पर धारा 354 बी के तहत कम-से-कम 3 वर्ष तथा अधिकतम पाँच वर्ष की सजा का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त कई प्रमुख योजनाएँ जैसे बालिका समृद्धि योजना, जननी सुरक्षा योजना, समेकित बाल विकास सेवा योजना, बिल योजना, किशोरी शक्ति योजना राष्ट्रीय पोषाहार मिशन, जीवन भारती महिला सुरक्षा योजना, वंदेमातरम योजना केन्द्र सरकार द्वारा शुरू की गई है।

अतीत के झंझावत में हो या देवासुर संग्राम में या फिर स्वतंत्रता प्राप्ति की लड़ाई में, महिलाओं ने अतुलित शौर्य, अदम्य साहस, त्याग व बलिदान का परिचय दिया। परन्तु मध्यकालीन सल्तनतकालीन व मुगलिया संस्कृति के प्रभाव (प्रदूषण) ने नारी को मनुस्मृति के 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' के स्थान से पतित कर भोग लिप्सा की सामग्री बना लिया। नारी की अस्मत् व सतीत्व रक्षा हेतु कुछ ऐसे नियम उपबंध लगाये कि नारी को शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, शैक्षिक इत्यादि दृष्टि से पंगु व अबला बना दिया। नारी (घर में) पुरुषरूपी खूँटे से ऐसी बंधी कि वह वंशवृद्धि की निमित्त, पति परमेश्वरा और चाहरदिवारी में चूल्हे-चक्की तक सिमट गयी। परन्तु बदलते सामाजिक परिवेश ने नारी की उपयोगिता को पुनः सिद्ध कर यह सोचने पर विवश किया कि नारी मुक्ति में ही पुरुष व समस्त विश्व का कल्याण है। यही सोचकर इस दिशा में विभिन्न प्रावधान व प्रयास किये गये।

भारत में यह भयावह सत्य है कि महिला सशक्तिकरण के प्रयासों, सवैधानिक प्रावधान व अनेक अधिनियमों के बावजूद नारी वर्ग को अपेक्षित लाभ नहीं मिले और वह पुरुष प्रधान समाज में आज भी दयनीय अवस्था में जी रही है। दहेज रूपी दानव, कन्या भ्रूण हत्याएँ इत्यादि महिलाओं को अपना शिकार बना रहे हैं। राजनीतिक दलों व संसद में उपेक्षतापूर्ण व्यवहार, अशिक्षा का

चक्रव्यूह, नारी उत्पीड़न, महिलाओं का सर्वांगीण शोषण महिला सशक्तिकरण की दिशा में बाधा उत्पन्न कर रहा है।

“नारी ने जन्म दिया नर को, नर ने उसे बाजार दिया।

जब चाहा कुचला और मसला, जब चाहा दुत्कार दिया।”

उपरोक्त समस्याओं के समाधान के लिए शिक्षा को बढ़ावा, पुरुष प्रधान मानसिकता में कमी, राजनीतिक प्रतिनिधित्व में वृद्धि, पाश्चात्य अश्लीलता (उत्तेजक रहन-सहन) का अधानुकरण बंद करना चाहिए। यह सर्वविदित है कि आरक्षण से लाभार्थियों का सामुदायिक विकास तो हुआ, लेकिन ये समृद्धि के टापू एक वर्ग विशेष तक ही सीमित है। आरक्षण से महिला सशक्तिकरण की अवधारणा आकर्षक जरूर लगती है किंतु यह स्त्री समुदाय की सामाजिक-आर्थिक में गुणात्मक परिवर्तन का प्रमाण-पत्र नहीं हो सकता। अतः आरक्षण को समस्या के समाधान का हथियार के रूप में लेने के बजाय स्त्री को मुख्यधारा में लाना अपेक्षित है। आवश्यकता इस बात की है कि स्त्री उस मुखौटे को उतार फेंके जो उसकी इच्छा विरुद्ध पहनाया गया है तभी सशक्तिकरण वास्तविक अर्थों में दिखेगा और भारत सच्चे अर्थों में सोने की चिड़िया अर्थात् विकसित देश बन सकेगा। स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था, “स्त्रियों की व्यवस्था में सुधार लाए बिना विश्व कल्याण असम्भव है, जैसे एक पंख से उड़ना भरना।”

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. सिंह, सविता ; 2008 “नारी शक्ति का प्रतीक”, गाँधी स्मृति एवं दर्शन स्मृति।
2. राठौड़, शशीकान्त कुमार ; 2005 महिला सशक्तिकरण, सेमीनार पुस्तिका।
3. भारत का संविधान: सैन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद
4. नारी व्यवस्था: मनुस्मृति
5. प्रतियोगिता दर्पण: मई, 2013
6. यू.एन. विमेन रिपोर्ट: 2012

## Food Security and The Food Democracy in India: A Socio Legal Analysis

**Dr. Sonia Dutt Sharma**

Assistant Professor

School of Law, NIMS University, Jaipur

Shodh Shree



shodhshree@gmail.com

India is the land of Rich Culture and Heritage, which shows of its Geographical diversities different languages, colorful Attires, and delicious food. Products we celebrates our festivals with amazing food products in all communities. According to "**Forbs Magazine**" Indians is too much foodie in the comparison of rest of world. We have World famous Indian curries, Pickles, Spices, Desserts, and many more special Items in our food Heritage. We are foodie because we can compromise in the food options. If we are hungry we can go to any street Kiosk, or any Dhabha, and we can eat whatever we got, whether it is unhygienic or non nutritious but it should be testy. If we are purchasing food products we always see the MRP of food product instead of manufacturing Date and ingredients of that product, but we shall purchase it but it should be cheap. If we are getting the adult red milk with a part of water can make it continue, but it should be within limits. If we are going for a outing we will select the food destination at reasonable price but it should be most happening, in spite of quality of Food.

So we are less aware about food safety, we are more careless about our food habits, we have no compulsion of nutrition's calorie Diets, because we are foodie. Than how can we discuss about food safety or food security. But we have to, because we are intellectual Indians also, first of all we come to food security.

**Food Security** can be described as "when all people, at all time have physical and economic access to sufficient safe and nutritious food to meet their dietary need and food preferences for an active healthy life" (World Food Summit, 1996). Food security is the idea that governments use to talk about citizens not being hungry, and it means that you have access to enough food to live healthily. Sounds like a good definition except for when we realize that it are possible to be food secure, say, in prison. We have got access after all, so we are not hungry. But food security never talks about power in the food system-just our access to food. Food sovereignty is like food security, except that under food sovereignty, communities actually get to shape their own food policy and shape the terms under which everyone gets to eat.

**Legal Frame work for food security in India and Abroad - Sir Alan Burns** chairperson of Scotland food & Drink Industry, said that UK has the significance in food products due to their national food Policy. They are following the regulations of legal guide lines like, the schools (**Health Promotion and Nutrition Act, and laws of Eco schools of Scotland**) **Professor Tim Long** - Senior Prof. of Food policy London expressed their views that the food safety and food policies are integrating health, environment and society. These following words can explain this term easily, that "what had thought of as an abundant food supply is anything

but, Western Societies in particular have tended to take their food supply for granted and the Government's need to do more to understand the potential impact of this challenging agenda."

Achieving global food security while meeting targets for reducing greenhouse gas emissions will require a balance to be struck to achieve high productivity with a low carbon footprint. Western countries are able to produce quality food particularly livestock products from grass and heather, has an important part to play in meeting that challenge.

In India we have so many laws like Sec. 272-276, **Indian Penal code-1860, Food Adulteration and Prohibition Act-1954**, and recent, **the food safety and standards Act-2006**, relating to food safety or security. And all these laws are protected by Supreme of Legislation, the constitution of India, with Article-21, 39 (e), 41, 43, and 48-A with fundamental Human Rights as laid down in U.N. Covenants on Human Rights in the year of 2011, Indian Parliament made Some standard Rules related to the food safety Act-2006.

**Food Poverty And in Equal Food Distribution in India** The food security problem in India is currently one of access, as a sizable share of the population lacks economic and physical access to sufficient food. Results from the ERS food security model indicate that roughly 20 percent of the populations are estimated to be food insecure in Last decade. Consumption for this segment of the population is estimated to fall 10 percent below the nutritional requirement of 2,100 calories per day. Lack of infrastructure and the relative isolation of the poor have limited the physical flow of food to deficit areas. Interstate flows tend to favor urban areas where food grain markets are better integrated, while the poor tend to be landless rural house-holds and small farmers, who are thus net consumers of food. Poverty, which limits economic access to food, continues to be a serious problem.

Prices can have a significant effect on access, as the poor spend roughly 80% of their income on food. Although poverty fall, primarily as a consequence of income growth, improvements in food security could have been greater if prices of staple foods and maintained their historical down ward trend. Food security is influenced by availability of food and access to food.

An examination of food availability and access in India reveals a fundamental contradiction in India's food policy Indian policy makers, operating through the **Food Corporation of India (FCI)**, are pursuing conflicting objectives of attempting to provide low-

priced food for consumers while increasing the support prices paid to farmers. The most important food crops are rice and wheat, which together account for roughly 80% of grain production. India has one of the largest public agricultural research and extensions complexes in the world. Despite the large investment in public research and extension, the quality of agricultural research in the public system has weakened, while the agricultural extension system has virtually collapsed in the last two decades.

But according to **Dr. Anupam Dixit**. There is a fake production of food crops in a huge number, especially in Basmati Rice. So many retailers are selling the fake Beans, spices and Rice or adulterated food products in the shadow of attractive selling offers. The Smart farmers are growing cloned Basmati Rice with mixing of DNA and these evolved Basmati has 20% less Aroma and deliciousness then traditional Basmati. There are around 1000 varieties of Rice but only 100 are Pure, aromatic and genuine, and Basmati Rice has the charges of approx 1000 US Dollars for per quintal.

Now we have to aware about food safety and security. So we have taken some important movements for **food Democracy**:

- 1 Explore the evidence around food poverty in different income groups and areas (both urban and rural) looking in more detail at what activities are already being done and developing an action plan for supporting and promoting successful future approaches.
- 2 Support vulnerable groups, including those living in rural areas and the elderly living in the community by evaluating the evidence and potential actions around access to affordable healthy food.
- 3 Work in partnership with the retailers' forum to examine issues and actions relating to access and afford ability of healthy and sustainable foods.
- 4 Build on research being carried out by National Health survey and work by the Food Safety Agencies on food access and affordability and develop options on further initiatives to improve the buying power of convenience stores of good quality fresh fruit and vegetables.
- 5 Continue to support the Healthy Living Programme which seeks to improve the availability of healthier food options to communities through the convenience store sector.
- 6 Extend entitlement to free school lunches to

more families in need.

- 7 Increase the uptake of healthy start scheme vouchers for pregnant women and children under 6 to purchase fruit and vegetables and look to extend the range of produce that can be purchased with the vouchers.
- 8 Identify how community food groups and social enterprises can be supported to deliver a long-term strategic programme for a stronger community food and health sector.
- 9 Ensure that allotments and 'grow your own' projects are strategically supported.
- 10 Produce practical advice and best practice guidance that will appeal to public bodies, communities and individuals to help them develop local 'grow your own' initiatives.

#### **Some Steps to Strengthen Food Security in India:**

- 1 Ensure the right evidence and policy relating to food security on a national and global level. This includes incorporating the findings of Rural Land Use Study in future work relating to food security.
- 2 Maintaining the capacity and skills to produce food and supporting food production as the heart of farming and land management.
- 3 Build food security into the delivery of farming, fishing and aquaculture policies.
- 4 Support the appropriate legal framework to ensure food and drink producers, processors retailers and consumers are treated fairly
- 5 Evaluate the access to and affordability of healthy sustainable food where this impacts on national food security.
- 6 Drive forward the Government's initiative to bring together food Ministers for all administrations to discuss food sustainability to ensure an appropriate sharing of knowledge and best practice.
- 7 Continue in campaign to be a Fair Trade nation, and encourage more Local Authorities businesses, schools, colleges and universities to get involved.
- 8 Continue to fund research in National that will help meet the challenges of food security in the country and the rest of world.

#### **Conclusion**

A significant imbalance arises as Indian policy makers operating through the F.C.I., Pursue conflicting objectives of providing Low Price food

for the welfare of Poor who are net consumer and that of producers can deliver strong improvements in food security. Under a fairly realistic assumption of 3-percent growth in per capita income, augmented by small, sustained reduction in the prices of food staples, the number of undernourished in India could fall 70 percent by 2025.

And in the positive conclusion we can say that Indian Food culture is so rich that we can explore it in the face of Food Tourism. We are exporting food products but we can import Foreign currency with Safe, secure food policy related to Food Tourisms it can be a new sign of our development in all aspects of economy, Agriculture, Environment and Public Health.

#### **References:**

1. Ahluwalia, D. "Public Distribution of food in India, coverage, Targeting and Leakages," food policy, Vol. 18 No. 2, PP.33-54, 1993.
2. Government of India, Economic Survey, 2001-02, 2011-2012.
3. Government of India, Planning Commission, Draft Approach Paper to the tenth Five Yr. Plan (2002-2007)
4. Srinivasan, T.N.: "Poverty and under nutrition in South Asia" food policy, Vol. 25, PP-269-282, 2000.
5. World Bank, The irrigation Sector, South Asia-Rural Development Series, 1999.
6. Prof. Long Tim: Food policy of London. Food Policy of Scotland - Recipe for success.

## Registered Trade Unions and Trade Union Law

Neeraj Kumar Meena

Research Scholar, Jaipur National University, Jaipur

Shodh Shree



shodhshree@gmail.com

The problem of evolving satisfactory industrial relations in India is fundamentally a problem of developing an efficient and comprehensive system of collective bargaining, which is the professed ideal of the State labor policy. The present position is however, far from satisfactory. As things stand today, it seems that there has been a lack of earnestness on the part of all concerned towards making sustained and sincere efforts to achieve the avowed objective. The present situation can well be described as one in which all the parties, though apparently prophesying faith in collective bargaining are not giving it a real trial. Each one of them has certain reservations. Collective bargaining cannot progress and prosper in such a climate.

We talk about the need of transforming the industrial relations system on new concepts, economic, social and political, but hardly channelise our energies towards action-oriented efforts to give the ideas a fair trial and to evolve a system of research and evaluation in the field of human relation. Introduction of collective mode of settling or preventing industrial disputes can never be treated as an entity in isolation, totally different from the principle of social change and human and institutional behavior. It would be rather an over statement coupled with excessive enthusiasm to say that the abolition of compulsory adjudication would automatically develop the system of collective bargaining.

Success of collective bargaining depends upon several factor like strong, stable, independent trade unions, development of bargaining strength by labour, legal infra-structure supporting and encouraging collective bargaining process and lastly the attitude and willingness on the part of employers and employees to arrive at a mutually acceptable agreement in an amicable atmosphere. Unfortunately these requisites are, in a large measure, absent in industrial relations in India, today.

In a spite of legal and social importance, Indian trade unionism continues to suffer from a number of inherent infirmities like multiplicity of unions, inter and intra-union rivalry, fragmentary unionism, outsiders, dominance and control etc. These evils retard its development as a strong trade movement. But these inherent weaknesses in our trade union movement have been allowed to continue by the passive attitude of the law makers who have done little more than paying lip service to develop the trade unions on healthy lines order to make them self- reliant and self-supporting.

The present state of trade union law in India, is exceedingly obscure, inadequate, unrealistic and out of date. It cannot meet the present day requirements. The growth of trade union in India since 1926 is so rapid that there are multifarious problems

facing the labour and management, which the existing law never contemplated. Earlier hostility towards the trades unions, both from the government and the employers, has gradually yielded place to the realistic recognition of the importance of trade union movement of the welfare of labour and amicable labour management relations. It can well be questioned as to why provisions contained in this act did not undergo changes with the change of social and economic concepts. The reasons for this slackness and apathy seems to be more political than anything else.

The trade unions act, 1926 is not a comprehensive law as it does not provide for recognition of unions, unfair labour practices, protection of trade union from infiltration of outsiders, representative elections, rights and liabilities of the trade union members interest. Inadequacies legal provisions have created confusion and chaotic condition, both for labour and employer and for labour courts. Even if an enlightened employer takes initiative to initiate process of collective bargaining to settle disputes relating to conditions of their employments, he would be faced with rival unions with claims and counter claim for accord of privilege to be the sole bargaining agent, he is also not sure whether his efforts with a particular union can disturb the collective agreement with impunity by raising a dispute and taking up the matter to a tribunal. Moreover, certain liberal provision of law relating to registration procedure have been observed to the detriment of trade union movement as it is easy for unscrupulous and, self-interested politicians to form unions for their political interests such a situation calls for radical legal reform for creating condition in which collective bargaining can grow strong and responsible trade unions can emerge.

The only way to develop healthy and strong trade unionism is that trade unions should be of the workers, by the workers, and for the workers. Therefore if trade unionism is to grow the exploitation by the outsider must end and trade union movement must through up it own leadership out of the dedicated individuals who should act, in the words of **Lord Chancellor hail sham** "like yeast among the relatively apathetic multitude," if the trade union movement manages to throw up enough such people, it will emerge as a powerful force in the industrial development of country.

**In Indian Bank v. Federation of Bank Employers Union :** As the movement gain strength, it could assume a leadership role and would draw the inert

mass of workmen in the development process. The trade union movement in the United Kingdom has accepted its new responsibilities. As a result of experience and with the passage of time, the vision of trade unions has become clear and they are learning to abandon the militant method of damaging production and are realizing that hard work and higher productivity are the best ways of increasing the economic well-being of their members. This approach has given the unions an authoritative voice. This modal worthy of emulation by the trade unions on these lines would contribute toward the evolution of a well thought out and well structured pragmatic approach to industrial relations infusing greater rationality in the employers towards their social obligations and in the worker sense of duty to put in an honest day's work.

Mr. V.V. Giri (former president of India) vehemently remarked "... in any case a stage has now reached in the development of trade unions when the advantages accruing to them by the advice and assistance of outsiders are more than out weighted by the disservice rendered to trade unions by professional agitators. It is, therefore, desirable that all right thinking trade unions should realize that the time has come when a reorientations of the policy is desirable by a switch over to the working class leadership" These remarks indicate the depth of his feelings unfortunately, no tangible headway appears to have been made so far.

Unless law tackles effectively the various chronic ailments weakening the present trade union movement, the continuous disruption of industrial peace will become a reality which, in turn may cause serious damage to our economic structure. The salvation from present state of unrest lies only in making the workman self-reliant, and responsive to the community. Apart from the basic education, they should have proper background of trade union method and trade union philosophy. To achieve all this, the very infra- structure of the present law relating to industrial relations should be metamorphosed.

**In Dr. P.H. Daniel v. Krishan Iyer :** The law should be re-structured and restated to provide for a uniform industrial code primitive of the trade unions at the grass roots and accentuate the collective bargaining as the main plank supplemented by voluntary arbitration as the settlement method.

In this connection the national commission on labour has also stressed that:

"The requirements of national policy make it

imperative that state regulation will have to co-exist with collective bargaining. At the same time, there are dangers in maintaining status quo there is a case for shift will have to be in the direction an increasingly greater scope for and reliance on collective bargaining but, any sudden change replacing adjudication by a system of collective bargaining would neither be called for nor of practicable. The process has to be gradual. A beginning has to make in move toward collective bargaining by declaring that it will acquire primacy in the procedures for settling industrial disputes.

Unfortunately the recommendations of the commission, to strengthen trade union movement the promote collective bargaining, could not receive the attention of the government. This tends show the lack of conviction to translate this into action.

To achieve the goal of collective bargaining through sound trade unions though difficult in present circumstances in the country but not impossible if earnest efforts are made by all concerned on the legal plane the existing trade union law needs improvement in various directions with a view to make it. The following important suggestions are, therefore, made for considerations.

1. Registration under trade unions Act, 1926 is not compulsory has led to mushroom growth of trade unions injuring the trade union movement. Therefore, registration should be made compulsory. This will improve both, the quality and the quantity membership of trade union. Compulsory registration is also essential in the interest of the members of trade union those selves to safeguard against fraud, embezzlement or deceptive practices upon members by inscriptions means.
2. Recognition of trade union should be made compulsory under a central law. One of the important prerequisite for recognition should be that out of the total number of workers employed in a unit at least 50% Should be members of the trade union claiming recognition .One union one industry concept will thus really materialize. If we keep this percentage low, say 30% as proposed by national commission on labour that would mean perpetuating the existing evil of multi-unions, in the field.
3. The existing provision of trade unions Act need to be amended to provide for outright ban on the entry of non-workers holding posts in the executive of the unions. This would be a long way in developing internal leadership. Besides,

the law should prohibit the (worker) union office bearer to hold office in any political party so that no indiscreet attempt is made to pollute the trade union by infiltration of political influence or ideological concepts.

The fear expressed in some quarters that abrupt or sudden change in this direction might give a set back to the trade union movement or create a vacuum are ill founded and without adequate justification. Today the average Indian worker has better access to information, perhaps is educated and is quite capable of understanding his economic interest. The workers are now conscious enough to organize and manage their own affairs.

4. To reduce multiplicity of unions the minimum number required for starting new unions should be as recommended by national commission on labour, to 10% of the total strength of a plant or 100, whichever is less. Initial membership required for registration should be satisfied by a union to continue its registration. Not only this, law should also provide for cancellation of registration of a trade union resorting to unfair practices but an application for re-registration should not be entertained within 6 months of the cancellation of registration.
5. The determination of representative character should be by means of a secret ballot in which all the workers of a particular enterprise may have the right to participate. It may be feared that electioneering may introduce politics and the plant level, but politics s already there and the eliminating outsiders all together would remedy the situation and bring into light the real democratic process to assertion the view of workers on such vital issue the power of determination of bargaining character should be given to some independent body such a national/ state industrial relations commissions as proposed by national commission on labour. Such as
  - (i) Determining the level of recognition whether plant, industry, center-come-industry to decide the majority union
  - (ii) Certifying the majority union as a recognized union for collective bargaining
  - (iii) Generally dealing with order related issues.
6. Once the bargaining as been elected, the employer should be ob legged to bargain with it with regard to the collective demands of the workers. There should be an obligation on the

part of the employer to bargain in good faith with the bargaining agent in cases of failure on the part of the employer to bargain in good faith, the aggrieved party should be able to approach the body like industrial Relations commission as proposed by National commission should have effective powers to compel the recalcitrant employer to bargain in good faith with the bargaining agent.

7. The recognized union should be statutorily given certain exclusive rights & facilities like
  - (i) Sole representation of the workers
  - (ii) Entering into collective agreement on terms of employment & conditions of service
  - (iii) Right of check-off
  - (iv) To nominate its members on works /grievances committees & other bipartite committees.
8. Unrecognized unions should have no locus standing industrial relations. The minority unions should be allowed only the right to represent cases of dismissal & discharge of their member before the labour courts.
9. The law should therefore, clearly specify what constitutes unfair labour practice on the part of the employer as well as on the part of the trade union, leaving no room for doubt or misgivings. Power should be conferred on labour practices & to impose suitable punishment/penalties including de-recognition & deregistration of unions. Simultaneously, suitable provisions in the Industrial Disputes Act, 1947 should also be made to the effect that strike launched by workers due to unfair labour practices on the part of employer would be regarded as justifiable. Likewise lockout declared by the employer on account of workers, unfair labour practices should be treated as justifiable.
10. To seek redress of grievances the workers have taken recourse to new strategies like 'dharma' 'gherao' sit-in-strike, go slow tactics, while at work, the law should denounce such practices & specifically enumerate the situations which constitutes unfair labour practices.
11. In order to encourage sound unionism, the exact part to be played by trade unions in relation to labour disputes, their functions of power, rights & obligations should be specifically incorporated in the Trade unions Act itself. The existing law does not provide for the protection of the trade union members against arbitrary refusal to make a worker to be the member of a trade union. Hence, the law should be amended

to give this proposition a statutory sanction.

12. At present there is no prescribed machinery for settlement of disputes between rival unions or the members of trade unions interest. Necessarily trade unionism suffers a great loss on this count. Some simple machinery should therefore be provided in the Trade unions Act whereby disputes are to be settled between rival unions in the same establishment or between rival factions claiming under the same registration.
13. Financial resources of a trade union have a direct bearing on their power to bargain with the employer .At present such resources of trade unions are grossly inadequate. The workers should, therefore, be prepared to undergo more sacrifices to make their organization financially strong. The legal provision for subscription of 25 paise per month, being inadequate & inappropriate in the present context; minimum amended so as to increase this to Re.1/-p.m. as recommended by National commission on labour. Member's dues can be collected through check off system & such deduction should be made permissible under the payment of wages Act, 1936.
14. The workers representatives in the joint council will be nominated by the recognized union. All the decisions will be made by consensus & not by vote. Creation of legal infrastructure on the lines suggested above would go a long way in improving the present short-comings which adversely affect the present trade union movement & consequently the healthy growth of collective bargaining in our country.

However, the success of the proposed legislation would depend largely on the attitude of both the parties. Employer & worker must have the sense to abide by their commitments under collective bargaining, however, disadvantageous it is. This is a factor that demands a genuine interest in worker's education programmer. The worker's education & their training in labour management would create in them awareness of their rights & role as an important partner in the economic and social development of the country. They would become more responsible in their attitude & develop compromising spirits.

**In West India Steel Company Ltd. v. Azeer :** The employers also have to accept that these unions have come to stay & will play an important & vital role not only in up lifting working & living conditions of their

members but also in maintaining industrial peace & upgrading the efficiency & outputs of industrial production in the larger interest of industry & community as a whole. They have to realize that permanent industrial peace is possible & can be built up only on an edifice of collective bargaining & that a united & strong trade union is the best guarantee for industrial peace & industrial productivity.

### **Conclusion**

In the final analysis, however, the attainment of peaceful industrial relations does not rest only with legislation. Labour management relations are human relations. Therefore, any problem arising out of these relationship can at best be solved by the parties themselves. There is no problem on earth which can't be solved if the parties are willing to solve it & the Gandhian way to solve it, the best way in the world-is 'To know, to understand, to will, To dare, To think, To love.

### **References :**

1. Labour Law Journal

2. Indian Labour year book 1985
3. Report of the National commission on labour (1969)
4. The National Labour Relations Board; Third Annual Report (1938)
5. Labour Bureau Government of (2004a) pocket book of labour statistics year 2003 & 2004
6. Labour Bureau Government of Indian (2004b), labour statistics.
7. International Labour Office (2003), statistics of trade Union Membership.
8. The Australian Bulletin of Labour Vol – 28
9. The Child Labour (Prohibition and Regulation) Act -1986
10. The Bonded Labour System (Abolition) Act - 1978
11. The Commissions for protection of Child Rights Act - 2005
12. National Child Labour Policy : 1987

## Depictions of Minors Engaged in Sexually Explicit Conduct: Cyber Threat to Childhood

Dr. Jyoti Kumawat

Jaipur

Shodh Shree



shodhshree@gmail.com

Recently on a petition, Supreme Court of India asked the Department of Telecommunication (DoT) to take immediate steps to block websites with pornographic content, especially those featuring children. Honorable Court lay down that these sites were one of the major causes behind crimes against women.

Depictions of a sex and its nature are older than civilization as depictions such as the venus figurines and rock art have existed since prehistoric times. The pornography is not a new issue, the concept of pornography as understood today did not exist until the Victorian era. In French Impressionism painting by Édouard Manet titled Olympia was in great controversial as it was a nude picture of a French courtesan, literally a "prostitute picture". However pornography was disputed at that time.

The first novel which was banned in history was Fanny Hill (1748) which is considered "the first original English prose pornography, and the first pornography to use the form of the novel." It is an erotic novel by John Cleland first published in England as Memoirs of a Woman of Pleasure. It is one of the most prosecuted and banned books in history. The authors were charged with "corrupting the King's subjects."

It was the first time in England when the law relating to pornography was made crime. The Obscene Publications Act 1857 enacted for the United Kingdom and Ireland, in this law, the sale of obscene material a statutory offence, giving the courts power to seize and destroy offending material.

The production of Pornographic film through motion picture was started in 1895. Two of the earliest pioneers were Eugène Pirou and Albert Kirchner. Kirchner directed the earliest surviving pornographic film for Pirou under the trade name "Léar". These French films showing women disrobing and other filmmakers realized profits could be made from such films. Distribution of such films was strictly private and liable to prosecution. However, these continued to be banned in other countries, and had to be smuggled in, where it was sold "under the counter". These films were also were shown in private cinema clubs to members only.

With advent of technology and modernization depiction of emotions and ideas become mare easy and distributable which also led to pornography or sexual emotions on visual media. To describe pornography it is explicit portrayal of sexual subject matter for the purpose of sexual arousal. Pornography may use a variety of media, including books, magazines, postcards, photos, sculpture, drawing, painting, animation, sound recording, film, video, and video games. It is often distinguished from erotica, which consists of the portrayal of sexuality with high-art aspirations, focusing also on feelings and emotions, while pornography

involves the depiction of acts in a sensational manner, with the entire focus on the physical act, so as to arouse quick intense reactions.

Censorship over pornography has treated it as obscene. With the emergence of social attitudes more tolerant of sexuality and more specific legal definitions of obscenity, an industry for the production and consumption of pornography arose in the latter half of the 20th century.

Even with the legal control, internet at home has given a boom in worldwide porn. The situations become worse when the pornography inclined towards minors.

Pornography among children is the most heinous crime it not only led to sexual abuse of the child but also led to various other crimes such as sex tourism, etc. The development of child pornography is fuelled by mainly two factors, the availability of home movies, videos, digital cameras, computers and software, which made the making of child pornography relatively cheap. The development of Internet technology and high technology mobile phones which has increased ease of production and distribution of such material to an great extents. There has been gross failure regarding the stoppage of minor pornography as there is always difference of legally sanctioned age of minor relating to porn acts in various countries. But worldwide we have strict law and regulations. There are certain international treaties on child pornography which not only treat it as offence but provide severe punishments.

#### **Indian Law on Child sexually explicit conduct (Pornography)**

The Constitution of India guarantees all children certain rights, which have been especially embedded for them. Articles 21(a) provide right to free and compulsory elementary education for all children in the 6 to 14 year age group. Article 24 lays down the Right to be protected from any hazardous employment till the age of 14 years. Whereas article 39 (e) provides the right to be protected from being abused and forced by economic necessity to enter occupations unsuited to their age or strength.

The Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012, has enacted to strengthen the legal provisions for the protection of children from sexual abuse and exploitation. This is a special law since Indian penal code does not provide for all types of sexual offences against children and, more importantly, does not distinguish between adult and child victims. The Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012 defines a child as any person below the age of 18 years and provides protection to all children under the age of 18 years

from the offences of sexual assault, sexual harassment and pornography. These offences have been clearly defined for the first time in law.

The Act provides for stringent punishments, which have been graded as per the gravity of the offence. The punishments range from simple to rigorous imprisonment of varying periods. There is also provision for fine, which is to be decided by the Court. An offence is treated as "aggravated" when committed by a person in a position of trust or authority of child such as a member of security forces, police officer, public servant, etc.

Punishments for Offences covered in the Act are: Use of Child for Pornographic Purposes, Five years and fine and in the event of subsequent conviction, seven years and fine.

The Immoral Traffic (Prevention) Act, 1956 covers both the sexes exploited sexually for commercial purposes and provided, inter alia, enhanced penalties for offences involving children and minors. It continued to prohibit prostitution in its commercialized form without rendering prostitution per se an offence. This Act prescribes stringent action against those inducing children (below 16 years) and minors (16 to 18 years) in the offence of procuring, inducing or taking a person for the sake of prostitution. If the offence has been committed against a child, the punishment is rigorous imprisonment for a term of not less than 7 years, which may extend to life. If the victim is a minor, the punishment is from 7 to 14 years.

The Juvenile Justice Act, 1986 has elaborate provisions for the care, protection, treatment, education, vocational training, development and rehabilitation of children rescued from those procuring, inducing or taking persons for the sake of prostitution and detaining persons in premises where prostitution is carried on.

The Information Technology Act 2000 provides protection from child pornography. Section 67 lays down, Whoever publishes or transmits or causes to be published in the electronic form, any material which is lascivious or appeals to the prurient interest or if its effect is such as to tend to deprave and corrupt persons who are likely, having regard to all relevant circumstances, to read, see or hear the matter contained or embodied in it, shall be punished on first conviction with imprisonment of either description for a term which may extend to two three years and with fine which may extend to five lakh rupees and in the event of a second or subsequent conviction with imprisonment of either description for a term which may extend to five years and also with fine which may extend to ten lakh rupees.

Punishment for publishing or transmitting of material containing sexually explicit conduct in electronic form which runs as "Whoever publishes or transmits or causes to be published or transmitted in the electronic form any material which contains sexually explicit act or conduct shall be punished on first conviction with imprisonment of either description for a term which may extend to five years and with fine which may extend to ten lakh rupees and in the event of second or subsequent conviction with imprisonment of either description for a term which may extend to seven years and also with fine which may extend to ten lakh rupees". Section 67 does not extend to any book, pamphlet, paper, writing, drawing, painting, representation or figure in electronic form-

- (i) The publication of which is proved to be justified as being for the public good on the ground that such book, pamphlet, paper, writing, drawing, painting, representation or figure is in the interest of science, literature, art, or learning or other objects of general concern; or
- (ii) Which is kept or used bona fide for religious purposes.

Punishment for publishing or transmitting of material depicting children in sexually explicit act, etc. in electronic form: Whoever,-

- (a) Publishes or transmits or causes to be published or transmitted material in any electronic form which depicts children engaged in sexually explicit act or conduct or
- (b) Creates text or digital images, collects, seeks, browses, downloads, advertises, promotes, exchanges or distributes material in any electronic form depicting children in obscene or indecent or sexually explicit manner or
- (c) Cultivates, entices or induces children to online relationship with one or more children or and on sexually explicit act or in a manner that may offend a reasonable adult on the computer resource or
- (d) Facilitates abusing children online or
- (e) Records in any electronic form own abuse or that of others pertaining to sexually explicit act with children, shall be punished on first conviction with imprisonment of either description for a term which may extend to five years and with a fine which may extend to ten lakh rupees and in the event of second or subsequent conviction with imprisonment of either description for a term which may extend to seven years and also with fine which may extend to ten lakh rupees: Provided that the provisions of section 67(a) does not extend to any book, pamphlet, paper,

writing, drawing, painting, representation or figure in electronic form- (i) The publication of which is proved to be justified as being for the public good on the ground that such book, pamphlet, paper writing, drawing, painting, representation or figure is in the interest of science, literature, art or learning or other objects of general concern; or (ii) which is kept or used for bona fide heritage or religious purposes.

#### **Punishment in Indian Penal Code, 1860**

Section 293 specifies in clear terms the law against sale etc. of obscene objects to minors. As per the IPC, whosoever sells, lets to hire, distributes, exhibits or circulates to any person under the age of twenty years any such obscene object, as is referred to in IPC Section 292, or offers or attempts so to do, shall be punished with imprisonment for a term which may extend to three years, and which fine which may extend to two thousand rupees, and, in the event of a second or subsequent conviction, with imprisonment of either description for a term which may extend to seven years, and also with fine which may extend to five thousand rupees. The Supreme Court of India in *Ranjit D Udeshi v. State of Maharashtra*, banning the unexpurgated version of *Lady Chatterley's Lover*, as it was held 'obscene' under section 292 IPC. Court observed that it have tendency to "deprave and corrupt by immoral influences" Speaking on right to speech and expression also court laid down that state may impose reasonable restrictions on the freedom of speech and expression of citizens in the interests of "public... decency and morality".

Indeed Indian law on child pornography edifices strict penal provisions for restricting any person from distributing and making available of such obscene material to others. Even porn material is freely available on internet on demand for watching. Private viewing such sites are legal. At prime level there is the constitutional guarantee to free speech under article 19 which encourages people to enjoy this freedom. Secondly simple viewing an obscene object is not an offence," said the court. "It becomes an offence only when someone has in possession such objects for the purpose of sale, hire, distribution, public exhibition or putting it into circulation. In the shadow of privacy Porn cites are freely viewed. The only method is to ban such sites on internet only. But it is technically difficult to take down or block porn online, especially on the international websites. The best one of the ways to block porn is by removing the content from the web.

### **Problem in banning obscene sites**

In fact there are number of sites that operate outside India, therefore it is impossible for the Indian government to take any action against such site. The only feasible way is asking the ISPs to block access to particular URL (uniform resource locator or a website address). There are number of web sites which are blocked by Indian Government. The main problem which is faced is pre screening of the content over the internet. The content is very vast array of body imagery that is virtually impossible for a cipher to go through content and determine what is offending what is not. This is again an attempt to impose pre-screening of internet content.

The Internet service provider IPSs may check the URL against a list of the sites that have been blacklisted. They may set up a tracking method and make a trigger to the user who is trying to access any blacklisted website. This is also a fact that the ISPs are simply communication providers and they do not monitor, modify or select the content which is determined by the User. Hence, ISP's are unaware of the contents being viewed. A virtual private network (VPN) which is used for remote working and data protection which allows access to content that has been blocked by the ISP and doesn't leave a trail, this type of blocking is legal and is free.

### **Efforts by Google and Microsoft**

Recently Google and Microsoft made movement to prevent users from searching for child pornography online. A global professional body of engineers said it is "blunt and ineffective tool and can easily be circumvented". An Institution of Engineering and Technology (IET), in United Kingdom have claimed that over 150,000 members globally in 127 countries, are its member and steps are in the right direction, although cannot resolve the matter completely.

"The move by Internet search engines to make it harder to find child abuse images online do not go far enough to solve the problem," IET said in a statement. These sites have also by re-programming their search engines, and about 100,000 potential terms will not be able to yield which are related to child pornography, as new algorithm have been developed.

Even, IT offenders are using encryption and other technical means to hide their activities on the net, which makes Internet service providers difficult to find out such sites. The peer to peer private network is also being used to provide such material in public.

The Government of India established the Indian Computer Emergency Response Team (CERT-IN) to ensure Internet security. Its main object is to enhance

the security of India's Communications and Information Infrastructure through proactive action and effective collaboration. It also accepts and reviews requests to block access to specific websites. There is no review or appeals process as Indian ISPs have to comply with CERT-IN decisions. It is also empowered to review complaints and act as the sole authority for issuing blocking instructions to the Department of Telecommunications (DOT). Many experts on the subject had view as such executive order may violate the fundamental rights of the individual.

Today computers are deeply embedded in our daily life. Surprisingly pornography and the addiction to it is easily reaching in a epidemic form. One out of ten adults now admits to an Internet sexual addiction. There are no borders on the Internet, and actions by individual's government and international organizations can have a profound effect on the rights of the citizens around the world. The development of the Internet depends on global society striking the appropriate balance between freedom of speech and public interest considerations.

### **Suggestions**

Certainly child pornography is a sexual violence against children, it does not exist in isolation; it always occurs in conjunction with other punishable sexual acts, such as child prostitution, trafficking in human beings etc. This Child sex tourism is a violence committed abroad for profit. Adequate strategies should be made to tackle child pornography.

Sexual violence exists in both the digital and analogue world. Technological developments succeed one another and can be use to influence the phenomenon of child pornography. Child pornography is not bound by time and space where very old material can be available for a very long time to come, possibly indefinitely.

Few suggestions may be taken into consideration to rule out sexually explicit material relating to minors over internet in India.

- Establishing complaint hotlines centers for blocking such sites instantly.
- Making ISPs legally liable for distributing obscene contains.
- Preserving surfing records for further viewing.
- Stoppage of anonymous re-mailing to control distribution of such material
- User verification with mail ID or any other identification each time

- Blocking online banking via debit or credit cards on restricted material
- Social boycott of sites through media
- Establishing code of conduct in public
- Maintaining computer 'uses' records in government offices
- Deploying Sting operations/honey traps for searching private peer sites
- Strict law for punishing persons engaged in child pornography.
- Last not least developing moral values among children to abstain them from personal abuses and as victim.

**References:**

1. A Public Interest Litigation (PIL) filed in Supreme court New Delhi, Tuesday, November 19, 2013
2. <http://en.wikipedia.org/wiki/Pornography>
3. 'The Lost Civilizations of the Stone Age' Simon and Schuster, pp. 195-. ISBN 978-0-684 - 86270-5
4. <http://en.wikipedia.org/wiki/Pornography>, the free encyclopedia
5. Wagner, "Introduction", in Cleland, Fanny Hill, 1985, p. 7
6. Supra 6
7. Bottomore, Stephen; Stephen Herbert and Luke McKernan, eds. (1996)./Wikipedia
8. <http://www.wikipedia/pornography>
9. What is Erotic and What is Pornographic?". BBC.co.uk, 2004-03
10. Supra 10
11. Section 13
12. Section 14 (1)
13. Amended in 1986
14. Amended in 2008
15. Sec 67 A- Explanation: For the purposes of this section, "children" means a person who has not completed the age of 18 years.
16. Section 67 B] Information Technology Act 2000
17. Information Technology Act, 2000
18. 1965 AIR 881, 1965 SCR (1) 65
19. Bombay High Court - ruled in 2010
20. Internet service provider
21. A giant search engine
22. An American multinational corporation
23. Press Trust of India, November 20, 2013
24. Martyn Thomas, IET Chair, IT Policy Penal, UK
25. Department of Information Technology, Ministry of Communications and Information Technology, Government of India
26. Personal survey

# Role of Foreign Direct Investment in The Growth of Indian Economy

**Pavan Shrivastava**

Govt. S.M.S. P.G. College, Shivpuri, Madhya Pradesh

**Anand Kumar Mishra**

Govt. S.M.S. P.G. College, Shivpuri, Madhya Pradesh

**Shodh Shree**



shodhshree@gmail.com

National Council of Applied Economic Re-search, 2010 FDI has played an important role in the process of globalization during the past two decades. The rapid expansion of FDI by multinational enterprises (MNEs) since the mid-eighties may be attributed to significant changes in technologies, liberalization of trade and investment regimes, and deregulation and privatization of markets in many countries including developing countries like India. Fresh investments, as well as mergers and acquisitions, (M&A) play an important role in the cross-country movement of FDI While the quantity of FDI is important; equally important is the quality of FDI. The major factors that might provide growth impetus to the host economy include the extent of localization of the output of the foreign firm's plant, its export orientation, the vintage of technology used, the research and development (R&D) best suited for the host economy, employment generation, inclusion of the poor and rural population in the resulting benefits, and productivity enhancement.

## **Objectives:**

The study covers the following objectives:

1. To study the trends and pattern of flow of FDI.
2. To assess the determinants of FDI inflows.
3. To evaluate the impact of FDI on the Indian economy.
4. To know the flow of investment in India

## **Results and discussion**

FDI outflows from India: Indian companies are reaching overseas destinations to tap new markets and acquire technologies. While some of the investment has gone into green field projects, a major portion of Indian overseas investment went into acquiring companies abroad.

**TABLE: FDI INFLOWS IN INDIA FROM AUGUST 1991**

YEAR	Amount of FDI INFLOWS		
	RS IN CRORE	US\$	ANNUAL GROWTH \$ VALUE
1991-1992	375	129	-
1992-1993	1051	315	144.2
1993-1994	2041	586	85
1994-1995	4241	1314	124.2
1995-1996	7317	2144	63.2
1996-1997	10170	2821	31.6
1997-1998	13317	3557	29.1
1998-1999	10550	2462	-12.5
1999-2000	9409	2462	-30.8
2000-2001	18404	4029	87
2001-2002	29269	6130	52.1
2002-2003	24681	5035	-17.9
2003-2004	19830	4322	-14.2
2004-2005	27234	6051	40
2005-2006	39730	8661	48.1
2006-2007	103037	22826	154.7
2007-2008	137935	34362	50.5
2008-2009	159354	33613	-2.2
August 1991-March 2000	58471	15483	-
April 2000-March 2009	559474	125329	-
August 1991-March 2009	617945	140812	-

Acquisitions bring with them major benefits such as existing customers, a foothold in the destination market and the niche technologies they require. Due to the rapid growth in Indian companies' M&A activity, Indian companies are acquiring international firms in an effort to acquire new markets and maintain their growth momentum, buy cutting-edge technology, develop new product mixes, improve operating margins and efficiencies,

and take worldwide competition head-on. It has emerged as the most acquisitive nation in emerging nations, according to global consultancy in their Emerging Markets International Acquisitions Tracker. Table 2 shows that FDI outflows from India have increased consistently since 2000 at US\$18.5 billion in 2008-09, compared to only US\$1.4 billion in 2001-02.

TABLE : FDI OUTFLOW IN INDIA

YEAR	FDI OUT FLOWS US\$
2000-2001	829
2001-2002	1490
2002-2003	1892
2003-2004	2076
2004-2005	2309
2005-2006	6083
2006-2007	15810
2007-2008	21312
2008-2009	18596

One of the most important and sensitive areas for developing countries is foreign direct investment (FDI). It is now defined as not only a simple transfer of money, but as a mixture of financial and intangible assets such as technologies, managerial capabilities, marketing skills and other assets. There is a major debate in the literature regarding the impact of FDI on economic growth. The traditional argument states that an inflow of FDI improves economic growth and thereby enhances employment opportunities. Most studies have shown that FDI's social and distributional impact on the host country has been generally favorable in developing countries of various regions. Apart from bringing in a package of highly productive resources into the host economy there has been a visible positive impact on the creation of jobs not only in those sectors attracting FDI inflows but also in investment Outlook. A number of studies in the recent past have highlighted the growing attractiveness of India as an investment destination. According to Globerman et al. (1994) the Indian economy is expected to continue growing at the rate of 5 percent or more until 2050. According to the A.T. Kearney (2007), India continues to rank as the second most attractive FDI destination, between China at number one and the United States at number three. India displaced the United States in 2005 to gain the second position, which it has held since then. FDI inflows in 2006 touched \$19.6 billion and in 2007, total FDI inflame Foreign direct investment (FDI) or foreign investment refers to the net inflows of investment to acquire a lasting management interest (10 percent or more of voting

stock) in an enterprise operating in an economy other than that of the investor. It is the sum of equity capital, reinvestment of earnings, other long-term capital, and short-term capital as shown in the balance of payments. It usually involves participation in management, joint-venture, transfer of technology and expertise. There are two types of FDI: inward foreign direct investment and outward foreign direct investment, resulting in a net FDI inflow (positive or negative) and "stock of foreign direct investment", which is the cumulative number for a given period. Direct investment excludes investment through purchase of shares. FDI is one example of international factor movement. An investment abroad, usually where the company being invested in is controlled by the foreign corporation. The simplest explanation of FDI would be a direct investment by a corporation in a commercial venture in another country. A key to separating this action from involvement in other venture in foreign country is that the business enterprise operates completely outside the economy of the corporation's home country.

The effect of foreign direct investment (FDI) on labour particularly on employment and wages continue to be an important issue for labour-surplus developing economies such as India with significant levels of unemployment. Unfortunately this issue has not yet received much attention in India even though the FDI inflows into the economy has seen dramatic growth in the 1990s following the continuing process of economic reforms including liberalization of the FDI policy. As FDI is

increasingly claiming major chunk of aggregate investment in the economy the economic analysis of FDI should not be confined to its impact on output and productivity alone as the existing literature stands and must be broaden to investigate its impact on labour market. Unless the process of economic growth based on larger role of FDI meet the 'test of sufficient growth in gainful employment' over time the process of economic reforms which is continuously enlarging the role of FDI cannot be politically sustainable and bound to flat. Theoretical understandings on 'why has foreign investment got differential impact on the labour market of the host country vis-à-vis their domestic counterparts?' can be deduced from the industrial organization theory of FDI. This theory as proposed by Hymer (1960) and later extended by Kindleberger (1969) argued that foreign firms possess a bundle of intangible assets such as sophisticated product differentiation, management and organizational skill, and superior technology which provides some monopolistic advantages to these firms over the local and third country firms. The differential labour market outcome can emanate directly from the differences in the nature of technology employed by the foreign firms as compared to the domestic firms. If the foreign firms are employing relatively more capital intensive and skill biased technologies than domestic firms, then they can be expected to have lower employment elasticity of output as compared to the domestic firms with labour-intensive techniques of production. For attracting high skilled workers for their sophisticated production technology and to prevent labour turnovers they can also be expected to pay higher to the labour. In view of this foreign investment can have significant implications for the distribution of national income as it tends to benefit only a minor section of labour force, namely skilled laborer, by generating employment for them and awarding higher wages, better working conditions and security of employment? Understanding of the labour market issue of foreign investment is even more important as it involves the possibility that it can crowd out domestic investment (Fry, 1992; Marksun and Venables, 1997; Agosin and Mayer, 2000; Kumar and Pradhan, 2002) with higher employment content. Against this background the present paper seeks to make an exploratory attempt (Bhaduri 1996). The policy implication is that whatever other benefits may accrue from FDI it should not be expected to create employment opportunity in any of the three countries directly and FDI enhancement policies must be supplemented by the other measure to stimulate employment growth.

Our estimation of the impulse response shows that the growth elasticity of employment on average in the three countries is extremely low and employment enhancing policies must be priorities. Employment growth will not occur in these three countries as a spontaneous consequence of growth in GDP. As rising formal sector unemployment especially of technical and professional manpower is becoming and increasingly important problem in all three countries.

The policy implication is that whatever other benefits may accrue from FDI it should not be expected to create employment opportunity in any of the three countries directly and FDI enhancement policies must be supplemented by the other measure to stimulate employment growth. Our estimation of the impulse response shows that the growth elasticity of employment on average in the three countries is extremely low and employment enhancing policies must be priorities. Employment growth will not occur in these three countries as a spontaneous consequence of growth in GDP. As rising formal sector unemployment especially of technical and professional manpower is becoming an increasingly important problem in India. However some important limitations of the research must be noted. We didn't explicitly differentiate between direct and indirect impact of DFI growth as was done by Altzinger. W and Bellak.C (1999). Had we done so, their results might have been modified? Also it is likely that employment impact of FDI might vary from industry to industry and the overall insignificant relationship between FDI and employment growth might reflect a canceling out of positive and negative impact of FDI flows on employment in different industries. Therefore disaggregating the data at least at an ISIC 3-digit level might also identified significant relationship between manufacturing employment and FDI flows in a group of industrial branches. The policy implication is that whatever other benefits may accrue from FDI it should not be expected to create employment opportunity in any of the three countries directly and FDI enhancement policies must be supplemented by the other measure to stimulate employment growth. Our estimation of the impulse response shows that the growth elasticity of employment on average in the three countries is extremely low and employment enhancing policies must be priorities. Employment growth will not occur in these three countries as a spontaneous consequence of growth in GDP. As rising formal sector unemployment especially of technical and

professional manpower is becoming an increasingly important problem in India.

### **FDI Policy and Recent FDI Trends**

The evolution of India's FDI policy can be traced back into three distinct phases since Independence (Radhakrishnan and Pradhan 2000). From 1948-1980 Indian FDI policy became highly restrictive as a part of the import-substituting industrial policy pursued. The FDI policy during this phase was governed by three important government regulations such as the Industrial Development and Regulation Act (IDRA 1951), the Monopolies and Restrictive Trade Practices Act (MRTPA 1969) and the Foreign Exchange Regulation Act (FERA 1973). The IDRA with its elaborate industrial licensing system was sought to regulate the establishment of new industries, and expansion and diversification of existing enterprises. The MRTP Act had restricted the entry of large industrial houses including dominantly foreign owned companies in a number of industries other than 'core' industries and that requiring heavy investments. The FERA was promulgated to regulate the operation of foreign companies in India and required that all subsidiaries of foreign companies should bring down the foreign equity share to 40 percent or less. However, foreign companies operating in 'core' industries including plantations or producing predominantly for exports or bringing in sophisticated technologies were allowed to retain foreign equity holdings above the stipulated limit up to 74 percent. In short, during this period the FDI policy had restricted the entry of foreign firms into a select group of high priority industries, permitted only those new FDI proposals which were accompanied by technology transfer and limiting foreign equity participation to 40 percent with few exceptions.

However, in the 1980s India's FDI policy began to liberalize. The inward looking industrial policies followed till 1970s with rigorous pursuance of import restrictions and indiscriminate import substitutions to a wide range of sectors, excessive planning, complex system of industrial licensing, trade policy generating strong anti-export bias, absence of domestic competition, and restrictive FDI policy led to the emergence of Indian manufacturing as high-cost, poor quality and low export-oriented. This led government to implement the partial measures of liberalization, de-licensing and a host of incentives to break the stagnation in industrial sector and to promote exports. As a part of this liberalization measures government attitude to FDI became more liberal. Foreign companies were

allowed to enter into de-licensed 28 broad categories of industries and 82 bulk drugs and their formulations. The foreign companies with 100 percent export-orientation were exempted from the general ceiling of 40 percent under FERA and were exempt from licensing requirement for production in excess of licensed capacity and were provided duty-free access to imports of raw materials, intermediate goods, and capital goods on OGL. The last phase in the evolution of FDI policy covers the period 1991 onwards. Following the balance of payment (BOP) crisis in 1990-91 India had implemented full-scale economic reforms in 1991 with radical changes in government policies relating to trade, industry, technology, foreign investment, exchange-rate, and so on. The New Industrial Policy (NIP) announced on 24 July 1991 had abolished industrial licensing system for all industries except where it is required for strategic or environmental concerns. As a result 80 percent of Indian industry was out of the licensing system. Many areas hitherto closed to private sector including foreign investment have been thrown open and the phase manufacturing programme (PMP) was abolished for all new projects. The limit of foreign equity participation was raised from 40 to 51 % in a wide range of industries as listed in Annexure III of the New Industrial Policy Statement of July 1991 and the automatic approval route has been put in place. The Foreign Investment Promotion Board (FIPB) has been established to negotiate with large international firms and to expedite the clearances required. It can also consider individual cases involving foreign equity participation over 51 percent.

### **References :**

1. Agosin, MR, and Ricardo Mayer (2000). 'Foreign Investment in Developing Countries: Does it Crowd in Domestic Investment?', UNCTAD Discussion Paper, No.146, Geneva: UNCTAD.
2. Aitken, B., A. Harison and R. Lipsey (1996). 'Wages and foreign ownership: A Comparative Study of Mexico, Venezuela and the United States', *Journal of International Economics*, 40, pp. 345-371.
3. Bhaduri, A. (1996). 'Employment, Labour Market Flexibility and Economic Liberalization in India', *Indian Journal of Labour Economics*, 39 (1), pp. 13-21.
4. FERA 1973. Foreign Exchange Management Act, 1973
5. Gliberman, S., J. C. Ries and I. Vertinsky

(1994). 'The economic performance of foreign affiliates in Canada', *Canadian Journal of Economics*, XXVII(1), pp. 143-156.

6. Hymer, S. H. (1960). *The International Operations of National Firms: A Study of Direct Foreign Investment*, Ph.D. Dissertation, Massachusetts Institute of Technology. Published in 1976 Cambridge, Massachusetts: MIT Press.
7. IDRA 1951. *The Industries (Development and Regulation) Act, 1951*
8. Kindleberger, C. P. (1969). *American Business Abroad*, New Haven: Yale University Press.
9. Kumar, N. and J. P. Pradhan (2002). 'Foreign Direct Investment, Externalities and Economic Growth in Developing Countries: Some

Empirical Explorations' Background paper for Global Development Finance 2002, World Bank. Issued as RIS Discussion Paper (RISDP) #25.

10. Marksun, JR, and A. J. Venables (1997). *Foreign Direct Investment as A Catalyst For Industrial Development*, NBER Working Paper No.624, Cambridge, Mass.
11. MRTPA 1969. *Monopolistic and Restrictive Trade Practice under MRTP Act, 1969*
12. Radhakrishnan, K. G. and J.P. Pradhan (2000). 'Foreign Direct Investment in India: Policy, Trends & Determinants', *Productivity*, 41 (3), pp. 454-462.

# **A Study of Attitude and Psychological Readiness of Pupil-Teachers Regarding The Use of Mobile Technology in Teaching-Learning Process**

**Dr. Balvir Singh**

Associate Professor, Tika Ram College of Education, Sonapat (Haryana)

**Dr. Indu Rathee**

Associate Professor, Tika Ram College of Education, Sonapat (Haryana)

**Ms. Meena Kumari**

Research Scholar, Tika Ram College of Education, Sonapat (Haryana)

**Shodh Shree**



shodhshree@gmail.com

Mobile learning is becoming a part of our daily life. Adaptive mobile learning helps learners to study learning materials anytime anywhere using mobile devices. Therefore, it is the time to build guidelines for designing and implementing highly efficient usable contents and courses from mobile devices also. The widespread use of mobile technologies has led to an increasing interest in mobile learning. In the mobile environment, teachers and learners must move away from knowledge production and into a knowledge navigation paradigm in which teachers become more like tutors who help learners to select and manipulate pre-existing information. This moves education towards a truly learner centered model in which the learner defines how to proceed, based on individual needs, and that learning is highly tuned to the situation in which it takes place. Mobile learning is not intended to replace the classroom learning, just like the relationship between e-Learning and classroom instruction. In fact, mobile learning offers another way to deliver content and to embed learning into daily life. The main aim of this research study is to better understand and measure Pupil-teachers attitudes and Psychological Readiness regarding the use of mobile learning in Teaching-Learning process.

Recent development in interactive multimedia technologies which promise to facilitate "individualized" and "collaborative" learning, are blurring the distinctions between distance and traditional education. These technologies also have the capability of creating new environment for learning such as "virtual communities". Students in traditional settings are being given entire courses on CD-rom multimedia disks through which they progress at their own pace, interacting with the instructor and other students on electronic mail or face to face according to their needs (Technology Based Learning, 1994). Through international collaboration, students around the world participate in cooperative learning activities sharing information using computer networks (Riel, 1993). In such cases, global classrooms may have participants from various countries interacting with each other at a distance. As mobile devices are becoming ubiquitous, there is an increasing interest in the educational applications of mobile technologies, a research area referred to as mobile learning. Mobile learning refers to the use of mobile or wireless devices for the purpose of learning while on the move (Park, 2011). In general, mobile learning has often been viewed as learning mediated through mobile devices (Brown, 2005; Peters, 2007). Typical examples of mobile

devices include smartphones, tablets, netbooks, laptops, and personal media players. Mobile devices enable learning to take place at any time, in any location, and at a learner's pace. Klopfer and Squire (2008) describe five properties of mobile handheld devices that produce unique educational affordances: portability, social interactivity, context, sensitivity, connectivity, and individuality.

Furthermore, it has been widely recognized that context is the most distinctive feature in mobile learning (Specht, 2009; Wang, 2004, Yau et al., 2010). Context-aware mobile learning applications leverage the context information of the learner to provide personalized and motivating learning experiences. Several researchers have proposed theoretical work around mobile learning and proposed models on how to leverage emerging mobile technologies in teaching and learning (Kooze, 2009; Park, 2011; Sharples et al., 2007; Uden, 2007).

### **Technology in Education**

The emergence of evolving technologies leaves a significant impact on educational development. Many researchers reported their studies on the integration of technology in the process of teaching and learning as efforts to amplify students' performance, teaching effectiveness, as well as teachers' productivity (Wang et al., 2008; Jamil and Shah, 2011). In fact, Malik and Shabbir (2008) and Saba (2009) also emphasized on the effective usage of technology to produce new opportunities for self-directed learning as one of efforts to increase students' achievement. The use of technology, namely ICT is viewed as a potentially powerful enabling tool, specifically for educational change and reform (Tinio, 2003). Plomp et.al (1996) identify three objectives of using ICT in education which includes the use of ICT as object of study, the use of ICT as aspect of a discipline or profession, and the use of ICT as medium for teaching and learning. In an earlier study by Sheingold and Hadley (1990), it was also agreed that integrating technology is more than just helping people to use computers, but it is also for helping teachers to utilize it for learning. In fact, technology should make teaching and learning process easier and get along with it. Thus, technology integration in classrooms takes more than just having the facilities installed in schools; much consideration is needed to find the right way

of how it can be utilized for education.

### **Technology Acceptance in Education**

Achieving a significant usage of computer technology in the field of education can be influenced by many factors. According to Ertmer (1999), teachers would not automatically integrate technology into teaching and learning even if barriers such as access, time, and technical support were removed. Bingimlas (2009) identified several major barriers to successful ICT integration in teaching and learning environment, which include lack of confidence, lack of competence, and lack of access to resources. From the review of literatures by Mumtaz (2000), it was reported that the three interlocking factors that affect take-up of ICT are institution, resources and teacher. Overall, the literatures suggest that, teachers and institutions uptake on the technology in education plays an important role before the technology can successfully be embedded in the education system. Teachers' technology acceptance is one of the issues being addressed by several scholars. Teo(2011) defined technology acceptance as a user's willingness to employ technology for the tasks it is designed to support. Thus, some of issues that relate to technology acceptance might be teachers' acceptance in terms of their awareness and motivation towards the use of technology in teaching and learning process. Teachers' awareness on pedagogical usage of technology plays important roles in determining whether they will use it in classrooms or not. In a research by Ngozi et al. (2010), it was reported that, even though the teachers could identify the specific technological tools which are useful for education, they however were not aware of in what way the tools can be used. Level of motivation among teachers was also seen to be related to a successful implementation of technology .Studies that examined attitudes and achievement associated with mobile learning in a variety of contexts were selected for this review. In Malaysia, a study conducted by Jacob and Isaac (2008) carried out a study on the perception towards mobile learning revealed the mobile device usage among university students as a means to make the subject interesting and an effective learning supplement. ZorainiWatiAbas et al. (2009) concluded that through the formative evaluation of the Open University Malaysia (OUM) mobile learning [www.ccsenet.org/ass](http://www.ccsenet.org/ass) Asian Social Science Vol. 8, No. 12; 2012 278 initiative, the use of SMSs was generally accepted by its students. It is also reported that mobile learning has great potential to be integrated in the existing blend of pedagogies at OUM. Mobile learning definitely

contributes to the flexibility of learning in open and distance learning institutions. NorazahNordin et al. (2010:1) reported that 120 post-graduate students at UniversitiKebangsaan Malaysia, who participated in a survey, agreed that "mobile phones had successfully enhanced the teaching and learning process. The findings also revealed that mobile-learning activities are effective ways to motivate students and to foster interaction."

#### **Justification of the problem :**

Over the past decade there has been an increasing global demand towards the integration of mobile technologies for teaching and learning. There has emerged a need or a survey instrument that can form a solid foundation for objective judgment of learner perspectives as they begin using mobile applications for learning. The justification of the study lies in the contribution to society for its welfare because national unity is the basic need of India. It is time to lively approval of educational development in India. When many changes are being witnessed in organization, curricula and teaching techniques, it is important to seek systematic and up to date information on the significance. Through this study the investigators want to know about the attitude and psychological readiness among the future teachers for improving the education system in India.

#### **Statement of the Problem :**

**"A study of attitude and psychological readiness of pupil-teachers regarding the use of mobile technology in teaching-learning process."**

#### **Objectives:-**

- 1 To study the attitudes of pupil-teachers regarding the use of mobile technology in teaching-learning process.
- 2 To study the psychological readiness of pupil-teachers regarding the use of mobile technology in teaching-learning process.
- 3 To compare the attitudes of pupil-teachers regarding the use of mobile technology in teaching learning process.
- 4 To compare the Psychological readiness of pupil-teachers regarding the use of mobile technology in teaching-learning process.

#### **Hypothesis:-**

**H1:**There is no significant difference between the attitudes of male and female pupil-teachers

regarding the use of mobile technology in teaching-learning process.

**H2:**There is no significant difference between the psychological readiness of male and female pupil-teachers regarding the use of mobile technology in teaching-learning process.

#### **Methodology**

In order to study, the pupil-teachers attitudes and psychological readiness regarding the use of mobile technology in teaching-learning process a five point Scale with **strongly agree; agree; undecided; disagree; and strongly disagree**, was used from main items.

#### **Data Collecting Tool:-**

Data of this study will be collected by using a quantitative questionnaire. All scales and items used in the tool will be developed by the researchers after the review of related literature. The face and content validity of the questionnaire will be evaluated by the experts in faculty and related field.

The questionnaire consists of three sections:

- i) **Part A :** The Demographic section (age, gender, marital status, ethnicity, academic qualification level).
- ii) **Part B :** Consists of 7 questions which will be used to evaluate the attitude of pupil-teachers regarding the use of mobile technology in teaching-learning process
- iii) **Part C :** Consists of 21 questions to study the psychological readiness of pupil-teachers regarding the use of mobile technology in teaching-learning process.

#### **Type of sampling :**

The random sample of 200 pupil-teachers from educational institutes affiliated to G.G.S.I.P. University in Delhi used to collect the data for the study. The respondents were chosen because of their knowledge about educational technologies. The participants were deemed to be well familiar with at least basic technological tools in their teaching-learning process.

#### **Delimitation of the study:**

- This study is limited to the Delhi city only.
- This study will only analyze the attitude, and psychological readiness of pupil-teachers regarding the use of mobile technology in teaching learning process.

• This study is limited to the education field only.

**Data Analysis: The data was analyzed in terms of percentage and mean scores.** For comparing the mobile learning attitude and psychological readiness levels of pupil-teachers difference according to their gender the t-test will be used.

The first two objectives namely the pupil-teachers attitudes and psychological readiness regarding the use of mobile technology in teaching-learning process were measured by using 7 and 21 closed questions. Table (1) and Table (2) shows the percentage of descriptive statistics for the use of

mobile learning. Responses to the each of the indicators on attitude and psychological readiness regarding the mobile learning were measured on a Scale of 1 to 5 ranging from strongly disagree to strongly agree.

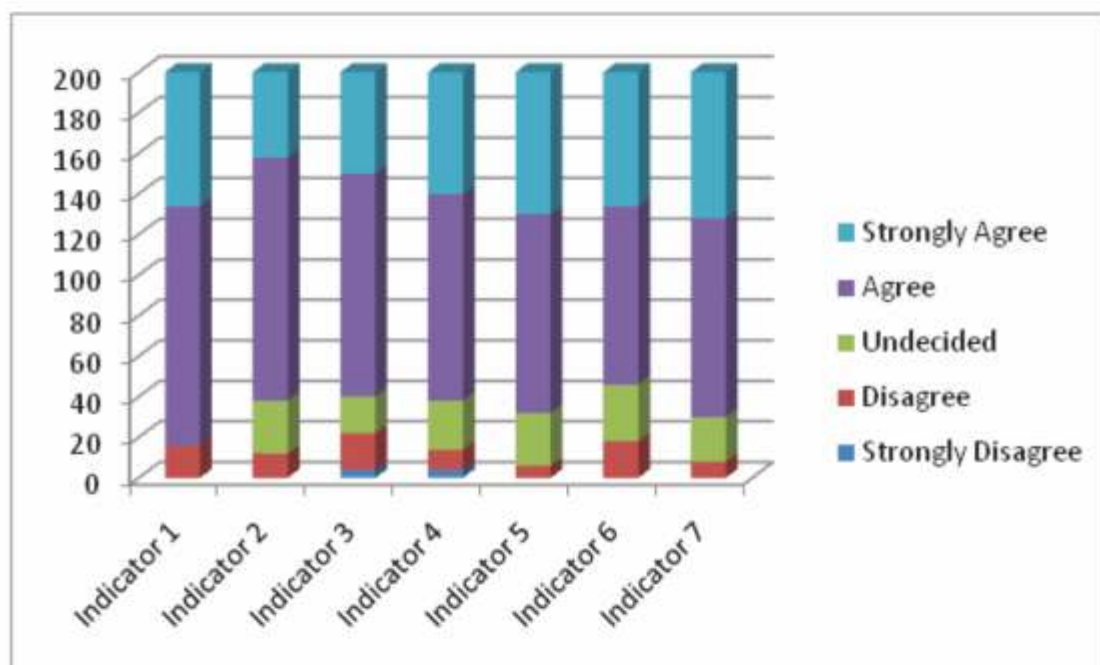
Table (3) shows the comparison of significant difference between the attitude of male and female pupil teachers regarding the use of mobile technology in teaching learning process.

Table (4) shows the comparison of significant difference between the psychological readiness of male and female pupil teachers regarding the use of mobile technology in teaching learning process.

**Table 1: Descriptive statistics for the attitude of Pupil-Teachers regarding the use of Mobile-Technology in teaching-learning process.**

S. NO	Questionnaire Indicator	SD	%	D	%	UD	%	A	%	SA	%	Total
1	The rapid development of Mobile Learning devices and tools (Apps) has empowered informal learning.	0	0%	16	8%	0	0%	118	59%	66	33%	200
2	Mobile Apps could be integrated seamlessly to support informal learning.	0	0%	12	6%	26	13%	120	60%	42	21%	200
3	Mobile Apps could bring enormous opportunities into universities to further empower informal learning	4	%	18	9%	18	9%	114	57%	50	25%	200
4	Student acceptance of Mobile Learning in higher education would be high.	4	2%	10	5%	24	12%	102	51%	60	30%	200
5	Recent developments in Mobile Learning are leading to the exploration of new methods/models at universities	0	0%	6	3%	13%	13%	98	49%	70	35%	200
6	Theoretical models and methods can assist in informing the design for mobile learning Apps	0	0%	18	9%	28	14%	88	44%	66	33%	200

S. NO	Questionnaire Indicator	SD	%	D	%	UD	%	A	%	SA	%	Total
7	The integration of mobile applications, mobile social networking platforms and other mobile technologies has become pervasive in teaching and learning.	0	0%	8	4%	22	11%	98	49%	72	36%	200



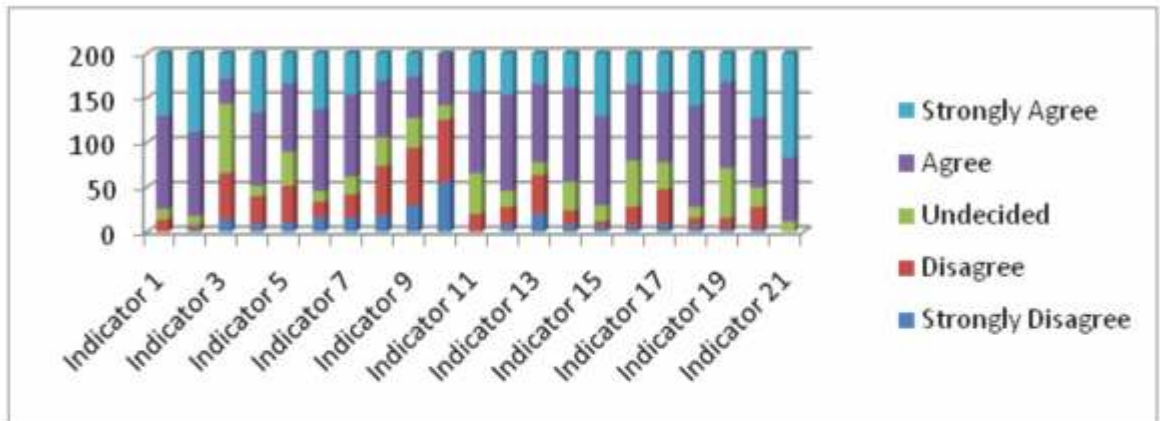
This data in Table (1) and Fig (1) indicates that some how, mobile technologies are more flexible and effective method of learning and enable students greater freedom of learning at any place , any time. Response to the question on knowledge about the mobile learning show that 60% respondents are agreed with the question that

Mobile Apps could be integrated seamlessly to support informal learning and improved the informal learning. There are 49% respondents are agreed with the questions that the integration of mobile applications, mobile social networking platforms and other mobile technologies has become pervasive in teaching and learning.

**Table 2 : Descriptive Statistics for the Psychological Readiness of Pupil-Teachers Regarding the Use of Mobile-Technology in Teaching –Learning Process.**

S. NO	Statement	SD	%	D	%	UD	%	A	%	SA	%	Total
1	I know what mobile learning is all about .	0	0%	14	7%	12	6%	104	52%	70	35%	200
2	I want to know more about mobile learning.	4	2%	4	2%	10	5%	94	47%	88	44%	200
3	I prefer conventional learning than mobile learning.	14	7%	52	26%	78	39%	28	14%	28	14%	200
4	I think mobile learning is good for working adults who are pursuing their higher education.	8	4%	32	16%	12	6%	82	41%	66	33%	200
5	I don't mind paying extra money for mobile learning.	10	5%	42	21%	38	19%	76	38%	34	17%	200
6	Mobile learning will make my life difficult.	16	8%	18	9%	12	6%	92	46%	62	31%	200
7	I would like to integrate mobile learning in my class room teaching in addition to face-to-face meetings in the class.	16	8%	26	13%	20	10%	92	46%	46	23%	200
8	I am afraid I will spend more money on my handphone bill because of mobile learning.	18	9%	56	28%	32	16%	64	32%	30	15%	200
9	I will be ready for mobile learning after 2 years.	30	15%	64	32%	34	17%	46	23%	26	13%	200
10	I don't know how to use 3G facility in my handphone.	56	28%	70	35%	16	8%	58	29%	0	0%	200
11	I would like to integrate mobile learning in my class room teaching-learning process besides online forum	0	0%	20	10%	46	23%	92	46%	42	21%	200

S. NO	Statement	SD	%	D	%	UD	%	A	%	SA	%	Total
12	Mobile learning is an alternative to web based learning.	8	4%	20	10%	18	9%	108	54%	46	23%	200
13	I need to learn how to use my handphone for mobile learning.	20	10%	44	22%	14	7%	88	44%	34	17%	200
14	I am looking forward to engage in mobile learning.	8	4%	16	8%	32	16%	106	53%	38	19	200
15	I will upgrade my handphone if mobile learning is going to be implemented in my course.	6	3%	6	3%	18	9%	100	50%	70	35%	200
16	Mobile learning is an alternative to conventional learning.	6	3%	22	11%	52	26%	86	43%	34	17%	200
17	Mobile phone helps to assist teaching in school.	8	4%	40	20%	30	15%	80	40%	42	21%	200
18	The use of mobile phone for teaching and learning is encouraging. Mobile phone helps to interact easier	6	3%	10	5%	12	6%	114	57%	58	29%	200
19	M-learning will help to learn ubiquitously.	4	2%	12	6%	56	28%	96	48%	32	16%	200
20	I will use SMS to communicate with my students.	4	2%	24	12%	22	11%	78	39%	72	36%	200
21	Believe the benefits of m-learning to future generation.	0	0%	0	0%	12	6%	72	36%	##	58%	200



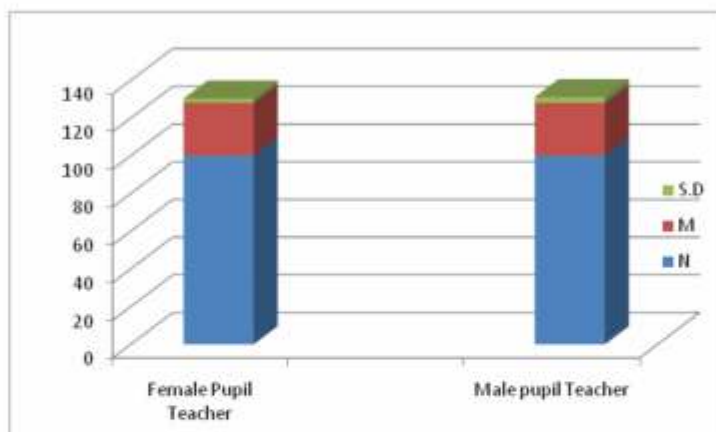
This data in Table (2) and Chart (2) indicates that some how, mobile technologies are more flexible and effective method of learning and enable students greater freedom of learning at any place , any time. Response to the question on knowledge about the mobile learning show that 52 %

respondents are agreed with the question that they know about the mobile learning. There are 46% respondents are agreed with the questions that they would like to integrate mobile learning in my class room teaching in addition to face-to-face meetings in the class.

**Table 3: Descriptive Statistics To Study the Significant Difference Between the Attitudes of Male and Female Pupil-teachers Regarding The Use of Mobile-Technology in Teaching –Learning Process.**

Attitude Regarding Use of Mobile Learning	N	Mean	S.D	C.R	Level of Significance
Male	100	28.01	3.1	0.4	Not Significant
Female	100	28.14	2.1		

**Table 3**

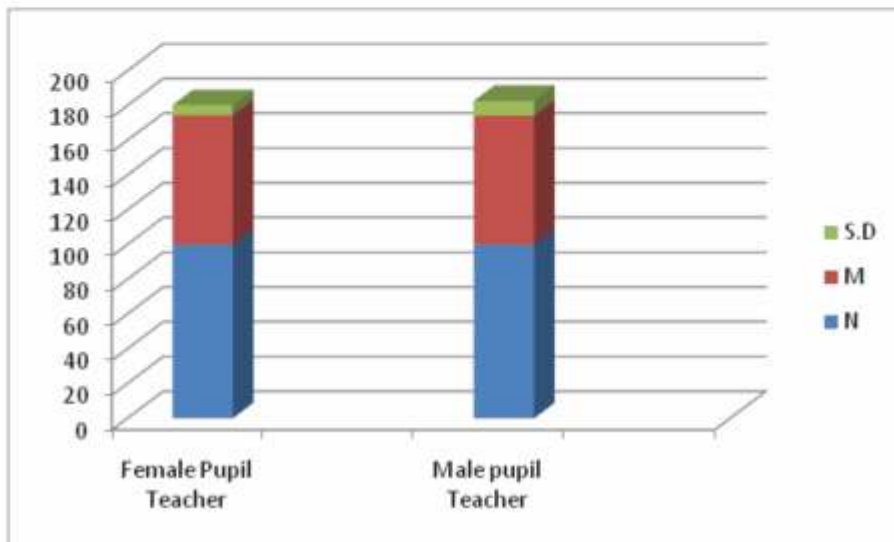


The calculated value 0.35 in table (3) is less than the table value 1.98 so the null hypothesis is accepted and we can say that there is no significant

difference between the mean scores of male and female pupil teacher's attitude regarding the use of mobile technology in teaching-learning process.

**Table 4 : Descriptive Statistics To Study The Significant Difference Between The Psychological Readiness of Male And Female Pupil-Teachers Regarding The Use of mobile-Technology In Teaching–Learning Process.**

Psychological Readiness	N	Mean	S.D	C.R	Level of Significance
Male	100	74.15	8.7	0.8	Not Significant
Female	100	74.36	6		



The calculated value 0.76 in table (4) is less than the table value 1.98 so the null hypothesis is accepted and we can say that there is no significant

difference between the mean scores of male and female pupil teacher's attitude regarding the use of mobile technology in teaching-learning process.

**Conclusion:**

1 It is determined that the attitude and psychological readiness of pupil –teachers regarding the use of mobile technology in teaching -learning process were measured and response scores about each of indicator in the part B and C of questionnaire was observed. The score for each of the indicators greater than 3 shows the relative importance and the scores below the 2 indicate relative unimportance; a score of 2 to 3 shows that it is neither important nor unimportant. Table 1 and 2 Provides an overview of the relative importance of these indicators. this data indicates that some how , mobile technologies are more flexible and enable students greater freedom of learning any place, any time.

2 The descriptive analysis to find the significant difference between the attitude and psychological readiness of male and female pupil-teachers regarding the use of mobile technology in teaching –learning process in Table 3 and 4 shows no significant difference after comparison which indicates that both male and female pupil-teachers shows positive attitude and psychological readiness regarding mobile technology .

At last we can conclude that mobile technologies such as mobile phones can be used to enrich student's learning environment by providing timely information and can also provide good support to micro-learning, a new and effective way of learning and teaching.

## References :

1. Asian Social Science; Vol. 8, No. 12; 2012  
ISSN 1911-2017 E-ISSN 1911-2025  
Published by Canadian Center of Science and Education.
2. British Journal of Social Sciences, URL:  
<http://www.bjss.baar.org.uk/currentissue.html>  
, Vol. 1, No. 2, pp 101-116, **November 2012**.
3. Mahamad, S., Ibrahim, M.N., & Taib, S.M.  
(2010).M-learning: A new paradigm of  
learning mathematics in Malaysia.  
International Journal of Computer Science &  
Information Technology, 2(4), 76-86.
4. Rashid, A. M., & Gloeckner, G. N. (2008).  
Information and learning technology (ILT)  
among career and technical teachers in  
Malaysia. Electronic Journal on Information  
System in Developing Countries, 33(4), 1-20.  
Retrieved, August 13, 2012 from  
<http://www.ejisdc.org>
5. Ritchie, D. and Rodriquez, S. (1996). School  
administrators and educational technologies:  
Narrowing the divide. Journal of Information  
Technology for Teacher Education, 5(1/2), 107-114.
6. Sa'ari, J.R., Luan, W.S., & Roslan, S. (2005).  
Attitude and perceived information technology  
competency among teachers. Malaysian Online  
Journal of Instructional Technology, 2(3), 70-77
7. Sherry, L., & Gibson, D. (2002). The path to  
teacher leadership in educational technology.  
Contemporary issues in technology and teacher  
education, 2(2), 178-203.
8. The Turkish Online Journal of Educational  
Technology – TOJET April 2009 ISSN: 1303-  
6521 volume 8 Issue 2 Article 10
9. Wang, M., Shen, R., Novak, D., & Pan, X. (2009).  
The impact of mobile learning on students'  
learning behaviours and performance: Report  
from a large blended classroom. British Journal of  
Educational Technology, 40, 673–695. doi:  
10.1111/j.1467-8535.2008.00846.x •  
[http://www.thejeo.com/Archives/Volume10Num  
ber1/Ismail.pdf](http://www.thejeo.com/Archives/Volume10Number1/Ismail.pdf)
10. [www.ccsenet.org/ass](http://www.ccsenet.org/ass) Asian Social Science Vol. 8,  
No. 12; 2012.



## **Quality Practice Teaching : Need of The Hour**

**Dr. Umender Malik**

Assistant Professor-II

Maharshi Dayanand University, Rohtak (Haryana)

Practice teaching is an indispensable vital process in teacher-training programme. It aims at shaping an individual into a perfect teacher. It has in it the potentialities to shape the destiny of a nation. Education is a process of development which includes the three major activities teaching, training and instruction. Thus teacher should develop understanding, interests, attitudes and skills which would enable him to foster all round development and growth of children under his care. Teaching is one of the instruments of education and its special function is to impart understanding and skill.

Teaching is science as well as art. Teaching practice is an integral part of the teacher education programme. The exercise is to acquaint pupil-teachers with the practical knowledge of teaching and learning process including lesson plan preparation, presentation, class management, communication skills and evaluation. Teacher education programme is being made competency based. However, the teacher needs to be properly educated and trained for professional efficiency and inculcated with a positive attitude that will enable him/her to go through the training properly and come out well equipped for the responsibility ahead. Teacher education is an important component of the education system, where key role is played by the teacher educators, who initiate all curriculum related activities, motivate students to participate and learn from them and also help them to use the newly acquired knowledge and skills in practical situation.

### **Practice Teaching**

Practice teaching is a teaching by a pupil-teacher under the supervision of an experienced teacher. The practice teaching experience involves assuming the responsibilities for creating a learning environment and constructing a learning experience for students. Practice teaching is the most important part of Teacher Education Programme. It is an opportunity for pupil-teachers to put their theoretical studies into practice. It prepares pupil-teachers for future challenges through acquisition of relevant skills through Micro-teaching, simulated teaching, and mega teaching. Practice teaching is the hallmark of teacher education course which enables pupil-teachers to get mastery in teaching skills. In the classroom, students are acknowledged with theoretical concepts of the educational psychology, management of classroom, teacher taught relationship and various philosophies dealing with education. Teaching practice is a time when all these learned concepts have to be applied successfully in real life situations. Teaching Practice gives a sense of accomplishment to pupil-teachers. They learn to take

responsibility, gain confidence and improve upon their classroom management skills. Teaching Practice is the core component of all pre-service teacher education programs. Practice teaching provides pupil-teachers with an opportunity to develop appropriate skills for classroom interaction. Teaching practice makes a teacher expertise in several areas, such as academic subject knowledge; pedagogical knowledge; effective use of multimedia, ICT, Effective interpersonal behavior; enthusiasm and motivating skills; understanding of social relationship in schools and classrooms.

It is expected that the pupil-teachers should learn under mentioned points during practice teaching.

**Lecture Practices :** It is an effective ways to present new information orally to fit differences in learning styles. At times information must be transmitted orally to students. Lecture enhances learner retention.

**Group Discussion :** It is an effective way to present a common experience to engage a group in a discussion. Understanding enhances when learners discuss the meaning of events with each other. Groups need a common experience to draw learners into participation, establish a personal connection with the content, and provide a shared referent from which to exemplify their ideas.

**Thoughtful Questions :** It is an effective way to formulate questions that foster engagement and confidence. The right questions focus the learner's attention upon applying their current understanding to the content or problem.

**Reflective Responses to Learner Contributions :** It is an effective way to establish mutually beneficial communication by reflective listening. To facilitate self-discovery and self-appropriated learning, effective teachers respond without changing the topic to share their own information or perspective from a posture of mutual respect, without domination.

**Rewarding Learner Participation:** It is an effective way to support learner actions with well-timed, encouraging positives. Effective teachers support emerging initiative, cooperation and perseverance with well-timed positives.

**Fostering Learner Self-Responsibility :** To allow learners to plan and evaluate much of their learning. Teachers offer ways for the learners to take an active role in diagnosing their learning needs, formulating learning goals, identifying human and material resources for learning, choosing and implementing appropriate strategies, and evaluating the outcomes.

According to Cohen, Manion, and Morrison (1996)

the objectives of the teaching practice are, to :

- Help the B.Ed. trainees develop positive attitude towards the teaching profession.
- An opportunity to gain confidence.
- Expose B.Ed. trainees to real life classroom experience under the supervision of professional teachers.
- An opportunity for self-evaluation and to discover strengths and weaknesses.
- Enable B.Ed. trainees discover their own strengths and weaknesses in teaching.
- An opportunity to improve the knowledge of subject matter.
- Provide a forum for B.Ed. trainees to translate educational theories and principles into practice.
- Familiarize B.Ed. trainees with school routines.
- Expose B.Ed. trainees to the total school environment.

### Suggestions

Following suggestions can be adopted by the pupil-teachers to bridge the gap between theory and practice teaching.

- 1 More time should be devoted by pupil-teachers in learning and applying skills under mock conditions where feedback can be provided by their own classmates and lecturers.
- 2 Before starting practice teaching a workshop should be organized by faculty members of college to develop various skills of pupil-teachers such as Black board writing, way of introducing the chapter, stimulus variation, illustration, effective use of instructional materials, etc.
- 3 Along with one supervisor's observation sheet, one more sheet should be included where pupil-teacher can record his own observations about classroom environment, and additional activities to improve his/her teaching.
- 4 Simulated teaching should be organized in order to improve interaction of pupil-teachers with children of class.
- 5 Both formative and summative types of evaluation should be adopted for continuous evaluation of pupil-teacher.
- 6 There must be the projector/smart class concept during practice teaching to get direct feedback just after teaching is over.
- 7 Government should make a provision for at least tow months internship for pupil-teachers and to go to schools, where they work in close

## Conclusions

Practice teaching is the most important part of teacher education programme. It requires innovations to respond to changing needs with changed school system. Target of practice teaching should be to make expertise of pupil-teachers in academic subject knowledge, pedagogical knowledge, interpersonal behavior, motivating skills, organizational skills. For this two months internship and reading of practice teaching for feedback would be a good idea.

## References :

1. Balachandran, E.S. (1981). "Teaching Effectiveness and student evaluation of teaching". Doctoral Thesis, Madras University.
2. Bendl, S., Markova, K. & Mojziso, J. (2007). Integrated Model of Student Teaching Practice, 32nd Annual ATEE Conference England.
3. Buch, M.B. Fourth Survey of Research in Education, Volume II.
4. Cohen, Manion, and Morrison (1996). A Comparative Study of B.Ed. Teaching Practice Between Public and Private Sector Educational Institutions in Karachi. *Interdisciplinary Journal of Contemporary Research in Business*, Vol. 4, No. 12, 2013.
5. K. Patricia Cross and Thomas A. Angelo. *Classroom Assessment Techniques : A Handbook for Faculty*. Second Edition. (Jossey-Bass Publishers, San Francisco, California), 1993.
6. Lam, J. & Yanfung, M. (2001). Strengthening Teacher training programme: Revamping the model of Teaching practice. Paper presented at 2nd Hong Kong conference on quality in Teaching & Learning in Higher Education.
7. Stephens, P. (1996). *Essential Mentoring Skills: A practical handbook for school based Teacher Educations*, Cheltenham: Stanley Thornes.



## Constructing 21<sup>st</sup> Century Teacher Education

**Krishan Kant**

Assistant Professor

Mata Harki Devi College of Education for Women, Odhan, Sirsa (Haryana)

**Dr. Bimla Sahu**

Assistant Professor

Mata Harki Devi College of Education for Women, Odhan, Sirsa (Haryana)

The importance of powerful teaching is increasingly important in contemporary society. Standards for learning are now higher than they have ever been before, as citizens and workers need greater knowledge and skill to survive and succeed. Education is increasingly important to the success of both individuals and nations, and growing evidence demonstrates that—among all educational resources—teachers' abilities are especially crucial contributors to students' learning. Furthermore, the demands on teachers are increasing. Teachers need not only to be able to keep order and provide useful information to students but also to be increasingly effective in enabling a diverse group of students to learn ever more complex material. In previous decades, they were expected to prepare only a small minority for ambitious intellectual work, whereas they are now expected to prepare virtually all students for higher order thinking and performance skills once reserved to only a few.

Given this variety of teacher education goals and the realities of 21st-century schooling, the task for this article is to consider what those of us in the field of teacher education might do to support the kinds of learning teachers require to undertake this complex job with some hope of success. In responding to this question, we want to draw on the recently released work of the National Academy of Education Committee on Teacher Education, a group of researchers, teachers, and teacher educators that worked for 4 years to summarize how what we have come to know about how children and adults learn can inform the curriculum and design of teacher education programs (Darling Hammond & Bransford, 2005).

### Contemporary Dilemmas For Teacher Education

Both the apparent ease of teaching to the non initiated and the range of things teachers really do need to know to be successful with all students—not just those who can learn easily on their own—are relevant to the dilemmas that teacher education programs find themselves in today. On one hand, many lay people and a large share of policy makers hold the view that almost anyone can teach reasonably well—that entering teaching requires, at most, knowing something about a subject, and the rest of the fairly simple “tricks of the trade” can be picked up on the job.

These notions—which derive both from a lack of understanding of what good teachers actually do behind the scenes and from tacit standards for teaching that are far too low—lead to pressures for backdoor routes into teaching that deny teachers access to much of the knowledge base for teaching and often, to the supervised clinical practice that would provide them with models of what good teachers do and

how they understand their work. It is tragic that individuals who are likely to be seduced into teaching through pathways that minimize their access to knowledge are those who teach high-need students in low-income urban and rural schools where the most sophisticated understanding of teaching is needed.

Thus, schools of education must design programs that help prospective teachers to understand deeply a wide array of things about learning, social and cultural contexts, and teaching and be able to enact these understandings in complex classrooms serving increasingly diverse students; in addition, if prospective teachers are to succeed at this task, schools of education must design programs that transform the kinds of settings in which novices learn to teach and later become teachers. This means that the enterprise of teacher education must venture out further and further from the university and engage ever more closely with schools in a mutual transformation agenda, with all of the struggle and messiness that implies. It also means that teacher educators must take up the charge of educating policy makers and the public about what it actually takes to teach effectively in today's world—both in terms of the knowledge and skills that are needed and in terms of the school contexts that must be created to allow teachers to develop and use what they know on behalf of students (Fullan, 1993).

Thus, we would argue that teacher educators, as a professional collective, need to work more intently to build on what has been learned about developing stronger models of teacher preparation—including the much stronger relationships with schools that press for mutual transformations of teaching and learning to teach—while resisting the pressures and incentives that lead to the creation of weaker models that ultimately reinforce dissatisfaction with the outcomes of teacher education and undermine the educational system.

### **Building Strong Models of Preparation**

Although reform initiatives have triggered much discussion about the structures of teacher education programs (e.g., 4 year or 5 year, undergraduate or graduate) and the certification categories into which programs presumably fit (e.g., “traditional” or “alternative”), there has been less discussion about what goes on within the black box of the program—inside the courses and clinical experiences that candidates encounter—and about how the experiences programs design

for candidates cumulatively add up to a set of knowledge, skills, and dispositions that determine what teachers actually do in the classroom.

### **Knowledge for Teaching: The “What” of Teacher Education**

There are many ways of configuring the knowledge that teachers may need. In articulating the core concepts and skills that should be represented in a common curriculum for teacher education, the National Academy of Education Committee on Teacher Education adopted a framework that is organized on three intersecting areas of knowledge found in many statements of standards for teaching:

- Knowledge of learners and how they learn and develop within social contexts, including knowledge of language development;
- Understanding of curriculum content and goals, including the subject matter and skills to be taught in light of disciplinary demands, student needs, and the social purposes of education; and
- Understanding of and skills for teaching, including content pedagogical knowledge and knowledge for teaching diverse learners, as these are informed by an understanding of assessment and of how to construct and manage a productive classroom.

These interactions between learners, content, and teaching are framed by two important conditions for practice: First is the fact that teaching is a profession with certain moral and technical expectations especially the expectation that teachers, working collaboratively, will acquire, use, and continue to develop shared knowledge on behalf of students. Second is the fact that, education must serve the purposes of a democracy. This latter condition means that teachers assume the purpose of enabling young people to participate fully in political, civic, and economic life in our society. It also means that education—including teaching—is intended to support equitable access to what that society has to offer.

The implications of this framework for teacher education are several: First, like the work of other professions, teaching is in the service of students, which creates the expectation that teachers will be able to come to understand how students learn and what various students need if they are to learn more effectively—and that they will incorporate this into their teaching and curriculum construction. Deep understanding of learning and learning differences as the basis of constructing curriculum has not historically been a central part of teacher education.

These domains were typically reserved to

psychologists and curriculum developers who were expected to use this knowledge to develop tests and texts, whereas teachers learned teaching strategies to implement curriculum that was presumably designed by others. In some ways, this approach to training teachers was rather like training doctors in the techniques of surgery without giving them a thorough knowledge of anatomy and physiology. Without knowing deeply how people learn, and how different people learn differently, teachers lack the foundation that can help them figure out what to do when a given technique or text is not effective with all students. And teachers cannot achieve ambitious goals by barreling from one lesson to the next without understanding how to construct a purposeful curriculum. This requires incorporating subject matter goals, knowledge of learning, and an appreciation for children's development and needs. Connecting what is to be learned to the learners themselves requires curriculum work, even when teachers have access to a range of texts and materials. Finally, teachers must be able continually to learn to address the problems of practice they encounter and to meet the unpredictable learning needs of all of their students—and they must take responsibility for contributing what they learn to not only their own practice but also that of their colleagues. This means that programs must help teachers develop the disposition to continue to seek answers to difficult problems of teaching and learning and the skills to learn from practice (and from their colleagues) as well as to learn for practice.

### **Program Designs and Pedagogies: The “How” of Teacher Education**

Although it is important to have well-chosen courses that include core knowledge for teaching, it is equally important to organize prospective teachers' experiences so that they can integrate and use their knowledge in skillful ways in the classroom. This is probably the most difficult aspect of constructing a teacher education program. Teacher educators must worry about not only what to teach but also how, so that knowledge for teaching actually shapes teachers' practice and enables them to become adaptive experts who can continue to learn.

Accomplishing this requires addressing some special—and perennial—challenges in learning to teach. Three in particular stand out. First, learning to teach requires that new teachers come to understand teaching in ways quite different from their own experience as students. Dan Lortie (1975) called this problem “the apprenticeship of observation,” referring to the learning that takes place by virtue of

being a student for 12 or more years in traditional classroom settings. Second, learning to teach also requires that new teachers learn not only to “think like a teacher” but also to “act as a teacher”—what Mary Kennedy (1999) has termed “the problem of enactment.” Teachers need not only to understand but also to do a wide variety of things, many of them simultaneously.

Finally, learning to teach requires that new teachers be able to understand and respond to the dense and multifaceted nature of the classroom, juggling multiple academic and social goals requiring trade-offs from moment to moment and day to day (Jackson, 1974). They must learn to deal with “the problem of complexity” that is made more intense by the constantly changing nature of teaching and learning in groups. How can programs of teacher preparation confront these and other problems of learning to teach?

A study examining seven exemplary teacher education programs—public and private, undergraduate and graduate, large and small—that produce graduates who are extraordinarily well prepared from their first days in the classroom finds that despite outward differences, the programs had common features, including:

- A common, clear vision of good teaching that permeates all course work and clinical experiences, creating a coherent set of learning experiences;
- Well-defined standards of professional practice and performance that are used to guide and evaluate course work and clinical work;
- A strong core curriculum taught in the context of practice and grounded in knowledge of child and adolescent development and learning, an understanding of social and cultural contexts, curriculum, assessment, and subject matter pedagogy;
- Extended clinical experiences—at least 30 weeks of supervised practicum and student teaching opportunities in each program—that are carefully chosen to support the ideas presented in simultaneous, closely interwoven course work;
- Extensive use of case methods, teacher research, performance assessments, and portfolio evaluation that apply learning to real problems of practice;
- Explicit strategies to help students to confront their own deep-seated beliefs and assumptions about learning and students and to learn about the experiences of people different from

themselves;

- Strong relationships, common knowledge, and shared beliefs among school- and university-based faculty jointly engaged in transforming teaching, schooling, and teacher education.

These features confront many of the core dilemmas of teacher education: the strong influence of the apprenticeship of observation candidates bring with them from their years as students in elementary and secondary schools, the presumed divide between theory and practice, the limited personal and cultural perspectives all individuals bring to the task of teaching, and the difficult process of helping people learn to enact their intentions in complex settings. They help produce novice teachers who are able, from their first days in the classroom, to practice like many seasoned veterans, productively organizing classrooms that teach challenging content to very diverse learners with levels of skill many teachers never attain.

In addition to the deeper knowledge base I have described above, such powerful teacher education, I believe, rests on certain critically important pedagogical cornerstones that have been difficult to attain in many programs since teacher education moved from normal schools into universities in the 1950s. I would like to highlight three of these here because I think they are essential to achieving radically different outcomes from preparation programs.

### **Resisting Pressures To Water Down Preparation**

Although heroic work is going on to transform teacher education and a growing number of powerful programs are being created, more than 30 states continue to allow teachers to enter teaching on emergency permits or waivers with little or no teacher education at all. In addition, more than 40 states have created alternative pathways to teaching—some of which are high quality post baccalaureate routes and others of which are truncated programs that short-circuit essential elements of teacher learning. Many candidates who enter through emergency or alternative routes do not meet even minimal standards when they start teaching, and researchers have found that pressures to get them certified in states where thousands are hired annually can undermine the quality of preparation they ultimately receive. In some states, such as California and Texas, unlicensed entrants have numbered in the tens of thousands annually, hired to teach to the least

advantaged students in low-income and minority schools. Even when these candidates are required to make some progress toward a license each year by taking courses for teaching while they teach, the quality of preparation they receive is undermined (Shields et al., 2001).

Institutions that train these emergency hires cannot offer the kinds of tightly integrated programs described here in which candidates study concepts and implement them with guidance in supported clinical settings. They are forced to offer fragmented courses on nights and weekends to candidates who may never have seen good teaching and who have little support in the schools where they work. The part-time instructors who are often hired to teach these courses are not part of a faculty wise conversation about preparation, nor do they have a sense of a coherent program into which their efforts might fit.

When these candidates work full-time, colleges often water down their training to minimize readings and homework and focus on survival needs such as classroom discipline rather than curriculum and teaching methods. Candidates often demand attention to classroom management, without realizing that their lack of knowledge of curriculum and instruction cause many of the classroom difficulties they face (Shields et al., 2001). When they skip student teaching, colleges cannot weave good models of teaching into courses that would connect theory and practice, and candidates can only imagine what successful practice might look like. Studies observe that both recruits and employers typically find the outcomes of this kind of training less satisfactory than those of a more coherent experience that includes supervised clinical training along with more thoughtfully organized course work (California State University, 2002; Shields et al., 2001), and many programs that try to train candidates while they teach have had extremely high attrition rates (Darling-Hammond, 2001). If medical schools were asked to develop programs for already practicing doctors or nurses that would eliminate or truncate some courses and skip clinical rotations and the internship entirely, they would refuse to do so. However, universities participate in this kind of training for teachers for many reasons:

- They feel an obligation to help teachers who have found their way into the classroom without proper training;
- They are required to do so by laws governing state funded programs or encouraged to do so by federal, state, or local incentives to construct alternative pathways that train teachers while they teach;
- They believe, like many policy makers, that this is

the only way to meet persistent supply problems, especially in poor urban and rural districts; and

- Such recruits are a source of money and may absorb little in the way of services for the tuition they pay.

### Conclusion

Although teacher education is only one component of what is needed to enable high-quality teaching, it is essential to the success of all the other reforms urged on schools. To advance knowledge about teaching, to spread good practice, and to enhance equity for children, thus, it is essential that teacher educators and policy makers seek strong preparation for teachers that is universally available, rather than a rare occurrence that is available only to a lucky few.

### References :

1. Agarwal, P. (2006), 'Higher education in India: the need for a change', Indian Council For Research On International Economic Relations.
2. California State University. (2002). First system wide evaluation of teacher education programs in the California State University: Summary report. Long Beach, CA: Office of the Chancellor.
3. Darling-Hammond, L. (2001). The challenge of staffing our schools. *Educational Leadership*, 58(8), 12-17.
4. Darling-Hammond, L., & Bransford, J. (with LePage, P., Hammerness, K., & Duffy, H.). (2005). *Preparing teachers for a changing world: What teachers should learn and be able to do*. San Francisco: Jossey-Bass.
5. Fullan, M. (1993). Why teachers must become change agents. *Educational Leadership*, 50(6), 12-17.
6. Jackson, P. W. (1974). *Life in classrooms*. New York: Holt, Rinehart & Winston.
7. Kennedy, M. (1999). The role of preservice teacher education. In L. Darling-Hammond & G. Sykes (Eds.), *Teaching as the learning profession: Handbook of policy and practice* (pp. 54-85). San Francisco: Jossey-Bass.
8. Lortie, D. C. (1975). *Schoolteacher: A sociological study*. Chicago: University of Chicago Press.
9. Shields, P. M., Humphrey, D. C., Wechsler, M. E., Riel, L. M., Tiffany-Morales, J., Woodworth, K., et al. (2001). *The status of the teaching profession 2001*. Santa Cruz, CA: Center for the Future of Teaching and Learning.



## A Study of Teaching Competency Among Prospective Teacher Educators in Ghaziabad District

Ms. Neeta Sharma

Assistant Professor

SRM University, NCR Campus, Modinagar (Uttar Pradesh)

Prospective teacher educators are responsible for producing quality teachers. Harvey (1993) and Atwood (2007) point out that Quality processes tend to focus on 'core' aspects of education such as learning-teaching and course organization. In other words prospective teacher educators' way of organizing theoretical framework, practical sessions and skills development programme affect the future teachers. The activities suggested during training are carried to the classroom teaching in the schools. Researchers like McAffrey et.al. (2003), Rivkin et.al. (2005) and Rockoff (2004) found that teachers have a significant impact on the achievement of the students. However, research studies are jejune to provide answer to the question if the prospective teacher educators directly affect the teachers' classrooms behavior or management of activities in the schools. Reasons for this could be many.

Prospective teacher educators have never taken the aspect of professionalism very seriously. They have been criticizing the process of teacher education rather than providing answer to problem faced by them. However, NCTE was established in 1993 by the Act of parliament to give the tinge of professionalism to teacher preparation programme. Unfortunately instead of mending the system it caused some damage to the programme of teacher education. Obvious reason was lack of insight on the part of prospective teacher educators to provide a good model of teacher education. Till date they have not been able to envision a good model of teacher education programme. Existing teacher education problems were further aggravated by the privatization of teacher education institutions. Prospective teacher educators never accepted the private enterprise in teacher education programme though they had been party in recognizing the private teacher education institutions (through NCTE) for the sake of fringe benefits bestowed by the private players. The situation deteriorated to such an extent that at particular time a committee was constituted by the Ministry of Human resource Development to scrap the regulatory body of teacher education (NCTE). The situation was saved after a great hue and cry made by some right thinking prospective teacher educators to reverse the decision. The developments like these have made it mandatory for the prospective teacher educators to put their heads together and give a little thinking to their role in the changed set up under Liberalization, Privatization and Globalization.

## Need of The Study

In the present scenario, there is a decline and steep fall of standards in education and also in the general ways of living is people. Hence the need of the day is that the teacher to be competent to have positive attitude towards teaching and to have, commitment for his or her profession.

Teachers acquire commitment, dedication, love and other essential competency, and if they are enabled and empowered to perform multiple tasks in the classroom, school as well as in the community in a genuinely professional manner, then a chain reaction can begin starting with a sound teacher in students in cognitive, affective and psychomotor area of development. Keeping in view the importance of the prospective teacher educator in the system of Education an idea came into the mind of the investigator that she should study the teaching competency of prospective teacher educators.

## Statement of The Problem

"A Study of Teaching Competency Among Prospective Teacher Educators In Ghaziabad District"

## Operational Definitions of The Terms Used

In the present study following terms are required to define operationally.

### Teaching Competency

Operationally Teaching Competency refer to Planning, Presentation, Closing, Evaluation and Managerial skills and abilities in a given context that adjust and develop with time and needs in order to effectively and efficiently accomplish a task and that are measured against a minimum standard.

### Prospective Teacher Educator

Prospective teacher educator refers to those who have completed their B.Ed. Degree and now are studying in Master of Education (M.Ed.).

### Objectives

1. To study and compare between male and female prospective teacher educator and relation to their teaching competency and its dimensions.
2. To study and compare between science and arts prospective teacher educator and relation to their teaching competency and its dimensions.

### Hypothesis

1. There is no significant difference between male and female prospective teacher educators with reference to their teaching competency.
2. There is no significant difference between

science and arts prospective teacher educators with reference to their teaching competency.

## Method Of The Study

In the present study the Descriptive Survey Method of research was used.

### Population

Population of the present study consist prospective teacher educators in Ghaziabad District in Uttar Pradesh.

### Sample

Sample was selected randomly of stream wise 25 male and 25 female teacher educators.

### Tool

In order to collect relevant data for the fulfillment of the proposed objectives the following tool and techniques has been employed by the investigator:

- General Teaching Competency Scale - B.K. Passi
- Test mentioned above is standardized test adopted on Indian sample. The details of the test is being discussed below:

## Description of The GTCS

There are 21 items related to 21 teaching skills which encompass the entire teaching-learning process in the classroom. They are related to five major aspect of classroom teaching, namely, Planning, Presentation, Closing, Evaluation and Managerial. The items are such that they are centered around teacher classroom behavior in relation to pupil behavior. It is a 7 point rating scale measuring the use of the skill by the teacher in the classroom corresponding to each item ranging from '1' for Not at all' to '7' for 'very much'

**Scoring:** The sum of the ratings against all the 21 items constitutes the score on General Teaching Competency (GTC Score) of the teacher being observed. The maximum score possible is 147 and the minimum is 21.

**Reliability:** Since this is an observation tool, the more appropriate type of reliability is the inter-observer reliability. This scale has been used for doctoral research (Joshi, 1977; Passi, 1977) and the reported inter-observer reliability coefficients range from 0.85 to 0.91.

**Validity :** The correlation was found to be from 0.78 to 0.82, which was of fairly high degree. Hence the scale can be set to have high criterion validity.

## Need of The Study

In the present scenario, there is a decline and steep fall of standards in education and also in the general

### Analysis Of The Data

Table-1

#### Comparison Between Male And Female Prospective Teacher Educators With Reference To Their Teaching Competency

SL	Name Of Group	N	Mean	S.D.	d.f.	't'
1	Male prospective teacher educators	25	108.32	9.91	48	0.23
2	Female prospective teacher educators	25	108.96	17.3		

**Interpretation:** Obtained 't' value is 0.23 which is less than the 't' table value at 0.05 level of significance. It means measured difference between the male and female prospective teacher educators

with reference to their teaching competency is not significant at either of the level of significance, the observed mean difference is due to chance error or measurement error.

Table-2

#### Comparison Between Science And Arts Prospective Teacher Educators With Reference To Their Teaching Competency

SL	Name Of Group	N	Mean	S.D.	d.f.	't'
1	Science prospective teacher educators	25	113.48	12.39	48	3.66
2	Arts prospective teacher educators	25	103.8	14.01		

**Interpretation:** Obtained 't' value is 3.66 which is more than the 't' value at 0.01 level of significance. It means measured difference between the science and arts prospective teacher educators is differ significantly with reference to their teaching

competency. Mean score of science prospective teacher educators is more than the mean score of their counterpart female arts prospective teacher educators with reference to their teaching competency.

## Validation of The Study

1. Hypothesis No.1 reads- There is no significant difference between male and female prospective teacher educators with reference to their teaching competency. Obtained 't' value 0.23 is not significant. Thus hypothesis No. 1 is accepted.
2. Hypothesis No.2 reads- There is no significant difference between science and arts prospective teacher educators with reference to their teaching competency. Obtained 't' value 3.66 is significant. Thus hypothesis No. 2 is rejected.

## Findings of The Study

1. There is no significance difference between

male and female prospective teacher educators with reference to their teaching competency.

2. Science and arts prospective teacher educators are differ significantly with reference to their teaching competency

## Conclusions of The Study

1. Male prospective teacher educators and female prospective teacher educators both have equal competency.
2. Science prospective teacher educators are better than the arts prospective teacher educators in relation to their teaching competency.

## References :

1. Arora (1978) "Differences between effective and ineffective teachers" New Delhi: S.Chand & Company Ltd., 111-130
2. Borg, W.R. (2006). "Educational Research: An Introduction" 8th edition, Allyn & Bacon Publishers, U.K.
3. Buch, M.B. (1975) "Studies in teaching and teacher behavior". Centre of Advance Studies in Education (CASE), Baroda.
4. Buch, M.B. ed. (1974) "A Survey of Research in Education", Centre of Advance Study in Education (CASE), M.S. University, Baroda.
5. Chaudhary, S. Sohnvir (1990). "Teachers' Attitude towards School Television (STV) and its Relationship to Mass Media behavior and job Satisfaction". Ph.D. Edu. Univ of Delhi.
6. Thakur, T. (1976). "Who is a good teacher" A study based on the opinion of senior pupils. SIE. Assam.
7. Sharma, Gunjan, (2012), " A comparative study of teaching competency between teachers teaching in government aided schools and self-finance schools at secondary level", M.Ed. Dissertation, SRM University, Chennai.
8. Sharma, Anita, 2001. A Study of Commitment Among Teachers, M.Ed. Dissertation, N.A.S. College, Meerut (C.C.S. University, Meerut).
9. Shukla Shashi (2009) 'Teaching competency, professional commitment and Job Satisfaction' Ph.D. Delhi University, New Delhi. Available online at <http://illusion.instablogs.com>.



## Teaching English to Mix Ability Learners

**Pratibha Sisodia**

Associate Professor,  
Poornima College of Engineering, Jaipur

**Shairin Sisodia**

Assistant Professor,  
International Engineering College, Jaipur

English today is simultaneously sought after and suspected phenomenon. The motives, generally, are not only social-political and but academic too. While the demand increases on the one hand, the quality of English language education in our state run schools, more particularly in rural schools, presents an abysmal picture. The 'divide' between the urban and rural is further contributed by the way English language education is making its way as a medium of instruction. The paradox of demand and suspicion (Tickoo1996) could be further reflected through the paradox of access depicted by the report of the National Knowledge Commission (NKC 2007; P. 47), India as it brings out rightly, There is an irony in the situation. English has been part of our education system for more than a century. Yet English is beyond the reach of most of our young people, which make for highly unequal access. Indeed, even now, more than one percent of our people use it as a second language, let alone a first language. However, NKC believes that the time has come for us to teach our people, ordinary people, English as a language in schools. Early action in this sphere would help us build an inclusive society and transform India into a knowledge society."The main aim of the paper is to eradicate the illusion of English language learning. This paper clearly announces the fact that English can be learnt comfortably even by the people who were born and brought up in adverse conditions. **We firmly believe that infrastructure; equipped libraries do not make students but contents, which we cater with zeal of respect and commitment for every student work magically.**

Most of the rural students accomplish their schooling in their mother tongue i.e. Hindi. Though they have attained top ranked marks in core subjects, they remain very poorly perform at English. The students have an unseen and unheard fear and fever over English all these years. Now, let us examine some of the various factors, which leave English as a herculean task and souring grape for rural students even today. To begin with, the first and the fore most factors is the **Rote Learning**.

**Rote learning:** It is a **memorization** technique based on **repetition**. The idea is that one will be able quickly to **recall** the meaning of the material the more one repeats it. Some of the alternatives to rote learning include **meaningful learning**, **associative learning**, and **active learning**. Rote learning is a technique, which avoids understanding the inner complexities and inferences of the subject that learned and instead focuses on **memorizing** the material so that the learner exactly read or heard can recall it. The major practice involved in rote learning techniques is

learning by repetition, based on the idea that one will be able to quickly recall the material (but not necessarily its meaning) the more it is repeated. Rote learning is used in diverse areas, from mathematics to music to religion. Although some schools of thought have criticized it, rote learning is a necessity in many situations. The ability to understand and apply learning implies a deeper knowledge gained. The context of the original learning, time given to learn, motivation of learner, active participation, and progress monitoring of learning are all important factors that affect the degree to which learning is transferrable. Experts have found that learner-responsible learning is an effective way to educate learners. As a result, educators should focus on increasing the role of individual learners in education Active learning.

**Active learning** occurs when a person takes control of their learning experience. Since understanding, information is the key aspect of learning, it is important for learners to recognize what they understand and what they do not. By doing so, they can monitor their own mastery of subjects. Active learning encourages learners to have an internal dialogue in which they are verbalizing their understandings. This and other meta-cognitive strategies can be taught to a child over time. Studies within met cognition (**Met cognition** is defined as "cognition about cognition", or "knowing about knowing.") have proven the value in active learning, claiming that the learning is usually at a stronger level as a result. J. H. Flavella first used the word "met cognition". He describes it in these words: Meta cognition refers to one's knowledge concerning one's own cognitive processes or anything related to them, e.g., the learning-relevant properties of information or data. For example, I am engaging in met cognition if I notice that I am having more trouble learning A than B; if it strikes me that I should double check C before accepting it as fact.—**J. H. Flavell (1976, p. 232)**. In addition, learners have more incentive to learn when they have control over not only how they learn but also what they learn.

**Meaningful learning** is opposed to rote learning and refers to learning way where the new knowledge to acquire relates with previous knowledge (**Ausubel 2000**). Within the cognitive theory of learning, based on the theory of human information processing, the three core processes of learning are **how knowledge**

**is developed; how new knowledge is integrated into an existing cognitive system; and how knowledge become automatic. Ausubel (1967:10)** focused on meaningful learning, as "a clearly articulated and precisely differentiated conscious experience that emerges when potentially meaningful signs, symbols, concepts, or propositions are related to and incorporated within a given individual's cognitive structure" (**Takac 2008, p. 26**).

It often surprises us when we hear that many of the less able and unable students have scored first class marks in their qualifying examinations, although spellings of simple words are like a puzzle for them. We have already suggested that the vast difference in the competence of students seems to be our own creation. The socio-cultural and linguistic backgrounds of students do play an important role in their linguistic skills. However, the general feeling is that such things are beyond the teachers' control. For example, **Ramadevi (2002:234-35)**, in an article entitled "**Inside the Classroom**", says, "We need not dwell too much on the home and socio-economic background of the learners. Likewise, we need not dwell too much on factors like aptitude, age, previous world experience, etc. These are clearly not under the teacher's control and nothing much can be done about them." The question is, are not these factors important and should not they be addressed by the State, if not by the teachers alone?

#### **Inefficiency of the Teachers :**

**ELT** experts like **Perrine**, as quoted by **Hans R. Dua, (1994:109)** tells us that the earlier a child is exposed to a language the quicker it learns to use it: "Since all must use English, it is best for children to begin at an age when it is easiest, when there is no pronounced language-learning differential." Similarly, the better the language model the child hears, the better the language it uses. However, barring a few cosmopolitan and metropolitan schools, most children in our primary schools are exposed to a very limited amount of English and over a period of five or six years irreparable damage is done to the students' ability to acquire English. At the high school level, too, the trend continues. The reasons for this deplorable tendency are obvious. **The teachers themselves, in spite of their good intentions, are not good users of English.** According to **Seshadri (1997:206)**, "Most teachers

of English in our schools are products of our university system. Obviously our departments of English do not equip them with the kind of skills needed to teach English." The English teachers at these schools are untrained and they are unaware of the current trends and techniques of ELT. Most of them are ignorant of useful organizations and websites on the Internet, which offer them good down-to-earth discussions of ideas and techniques. The reason for these unskilled English teachers may be the Government's poor planning on ELT and empowering the teachers. Sometimes teachers engage in tuition classes to supplement their income (Anjana Desai, (1993:39) or they have to teach in classrooms with inadequate infrastructure. These students generally pursue their studies in Government public schools in which the medium of instruction is Hindi, their mother tongue. The methodology of ELT in these schools is bilingual or translation method. The teachers simply translate everything into their mother tongue and explain them on the name of bilingual or translation method. Though this method offers them sound knowledge in the content, it prevents them in acquiring communication abilities in English. The teacher here plays more as a translator than a genuine English teacher does. Hence, virtually, there is no much difference between a Hindi teacher and an English teacher. The case with many of the private English medium schools in rural areas is no better than this. The situation is even worse with them. The teachers who teach English are those who persuaded their schooling in Hindi medium and failed in Intermediate and so. We don't consider this is the case with every organization, but with most of them. Definitely, these poor teachers make English as a nightmare to students and they instigate students to habituate by-heart method, which deprives students the communication abilities in English. Thus, English appeared as a dreadful demon for long years in even in **Collegiate Education**. However, teachers also have their complaints. **Sephardic (1997)** says, "The school teachers say that many of their students are not sufficiently motivated because not all of them go for higher education. Also, they do not see the usefulness or relevance of English in their immediate environment" which deprives students the communication abilities in English. Thus, English appeared as a dreadful demon for long years in even in **Collegiate Education**.

For example, at the second **TELI Conference** held in Hyderabad, **Anjana Desai (1993:39)** complained that there is "no opportunity to...work out integrative syllabi to link school, college and university curricula..." **Desai (1993:38, 41)** says, "The more sinister side to the school teaching situation is that quite often even those who have the required qualifications to be lecturers choose to become school teachers because they can then give tuitions for unwarranted income." Teachers' knowledge and their method of teaching are also subjected to scrutiny by her: "[Students] are lectured to by teachers who have very often not read anything more than the books allotted to them to teach, in the selection of which ... they may not have a say."

**Thus**, our young rural students are deprived of speaking abilities because they have not been properly guided in listening skills. This may be the proper reason why they have not been able to speak English in a proper manner. They have become adept only at writing and reading of English. There should be a comprehensive course for listening and speaking skills. The classrooms should be equipped with audio-video materials. Student **Talking Time (STT)** should be maximized. Now a day's Language lab has come into existence if rural students and teachers also employed with this skill based learning problem of language can be solved. The educational system may use a combination of formal, informal, and nonformula learning methods. The **UN** and **EU** recognize these different forms of learning. In some schools, students can get points that count in the formal-learning systems if they get work done in informal-learning circuits. **Tangential** learning can also be useful; For example, after playing a music-based video game, some people may be motivated to learn how to play a real instrument, or after watching a TV show that references technology or fashion, some people may be inspired to read the original work. Self-education can be improved with systematization. According to experts in natural learning, self-oriented learning training has proven to be an effective tool for assisting independent learners with the natural phases of learning. **This is high time that the concerned authorities and teachers adopted an innovative culture of teaching English. We strongly recommend a firm approach, respect towards students and sensitive attitude of teachers can surely be helpful in teaching English. Only a devoted teacher, who**

was successful inculcating curiosity among the students in spite of their financial irregularities and improper brought up can open the door of English language for rural and mix ability learners. We believe a teacher should also be someone who guides student rather than someone who is a totalitarian in the classroom. The teacher needs to show respect toward the students so the students also respect the teacher. Teacher must not forget the she/he teaches to different students who bring different traditions and customs because the students come from different backgrounds. "One of the keys that is useful for teachers

#### References :

1. Garner, R (1990). "When children and adults do not use learning strategies: Toward a theory of settings". *Review of Educational Research*60: 517-529
2. King, A (1991). "Effects of training in strategic questioning on children's problem solving performance". *Journal of Educational Psychology*83: 307-317.
3. Reynolds, R.E. (1992). "Selective attention and prose learning: Theoretical and empirical research". *Educational Psychology Review*4: 345-391.
4. Demetriou, A., Efklides, A., & Platsidou, M. (1993). *The architecture and dynamics of developing mind: Experiential structuralism as a frame for unifying cognitive developmental theories.*
5. *Monographs of the Society for Research in Child Development*, 58, Serial Number 234.
6. Metcalfe, J., & Shimamura, A. P. (1994). *Metacognition: knowing about knowing.* Cambridge, MA: MIT Press.
7. Gourgey, A.F. (1998). "Metacognition in basic skills instruction". *Instructional science*26: 81-96.
8. Ausubel, D.P. (2000), *The acquisition and retention of knowledge: a cognitive view*, Kluwer Academic Publishers, ISBN 9780792365051.



## **Gender Issues in Madhya Pradesh**

**Praneeta Ojha**

Research Scholar, Gwalior (Madhya Pradesh)

Gender Inequalities refers to the obvious or hidden disparities among individuals based on the performance of gender. This problem in simple term is known as Gender Bias which in simple terms means the gender stratification or making difference between a girl and a boy i.e. a male or a female. Gender is not a women's issue; it is a people's issue. "Femininity" does not exist in isolation from "Masculinity". Gender relations are neither "natural" nor given, they are constructed to make unequal relations seem "natural", and can be naturalised only under the duress of socialisation. Thus there is undue pressure on boys and girls to live up to the established "norms" of masculinity and femininity. While girls endure unwarranted social control, discrimination and domination, boys too suffer from the stereotyping that exists in a patriarchal culture. Discouraged from being emotional, gentle or fearful they are thrust into the role of breadwinners, protectors, and warriors. Thus – unequal gender relations stunt the freedom of all individuals to develop their human capacities to their fullest. Therefore it is in the interest of both men and women to liberate human beings from existing relations of gender.

Madhya Pradesh is called the heart of Nation. In national movement era, along with men women also gave their contribution. Gender inequality has been a major concern in developmental policy and planning in Madhya Pradesh since the last few decades. Girls themselves are now willing to be educated. In recent years many initiatives have been taken by governments for promoting girls' education. Despite these efforts, the gender gap remains a concern for policy makers and planners. Though there has been considerable improvement in female literacy level, 20% gender gap still persists in the literacy rate in MP. A large proportion of girls and women are found lagging behind their male counterparts in many respects like literacy, health, work participation rate and occupy lower social status. While in Madhya Pradesh the GPI at the primary level was 0.96, at the upper primary stage it declined to 0.87. The constitution declares that the equality before the law and the equal protection of laws shall be available for all. Similarly, there shall be no discrimination against any citizen on the ground of sex. Article 15(1) guarantees equalities of opportunities for all citizens in matters of employment. Article 15(3) provides that the state can make any special provisions for women and children. Besides, directive principle of state policy which concern women directly and have a special bearing on their status directly and have a special bearing on their status include Article 39(a) right to an adequate means of livelihood; (d) equal pay for equal work both men and women, (e) protection of health and strength of workers

–men, women, children and Article 42 provides for just and humane conditions of work and maternity relief. Women supporting in production system helps in increasing per capita income and economic development. UNDP's partnership with the Ministry of Panchayati Raj is developing capacities of elected women representatives in Umaria district, Madhya Pradesh in local governance; generating awareness of both men and women on gender issues, helping communities secure access to entitlements and improving information on agricultural practices and sanitation facilities in the district. Highlights –

- The partnership between UNDP and the Ministry of Panchayati Raj is helping locally-elected women leaders in Umaria district of Madhya Pradesh understand their role as elected representatives

- A three-month long training programme for EWRs has enabled locally-elected women leaders to participate in political processes more effectively
- Support provided has aimed at generating awareness amongst both men and women on gender issues and on schemes implemented or monitored by the Panchayat
- Exposure visits to gram panchayats in Jalgaon have helped EWRs generate awareness among villagers on importance of sanitation and the need for toilets in every house
- The number of elected representatives trained in Madhya Pradesh has increased from 16 to 91 percent and from one to 2.4 million across the country between 2008 and 2010-11

In order to improve the survival and welfare of girls and to reverse the distorted sex ratio at birth, both the national and state governments have launched special financial incentive schemes for girls. Though most of these conditional cash transfer schemes are good steps to enhance the status of girls, very little is known about their implementation and effectiveness.

1. **Ladli Laxmi Yojana** - The objective of this scheme is to lay a firm foundation of girls' future through improvement in their educational and economic status and to bring about a positive change in social attitude towards birth of a girl. Under the scheme, National Savings Certificates worth Rs 6 thousand are purchase by the state government in the name of a girl every year after her birth till the amount reaches Rs 30,000. The girl covered under the scheme is given Rs 2

thousand on getting admission in class VI, Rs four thousand on getting admission in class IX and Rs 7,500 on admission in class XI. She is given Rs 200 per month during her studies in class XI and XII. When the girl attains the age of 21 and had not married before 18 years of age, she will be paid the amount in lump sum, which comes to Rs one lakh

2. **Ladli Lakshmi yojana**-Madhya Pradesh - The state government launched the Ladli Lakshmi Yojana towards fostering a positive attitude for girl children in society. This initiative hopes to improve the gender ratio, the education and health of girls and lay the foundation for their future. The popularity of the Ladli Lakshmi Yojana among the people living in the remotest areas of the state can be gauged by the fact that in 2007, 40,000 girls benefitted against the set target of 30,000.
3. **Janani Suraksha Yojana** - The objectives of this scheme include provision of facility of institutional delivery to women with a view to bringing down MMR and IMR. All those pregnant women are eligible to avail benefit of this scheme, who deliver child in the general ward of a government hospital. The pregnant women belonging to scheduled castes and scheduled tribes of BPL families, who have delivery at recognised private hospital, also get the benefit of this scheme. A village woman is given Rs 1400 and an urban woman Rs 1000 on delivery at government hospital. All the services during the delivery are given free of cost.
4. **Gaon Ki Beti Yojana** - The objective of the scheme is to provide financial assistance to motivate talented rural girls for higher education. Under the scheme Rs 500 per month scholarship is given for 10 months to the rural girls, who pass their 12th exam in first division. So far, 60 thousand rural girls have availed benefit of this scheme. There are talented girls in every village. Though they want to study further after passing Class XII exams, they are unable to do so since colleges are situated in towns and cities and their families' are not well-off to bear the expenses of their education. Even well-to-do families avoid this expenditure.
5. **Mukhyamantri Kanyadan Yojana**-The scheme was introduced to provide financial support to girls of marriageable age from poor families including destitute, widows and

divorcees. It is being implemented through Department of Social Justice covering the entire state. The eligibility criteria that a person or family should fulfill to be a beneficiary of the scheme include - the family should be domiciles of Madhya Pradesh and should currently be living there, the family of the applicant girl should be poor, and the age of the girl should be 18 years or more. Every beneficiary is provided in kind- clothes, ornaments, utensils, pressure cooker, LPG gas cylinder and stove, sewing machine etc. worth of Rs. 9,000. The organization which conducts the marriage function is given Rs. 1,000 to meet the expenses. Originally, the financial incentive given under the scheme was Rs. 5,000.

6. **Pratibha Kiran Yojana** - The objective of this scheme is improving educational standard of girls belonging to urban BPL families, who pass their 12th exam in first division. But she has to take admission in higher classes the same year. Every girl covered under the scheme is given Rs 500 per month for degree courses for ten months and Rs 750 per month for technical courses as incentive money.
7. **Free Cycle Distribution** - The objective of this scheme is to motivate girls to continue education after primary level. Under the scheme, free bicycle is given by the state government to a rural girl, who takes admission in class IX in another village. The scheme's benefit is given to village girls belonging to scheduled castes,

scheduled tribes, backward class as well as general category.

The schemes are introduced with a specific set of objectives in order to have a desired impact. In many instances, it is too early to say whether the desired impact is visible or not. This desk review of the selected schemes has its own limitations. The above discussion reveals that there has been considerable improvement in access situation resulting in an increase in enrolment of boys and girls. Efforts need to be initiated without any further delay. It is necessary to reduce the existing gender gap by gender specific interventions and ensuring gender friendly environment.

#### References :

1. Vyas Hansa – Madhya Pradesh me swatantrata Sangram – Pg No. 219
2. Pandey Anand and Pandey Archana – Samanya Adhyayan – Pg No.254
3. Baghel D.S. and Baghel Kiran – Demography - Pg No. 299
4. Kumar. V – Janankiki – Pg No.277
5. Carole A. Beere - Sex and gender issues: a handbook of tests and measures
6. [www.planningcommission.nic.in/plans/stateplan/sdr\\_pdf/shdr\\_mp95](http://www.planningcommission.nic.in/plans/stateplan/sdr_pdf/shdr_mp95)
7. [www.measuredhs.com/pubs/pdf/OD57/OD57](http://www.measuredhs.com/pubs/pdf/OD57/OD57)



## Experiential Marketing

**Bhavana Sharma**

Lecturer, Vaidik Balika PG College, Jaipur

Experiential marketing is a unique concept of marketing. It is a part of promotion and a two way communication or interaction between the consumer and the marketer. It is a direct experience of a brand, product or service. It is a new approach to market the products or services. The direct and personal experiences allow the people to interact with the product and to help them in making purchase decisions. This will generate an emotional attachment of the consumers with the products, brands or services and ultimately help in increase sales volume and brand image.

The main aim of experiential marketing is to connect with the consumers in such a way that they respond to the offering (product, brand or service). In Experiential marketing programs consumers are active participants and directly connected with the product or service or its marketing effort. Some examples are free samples for trial, live demos of product offering so that they can better understand the product which may lead to positive change in consumers' behavior and attitude.

### Objectives

- Building long-term relationship with consumers
- Creating awareness
- Change the behavior and attitude of consumers
- Increase in loyalty and product trial
- Increase in interaction and direct experience of the product offering with the consumers
- Create relevant memories
- Increase in brand image
- Drives word of mouth

### Why Experiential Marketing

In a 2005 Experiential Marketing Survey by Jack Morton Worldwide, nearly three-quarters of consumers said that participating in a live marketing experience would increase their "purchase consideration," and close to 60 percent said it would result in a quicker purchase. For certain target audiences, experiential marketing exerts an even greater influence on sales. Nearly 80 percent of teens surveyed by Jack Morton said experiential marketing would increase their consideration of a purchase, and 60 percent of women said it would be more likely to lead them to actually purchase a product than would TV or the internet.

So we can say that in most of the people personal and direct experiences shape their opinions, behaviors and buying preferences more strongly than to get information through advertising because traditional promotional means are not effective any more as consumers block or ignore the advertising messages that come in their daily lives. That is why experiential marketing is more effective than traditional promotional means.

### Features of Experiential Marketing

- It engages multiple senses at the same time.
- It helps the consumers to remember the past experiences or benefits that they received.
- It treats the consumers not just as rational decision-makers but also as emotional decision-makers.
- It builds the customers' loyalty because customers are pleased with customized experiences with the product.

### Reasons To Use Experiential Marketing By Marketers

- **When your product is new to the market:** - It needs huge amount to launch a new product, so marketer has a choice to participate in a community fair, streets events or a small launch party involving the right or best prospects and media also because they are the people to popularize your product.
- **Immediate Sales:** - In experiential marketing consumers participate in street events & launch parties and get attached with these at emotional level with lots of fun and excitement.
- In the Jack Morton survey, nearly 85 percent of women said they would bring family or friends to a live marketing experience, and three-quarters said they'd tell others about it.
- This is the reason for effective and immediate sale.
- **To Face Competition:** - As we know 'seeing is believing', everyone wants to get direct experience of any product or service rather than just heard about it. Sometimes it happens that the product gets placed in retail stores but it is not necessary that it will come out of that, may be it lost among others. So it is very necessary to make aware your right consumers to make them participate in events and fairs, then only the marketers face the competition and even stand at the top.

- **Positive Word of Mouth:** - The Jack Morton survey revealed that eight out of 10 people who'd actually participated in experiential marketing in the past said that they had told others about their experiences. So not only just interact and communicate with your consumers but create a memorable and relevant experience for them which will lead to better sales, profits, loyalty of consumers, awareness of the product or service, long term relationship and many more.

### Schmitt's Approach To Experiential Marketing

Schmitt's is the great initiator of experiential marketing. He had proposed a framework which is based upon two elements: strategic experience modules (SEM) which are different types of experiences and experience producers (ExPros) which are different types of means that deliver or convey these experiences.

He identifies five different types of SEM's are:

**Sense:** These are sensual and tangible aspects of a product that appeals to the five senses of human being. These are used in differentiating the product or service, to motivate the potential consumers and to create a sense of value in the minds of consumers.

**Feel:** To induce the effect that adheres to the brand and the company. Positive and negative feelings toward a product or service will influence the extent to which it is consumed.

**Think:** To encourage consumers to involve or engage in elaborative and creative thinking that may result in re-evaluation of company or brand.

**Act:** Creation of experiences through behavior on the part of the consumer, either privately or in the company of others. The goal is to change the long-term behavior and attitude or habits in favor of particular product or service.

**Relate:** Relate marketing expands beyond the individual's private sensations, feelings, and actions by relating the individual self to the broader social and cultural context reflected in a brand.

There are five different types of experience providers (ExPros) that convey the different experiences:

**Communication:** advertising, public relations campaigns, visual and verbal identity and signage like logos, names, colors etc.

**Product Presence:** design, packaging, display, labeling.

**Co-branding:** involves event marketing, sponsorships, alliances, product placement in movies etc.

**Spatial Environment:** internal & external design of corporate offices, shops outlets, consumers and trade

spaces etc.

**People:** salespeople, company representatives, customer service providers, call centre operators.

### **Difference Between Traditional And Experiential Marketing**

- Traditional marketing views consumers as rational decision-makers who emphasize on product features, benefits and superiority comparative to other products whereas experiential marketing views consumers as rational as well as emotional human beings who are concerned or focus on achieving pleasurable experiences.
- Information flow in traditional marketing is tends to be one-way from marketer to potential consumers and expect that they read, listen and view his message whereas in experiential marketing marketer would expect the consumers respond to his message.
- The consumers get convinced by the information or message is the base of traditional marketing and marketers expect that potential consumers think over the message and then make a buying decision whereas experiential marketing directly appeals to the five senses of the consumers and marketers expect that consumers respond not only at rational basis but also at emotional level.
- Traditional marketing focuses on images, symbols, tagline with lot of repetition but consumers generally forget the brand to which these images, phrases, symbols are associated whereas in experiential marketing consumers just remember the pleasurable experiences of product or service, what they feel at marketer's store or in events.

### **Advantages of Experiential Marketing**

- It engages all five senses, so consumers enjoy and remember the experiences with the brand.
- It attracts new customers with creativity and uniqueness.
- It is a positive word of mouth media.
- It changes attitude and buying behavior of consumers.
- It provides the opportunity of personal feedback of consumers.

### **Disadvantages Of Experiential Marketing**

- Marketers need to make sure that people know what you are advertising and then only they get connected with you and your brand.
- If marketing campaign produces negative experiences, then all in vain.

- Some busy customers would not like to participate in experiential marketing campaigns.
- It is very expensive to develop experiential marketing campaign.

### **Conclusion**

Experiential Marketing is a revolutionary marketing concept to face competition, to increase in word of mouth and to build long term relationship with consumers. It treats the consumers as rational and emotional decision-makers. It is possible though experiential marketing to attract the masses by means of trade shows, events, conventions etc. Its effectiveness is more than traditional promotional means. As the development of internet and other types of technology, marketers have to deal with more smart consumers than ever before because the consumers like to experience the product before buying it. Digital technology makes the consumers not only to interact with and experience a product or service but also they like to share their experiences with other in real time. So the future of experiential marketing lies in social media and in creating digital brand experiences.

### **References :**

#### **Websites**

1. Stinson D Mark (2009). Ezine Branding Articles. 8 Objectives of Experiential Marketing Campaigns for Brand Experiences. Retrieved Sep. 2 2013, from <http://ezinearticles.com/?8-Objectives-of-Experiential-Marketing-Campaigns-For-Brand-Experiences & id = 1961192>
2. EMF. Welcome to Experiential Marketing Forum. Retrieved Aug. 28 2013, from
3. <http://experientialforum.com/#sthash.Lwmfco9d.dpuf>
4. Wanda Thibodeaux (n.d.) Chron. What Is Experiential Marketing Defined As. Retrieved Sep. 3 2013, from
5. <http://smallbusiness.chron.com/experiential-marketing-defined-as-23722.html>
6. Vong Katherine (2009, August 20). Trendreports. How Brands Are Using Experiential Marketing to Influence Consumer Buying. Retrieved Sep. 5 2013, from
7. <http://www.trendreports.com/article/experiential-marketing>
8. Gordon T. Kim (2006, June 19). Entrepreneur. Using Experiential Marketing. Retrieved Sep. 10 2013, from 9. <http://www.entrepreneur.com/article/159474>

10. Bright Knowledge. What is experiential marketing? Retrieved Sep.10 2013, from
11. <http://www.library.mun.ca/guides/howto/apa.php>
12. Affect Talent. Experiential Marketing is the future of marketing. Retrieved Sep.11 2013, from <http://affecttalent.wordpress.com/2012/08/14/experiential-marketing-is-the-future-of-marketing/>
13. Kevin Johnston (n.d). Difference between traditional marketing and experiential marketing. Retrieved from Sep.12 2013, from
14. <http://yourbusiness.azcentral.com/difference-between-traditional-marketing-experiential-marketing-4574.html>

#### **Journal**

15. Schmitt Bernd (1999). Experiential Marketing. *Journal of Marketing Management*, 15(1-3), 53-67. doi: 10.1362/026725799784870496

#### **E-Books**

16. Schmitt Bernd (2013). Summary: Experiential Marketing. Retrieved from
17. <http://books.google.co.in/books?id=8BkS0wctWCcC&printsec=frontcover&dq=experiential+marketing&hl=en&sa=X&ei=skxVUqzSMMLKrAezxoCYBg&ved=0CD8Q6AEwAw#v=onepage&q=experiential%20marketing&f=false>
18. Smilansky Shaz (2009). *Experiential Marketing: A Practical Guide to Interactive Brand Experiences*, 252. Retrieved from
19. <http://books.google.co.in/books?id=Ehm2CTUojlgC&printsec=frontcover&dq=Experiential+Marketing:+A+Practical+Guide+to+Interactive+Brand+Experiences&hl=en&sa=X&ei=NVFVUpn3BsaHrQeN54G4DQ&ved=0CC0Q6AEwAA#v=onepage&q=Experiential%20Marketing%3A%20A>

## Liberalization: Development and Issues

Dr. Rajat Kumar Sant

Associate Professor, Maharaja Agrasen College,  
University of Delhi, Delhi

Shodh Shree



shodhshree@gmail.com

**Liberalization** refers to a relaxation of government restrictions, usually in areas of social or economic policy. It means the removal of control to encourage economic development. **Economic liberalization** refers to fewer government regulations and restrictions in the economy with active private participation for greater efficiency and effectiveness. According to World Bank **Trade liberalization** is defined as any act that would make the trade regime more neutral—nearer to a trade system free of government intervention” (ibid. Volume 7, 13). It pointed the success of East Asian countries due to liberalized trade regime.

It was in the pre-liberalization period that India had an inward-looking and short-sighted policy. The whole concept was termed as 'socialism'. It relied on central planning, licensing and government restrictions on business units, capacity, choices and source of raw materials, location and so on. MRTP dominance too led to inefficient and non-competitive environment for Indian economy resulting in making its losses.

In 1991, India faced balance of payment crisis. It had to pledge its gold to foreign countries as committed to International Monetary Fund (IMF). The then Prime Minister Narsimha Rao decided to take bold decisions on the advice of the Finance minister Dr Manmohan Singh. He decided to reform the economic policies such as opening of international investments and trade, instigation of privatization, tax reforms and inflation- controlling measures. The main aim of the government was to transform the socialism system to capitalism to achieve high economic growth and industrialization in India.

The reform process of 1991 led to two-fold shift in the Indian economic policy. The concept of free-market gave freedom to explore and operate. It gave exposure to free-market movement of capital investment and new technology in India through the New Economic Policy guidelines.

### Framework of New Economic Policy

During the mid 1980s when Rajiv Gandhi was the head of Congress, made an attempt to change policies of business, licenses and attitude towards MNCs operating in India. This attempt succeeded under the governance of Narsimha Rao (1991-96). The aim was to allow competition and economic growth of the Indian economy and business emphasizing the importance of quality, performance and technology.

### **Pre-reform scenario**

Prior to liberalization era, the policy adopted by India was inward-looking neglecting the benefits of a free-market economy. It focused on centralized planning and MRTP Act kept a check on corporate mergers and acquisition; and activity discouraged foreign investments in capital markets to protect or guard domestic industries. The socialism concept alone was not beneficial for India. There was a need of freedom and transparency in the Indian business market.

### **Reform process and imperative**

Soon after 1991 there existed a two-fold increase in the policy of Indian economy at global as well as at national level; integrating the two. India became exposed to new technology, innovations due to the allowance of free movement of capital investment.

FDI had increased the inflow in Indian economy to four times in total; compared to actual inflows during 1991-96. In 1991 actual inflows were 3500 million leading to 206,100 million in 1996. Whereas for FDI in India, an increase from 5300 million in 1991 to 956,900 in 1996. Considering state-wise in India from 2008-2011, Mumbai contributed 35% and Delhi contributed 19% to FDI inflows.

Besides liberalizing the policy of FDI; Government has provided infrastructural facilities that are considered essential for sustainable industrial development.

The state has given utmost priority for the development of new infrastructure facilities; upgrade the existing infrastructure to ultimately transform them to world-class standards. The State Government has taken several initiatives in the recent years with a view to providing the infrastructure (Power, Ports, Roads, Railways, Gas, and Communication etc.) as per the requirements of modern industry.

The NEP programme has exposed the economy to international participation and investments. The service industry has grown significantly in areas such as tourism, hospitality, banking and financial services. Mergers and acquisitions have also taken place globally. Liberalization has thus resulted in a paradigm shift. The example of TATA Steel is a case in point (see CASE 1.1).

#### **CASE 1.1**

#### **Tata Steel after Liberalization**

In 1992, **Tata Steel** took the decision to become the lowest-cost steel producer in the world. However, it

realized that it had incomplete knowledge of its actual costs. Therefore, it began the process of cost invention with the help of management information system (MIS). Next, it plotted the program to analyze its position compared to its competitors in the world market. The invention and program revealed that Tata Steel was the cheapest hot metal producer globally. So it decided to maximize its comparative advantage of being No.1. Also the company knew its competitive disadvantage in the high ash content of Indian coal. This led to various process changes by Tata to solve the problem. Finally and importantly, Tata Steel also managed to raise labour productivity by 30 percent.

At the macro level, liberalization has led to more competition due to increased market players. Indian companies like Tata, NCCO, Reliance and so on too are now free to expand their capacities, enter new areas and acquire or merge with new companies globally.

#### **Impact of Liberalization**

The wide prospective of liberalization has led to the opening of national boundaries to increase business of trade, increasing the employment level, enhancing skills and technology, and disinvestments for extensive growth and profits.

The impact of liberalization has been greatly on majorly three aspects;

1. Foreign direct investment (FDI)
2. Human resource management (HRM)
3. Privatization

India is widely recognized as an emerging global economic power. The upward moving growth curve of different sectors has contributed to the GDP growth due to the impact of liberalization on FDI, HRM and Privatization. This concept has paved a developmental area for Indian economy to grow intensely. The following aspects will be discussed in detail in the following chapter.

#### **Impact of Liberalization on FDI**

FDI is a long term **foreign direct investment** made by the resident of an outside country in the host economy where the investment is based. FDI is proposed with the intention to execute managerial control or participate in the foreign firm's management.

Realizing the benefits of the open-door policy and globalization in India, the contribution of private foreign capital was welcomed. Major changes were made to attract FDI by the Industrial Policy

Resolution 1991. Reforms were made to stimulate development of financial and trade relations in developing countries; by moving to market-oriented and private sector led economies. There has been widespread reduction and removal of trade barriers, deregulation of internal markets, privatization and liberalization of technology and investment flows in the economy. TNCs have been considered as a process of development. The system and procedure of TRIPS, TRIMS and ISO standards have also become the pre-requisites for contributing to the production and trade. Schemes of regional groupings such as EU, NAFTA, ASEAN and the like have reduced barriers to FDI; facilitating intra-regional investment and trade flows.

#### FDI inflow in 10 prime Industries

The sector-wise analysis of FDI inflow in India reveals that maximum FDI has taken place in the service sector (financial and non-financial) including telecommunication, information technology, travel and many others.

The service sector attracted 21 percent of the total

FDI equity inflow in India with worth Rs 120,164.81 crore during April-March 2011. While telecommunications including radio paging, cellular mobile and basic telephone services attracted largest amount of FDI worth 47,107.99 during the same period. The telecom industry is one of the fastest growing industries in India. Automobile industry with 45% growth rate had attracted FDI inflow worth Rs26,783 crore. Following this is power sector which generated 26,645 crore during the financial year April-March 2011. The Metallurgical industries received FDI worth Rs18222 crore. This has led to expansion of latest technology and quality of the products in the metallurgical industries in India. Other sectors like chemicals, Drugs & Pharmaceuticals, Real estate etc have significant role in attracting FDI and economic growth in India.

Based upon the data given by Department of Industrial Policy and Promotion in India, there are 62 sectors in which FDI inflows are seen but it is evaluated that top ten sectors attract almost 70% of FDI inflows.

Country	2003	2004	2005	2006	2007	2008	2010	2011
INDIA	4.30%	8.30%	6.20%	8.40%	9.20%	9.00%	7.40%	8.30%

**Table 1:** GDP growth rate from 2003-2011 (affected by FDI inflow)

According to United Nations Conference on Trade and Development (UNCTAD) in a report on world investment prospects titled, 'World Investment Prospects Survey 2009-2012', India had been ranked at the second place in global FDIs in 2010 and will continue to remain among top five attractive destinations for international investors during 2010-12 period. India's strong economic growth in recent years is averaging more than 8 percent. The main drivers to this growth have been economic reforms and opening up of the global economy.

- **India v/s China FDI report** The status is that during the decade 2000-2010, India grew at a rate of around 7% while China was growing at a much faster speed of around 10% annually. India is the 11th largest economy in terms of the exchange rates while China occupies the 2nd position surpassing Japan. Compared to the estimated \$1.3123 trillion GDP in India, China

has an average GDP of around \$4909.28 billion. In case of per capita GDP India lags far behind China with just \$1,124 compared to \$7,518 of the latter.

A survey conducted in 2002 by Madison states that in 1870, both the Asian giants started from equal levels. Due to First World War, India forged ahead of China and this continued till 1950. As a result of the liberalization policy adopted by China in 1978, the positions were exchanged. China forged ahead of India. And India's liberalization policy came much later due to which it was unable to extract as much growth as China did during this period.

- **FDI Terms & Conditions**

The government policies in FDI have offered opportunities for foreign investors to invest 100% in sectors such as real estate, power trading, processing, development of new

airports, laying of natural gas pipelines, petroleum infrastructure and warehousing of coffee and rubber. Also in the retailing industry in India 51% FDI in single brand outlet is permitted. The limit for telecom services firms have been raised from 49% to 74%. The foreign investment limits in Public Sector Refineries has been raised from 26% to 49%. FDI in Civil Aviation up to 74% will now be allowed through automatic route for non-scheduled and cargo airlines, as also for ground handling activities. 100% FDI in aircraft maintenance and repair operations has also been allowed. India has decided to allow 26% FDI and 23% FII investments in commodity exchanges, subject to the provision that no single entity will hold more than 5% of the stake. India has also allowed 100% FDI in mining of Titanium, a mineral which is abundant in India. Sectors like credit information companies, industrial parks and construction and development projects have also been opened up to more foreign investment. India is focusing for further growth in manufacturing, development etc. It is also worth mentioning that savings rate has also increased from 23% to 31% in 2011-12. The country also needs to finance its widening current account deficit, which has been projected at 3.5% of the GDP for 2010-11.

• **Role of FDI**

Foreign investment has long been considered as one of the most important elements of the nation's economic prosperity. The role played by FDI has majorly laid emphasis on technology, resources and employment of the nation. This has been explained in the following chapter.

- 1. In increasing the domestic financial resources:** The profits are repatriated only when a project yields return. Part of the profits may be reinvested in the host country. Also it is advantageous for banks that lend finance. The

capital amount must be repaid with fixed interest irrespective of the performance of the project. Secondly, domestic firms may not be able to carry out the same projects as foreign firms due to the additional costs to be borne for technology, skills and market access. May be possible that lower-income countries maybe unable to repay the amount and / interest on the borrowed capital. BOP implications must also be considered simultaneously to avoid disequilibrium. If the borrowed cost of capital seems high, the country allows investment in the form of FDI inflow, mergers and acquisitions for development.

- 2. In escalating technology and skills:** Technology upgradation is a pre-requisite for the growth of developing countries. It has also spread the importance of R&D in sectors. The first benefit of new technology goes to its recipients. Second benefit goes to the recipients' suppliers, customers and institutions with which they have direct dealings.
- 3. In building export competitiveness:** The providers of FDI have a better market access to established brand names, warehousing, transport facilities, trade finance, and channels overseas and marketing links. They have already built faith in the eyes of their customers. They are flexible and adaptable to the readily changing technologies and shifting demand in different markets. If the domestic and international policy environment is supportive, they have huge scope and potential for export competitiveness.

	1993-94	1999-00	2004-05
Rate of Unemployment	6.06	7.31	8.28
Number of unemployed (million)	20.27	26.68	34.74
Population (million)	893.68	1005.05	1092.83

**Table 2:** Economic Survey 2004-05 of the Government of India

4. **In Generating Employment :** The number of unemployed and the rate of unemployment in India continue to rise. The employment generation and its quality enhancement can be achieved with the help of FDI strategies and investments. The improvement in employment generation will certainly improve utilization of resources and technology to the optimum level.

#### **Impact of Liberalization on HRM**

Before we begin with the impact of liberalization on HRM, it is important to understand its meaning. According to Edwin Flippo, "Human resource management is defined as planning, organizing, directing and controlling of procurement, development, integration, compensation and maintenance of human resource to the end of achieving organizational objectives as well as societal objectives."

It is pertinent to note that while technology, capital investments and information systems are important to provide company with a competitive edge; equally important are the people and human resource policy. Today, employees are recognized as the key to building a globalised organization. There exists a strong link between human resource strategy and corporate plans.

#### **Highlights of economic and environmental factors affecting HR function**

1. An increase in competitive pressures from MNCs and TNCs.
2. An increase in domestic competition from more foreign players.
3. An awareness of being more quality conscious.
4. A need for training and upgradation of skills.
5. An increase in opportunities for participation in the international markets.
6. A shift from a controlled economy to a market-driven economy.
7. An increase in recruitment costs, wages and salary expectations.
8. A greater demand for professionalism.
9. Entry of new financial sector companies in the business arena.
10. A revolution in technology has brought in positive changes.
11. Realization of need for manpower productivity.

12. Awareness about the importance of competitiveness in a rapidly changing environment.

The knowledge of technological upgradation is most important for the people who run this technology for productive activities. So for that the manpower needs to be skilled, trained regularly to fairly utilize the technology in the best way. Also the cause and effect of growing number of retrenchment, layoffs and attrition rate has to be taken sincerely by the government and the solutions too have to be taken.

#### **Issues in HRM Post- Liberalization**

Although there has been significant growth in the economy, still there remains a lot to be achieved with regard to labour, poverty and subsidies.

**Labour issues:** The issues related to labour are :

1. Retrenchment of workers of sick PSUs.
2. VRS and related schemes for employees of over-staffed but profitable PSUs.
3. Protection of employees in the private sectors.
4. Over-staffing at different levels in the government.

For this, a rational and fair human resource policy should be executed to deal with related issues with participation of different stakeholders.

**Poverty issues:** Liberalization has yet to liberalize the poor from debts, price hikes and the likes. It is necessary that the gains of the reform programme benefit the people, both in terms of employment generation and enhancing the quality of life of those who are employed. It is stated that China has reduced its poor income groups due to globalization and FDI policies. For India, poverty has been reduced in income, health and education and FDI flows have developed every year. There still exists lack of infrastructural facilities, advance opportunities, primary education to all, and vocational training leading to unskilled jobs and so on.

Urban poverty has reduced drastically but rural poverty needs to be resolved through the following steps:

1. Focus on infrastructural development
2. Implement effective policies in areas of agriculture and other sectors

3. Win the trust of rural population
4. Clear vision
5. Focus on financial and educational development of the people

**Subsidies issue:** it is believed that only 15% of the subsidies reach the needy. A proper plan has to be made to rationalize subsidies to protect the comparative advantage of the nation.

The challenge of HRM system is to meet the needs of the consumer and to take advantages of the market opportunities in terms of quality, cost and on-time delivery of the product or service.

#### **Liberalization and changes in Human resources from 1991-96**

1. Companies have emphasized greatly on upgradation of managerial and professional skills.
2. A flatter organizational structure had resulted in reduced level of hierarchy and enhanced empowerment. This has led to improved employee involvement and motivation.
3. Middle-level management became more participative, result-oriented and decisive.
4. The insecurity levels amongst employees reduced with increase in responsibility.
5. The process of transparency and openness, improvement in communication channels had resulted in better inter-personal relations and networking.
6. Changed recruitment policy resulted in high salaries to young employees as a sign of growth. Also more responsibilities to young employees as faith on their decisions.
7. Provisions of VRS for employees.
8. Emphasis on employee commitment to customer and building the trust of the latter.
9. Integration of various department or divisions to create a goal-oriented and competitive organization.

#### **Impact of Liberalization on Privatization**

In the contemporary books, the term privatization is considered as one of the most revolutionary innovations in economic policy of majority of the nations, including India. The concept of **privatization** refers to introduction of private control and management in the public sector

undertakings. It means to increase the role of private sector in owning the assets in an activity. According to B.L. Johan Nellis, "Privatization is the general process of involving the private sector in the ownership or operation of a state owned enterprise. Thus, the term refers to purchase of all or a part of company. It covers 'contracting hour' and the privatization of management through management contracts, leased or franchise arrangements.

Although the past vision of India of industrialization was fulfilled by public sector undertakings by making heavy investments, by developing infrastructure, by developing import substitutes, by promoting balance regional development and human resource management and finally by preventing undistributed wealth, due to the listed reasons, PSUs were unsuccessful in meeting their objectives to an optimum level. In fact the overall return on total investment of Rs 1,600,000 million was 2.8 percent in 1995 according to the Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry (FICCI), which was no great profit.

#### **Reasons why PSUs were not successful in meeting their objectives;**

1. Inefficiency in planning, technology, skills and investments
2. Inefficiencies in operations and overutilization of capacity
3. Lack of proper accountability
4. Absence of appreciation, less incentive compared to performance
5. Lack of motivation and low productivity
6. Overstaffing
7. Political intervene in decisions related to productivity, location and manpower planning.

These inefficiencies led to privatization of Indian public enterprises.

#### **Privatization as a powerful strategy in the development of Indian economy**

Since early nineties, India has instigated privatization in major sectors such as power, finance, telecommunications and petrochemicals. Still there needs to be a continuous effort made towards education, health, finance and information networks. In the next ten years, India's needs are estimated at about Rs 7,380 billion and savings of 30

percent if even two-third of the amount is to be met. Also to improve the quality of goods and services, the number of producers needs to be increased.

The scope of **privatization** is diversified. It has resulted in betterment of the economy with alienation with the listed scope:

1. **Intense competition:** privatization will lead to more competition that will be responsive to customers and technologies.
2. **Administration as a suitable utilization:** a public servant or administrator will protect the interest of the consumer by implementing programmes for development.
3. **Reduction of additional tax burden:** in case of privatization, the government does not have to bear the losses of public enterprises and non existence of such transferable losses also.
4. **Availability of resources:** proper and sustainable utilization and consumption of resources can be attained through privatization because government already has revenue deficit through public borrowings and increased consumption expenditure.
5. **Controlled budgetary deficits:** since these deficits generate inflation and curb economic development, a step taken by privatization of public enterprises has reversed the scenario.

#### **Benefits of Privatization**

Although there are certain disadvantages to privatization such as social unrest, political instability, formation of cartel and requirement of dynamic management, the ratio of benefits is much more than this. To describe the emergence of privatization that has resulted in major beneficial aspects, a list of its benefits is explained in the following chapter.

1. **Increased employment:** as a result of rich profits and new capital, the new employment opportunities have increased.
2. **Decreased public debt:** this can be reduced with the help of privatization by multiplying money and removing debt in divisions.
3. **Decreased budgetary deficits:** in 1999-2000 and 2009-10, the fiscal deficit was 5.4% and 6.8% of GDP respectively, which are below the 10% return on investment as PSUs yield. Privatization has taken initiative in this too.

4. **Provision for increased resources:** the resources can be increased by privatization after the companies generate atleast estimated profits. These companies can then raise additional resources for further growth.

5. **Increased accountability:** the private sector's strength lies in its discipline of maintaining records of balance sheet and other financial statements.
6. **Resist political interference:** since this factor results in no good solution, it needs to be eliminated before any further implementations.
7. **Rise in GNP:** after the companies get profits and growth, the GNP and per capita income rise result in reduction of poverty of the country.
8. **Faster decision making:** this is a special need in the market of business, and privatization has increased the pace of decision making because its entire process is quick and correct.
9. **Clear objectives:** the importance of clarity of objectives is known by private enterprises. Their main objectives are generating profits and fulfilling their corporate social responsibility.

Even the Public sector banks are privatized with the firm effect of promoting sustainable development and economic stability.

The 12 partially privatized PSBs are the State Bank of India, State Bank of Bikaner and Jaipur, Oriental Bank of Commerce, Dena Bank, Bank of Baroda, Bank of India, Corporation Bank, State Bank of Travancore, Syndicate Bank, Vijaya Bank, Andhra Bank, and Indian Overseas Bank (Report on Trend and Progress of Banking in India, RBI, 2002). New Bank of India later merged with Punjab National Bank (a nationalized bank).

In countries like USA, the privatization concept is practiced smoothly. As for India, it has been accepted after 1991 and has benefitted majorly through this reform.

#### **Conclusion**

Economic liberalization in India is a driving force of globalization. The efforts made by Rajiv Gandhi and the execution of the efforts by Narsimha Rao has resulted in economic reforms in India since 1991. Liberalization refers to a relaxation of government restrictions, usually in areas of social or economic policy. In the pre-liberalization period India had an

inward-looking and short-sighted policy encompassing socialism policy. Due to balance of payment crisis in 1991, it was decided to reform the economic policies such as opening of international investments and trade, instigation of privatization, tax reforms and inflation-controlling measures. A shift was made from the socialism system to capitalism to achieve high economic growth and industrialization in India. The aim of New Economic Policy of 1991 was to allow competition and economic growth of the Indian economy and business emphasizing the importance of quality, performance and technology. FDI had increased the inflow in Indian economy to four times in total; compared to actual inflows during 1991-96. The NEP programme has exposed the economy to international participation and investments. The growth of different sectors has contributed to the GDP growth due to the impact of liberalization on FDI, HRM and Privatization. The contribution of private foreign capital was welcomed. FDI is a long term foreign direct investment made by the resident of an outside country in the host economy where the investment is based. The sector-wise analysis of FDI inflow in India reveals that maximum FDI has taken place in the service sector (financial and non-financial) including telecommunication, information technology, travel and many others.

The status is that during the decade 2000-2010, India grew at a rate of around 7% while China was growing at a much faster speed of around 10% annually. India could not extract much from liberalization as China could due to China's prior approval of Liberalization policy in 1978.

The government policies in FDI have offered opportunities for foreign investors to invest 100% in different sectors. In the retailing industry in India 51% FDI in single brand outlet is permitted.

FDI plays role in increasing the domestic financial resources, in escalating technology and skills, in building export competitiveness and in generating employment. Also today, employees are recognized as the key to building a globalised organization. There exists a strong link between human resource strategy and corporate plans. The issue that evolves in HRM is the growing number of retrenchment, layoffs and attrition rate that has to be taken sincerely by the government and the solutions too

have to be taken. Focus should also be on resolving labour, poverty and subsidy issues. Some changes such as flatter structure of the organization, developed skills, VRS scheme, middle-management involvement and employee's commitment to customer have improved the system of HRM after liberalization. The concept of privatization refers to introduction of private control and management in the public sector undertakings. Although the past vision of India of industrialization was fulfilled by public sector undertakings by making heavy investments and by developing infrastructure. But PSUs were unsuccessful due to inefficient planning, lack of motivation, accountability, overstaffing and so on. Since 1991, India has instigated privatization in major sectors such as power, finance, telecommunications and petrochemicals. The scope and benefits of privatization has been immense such as increased jobs, accountability and GNP, decreased public debt and fiscal deficit, solution for resource shortage and decision making.

India's post-liberalization position was rigid and packed. But in the nineties, it showed the signs of recovery due to the influence of liberalization policy formed by government. The impact of liberalization was majorly on foreign direct investment (globalization), human resource management and privatization. With the expansion of these three aspects, the country has by far reversed its situation of deficits and borrowings but there still remains a lot to be disciplined and maintained.

#### References :

1. 'Economic liberalization' in South Asia by Ric Shand, Macmillan Publishing
2. 'Industry under economic liberalization : The case of Indian electronics' by Joseph, K.J.
3. 'The process of financial liberalization in India' by Kunal Sen and Rajendra R. Vaidya
4. 'Globalization, structural change and poverty' /D.K. Ghosh, Rachita, Jawa by Gaur, Keshav Dev, Sunrise Publications
5. 'Coping with liberalization : The Industry's Response to New Competition' by Palande, P.S., Response books
6. 'Foreign investment in India : Liberalization and WTO the emerging scenario' foreword by

A.K. Seth, Deep Deep Publication

7. 'Journal of Services Research', apr-sept 2012 (vol 12 no.1)
8. 'Globalization and Indian liberalization' by Shiva Ramu, S, South Asia Publications
9. 'Human dimensions of liberalization'( a survey report by Rao, S L, AIMA Publication
10. 'India's software industry : State policy, Liberalization and industrial development' by Heeks, Richard, Sage publications'
11. 'Globalization of Indian Economy' by Vinayakam, N, Kanishka Publishers, Distributors'
12. 'India's liberalization experience : hostage to the WTO' edited by Suparna Karmakar, Rajiv Kr, Bibek D, Sage Publication'
13. 'Going private : Privatizations around the world' by Clutterbuck, David, Mercury Books'
14. 'Foreign direct investment inflows to India' by Iqbal, Badar Alam, Ajanta Publications'
15. 'Privatization : Diversification of ownership of public enterprise' / Edited by T.L. Sankar, Y.V. Redy, Booklinks Corporation'
16. 'Privatization in India : challenging economic orthodoxy' by Mohan, T.T. Ram, Routledge Curzon'
17. Privatization of public sector undertakings; Rationale and feasibility' / Edited by Debendra K. Das, Deep Deep Publications'
18. Globalization in China, India and Russia : emergence of national groups\_ Global strategies of firms'/ed ,Academic Foundation'
19. 'Privatization : experience of Asian countries' by Asian Productivity Organization'
20. 'A decade of economic reforms in India' / ed by Raj Kapila, Uma Kapila, Academic Foundation'
21. Economic reforms in India : Experiences and Lessons' by Gedam, Ratnakar, Deep Deep Publications'
22. 'Economic reforms in India and China : emerging issues and challenges' / edited by B.Sudhakar Reddy, Sage Publication'
23. 'Pranjana- The Journal of Management Awareness', july-dec 2011 (vol.14 no.2)'
24. 'Economic reforms, labour and employment' by Datt, Ruddar, Deep Deep Publication'
25. 'The market that failed : a decade of neoliberal economic reforms in India' by Chandrasekhar, C.P., Leftword'
26. 'Understanding reforms : post 1991 India' / Suresh D. Tendulkar and T.A.Bhavani, Oxford University Press'
27. 'FDI in retail sector : India' by Mukherjee, Arpita Patel, Nitisha, Academic Foundation
28. 'Indian Economy after 50 years of Independence : Globalization and Development' by Das, Debendra Kumar, Deep Deep Publication
29. 'Policy impediments to trade and FDI in India' / B.Bhattacharyya, Satinder Palaha, Wheeler Publishing
30. 'Liberalization and human resource management : challenges for the corporations of tomorrow' by Monappa Arun, Engineer Mahrukh, Response books
31. 'Foreign direct investment in India' by Kumar, Sanjeev, B.R. Publishing Corporation
32. 'Indian Management Studies Journal', oct 2010 ( vol.14 no.2)

## Recent Changes in Public Participation and its Uses in Mgnrega Management: A Preliminary Study

**Kamal Kumar Modi**

Assistant Professor,  
Acharya Kalu Kanya Mahavidhyalaya,  
Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun

Shodh Shree



shodhshree@gmail.com

The **Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA)** is an Indian Law which aims to guarantee the right to work and ensure livelihood security in rural areas by providing at least 100 days of guaranteed wage employment in a financial year to every household whose adult members volunteer to do unskilled manual work. The National Rural Employment Guarantee Act (NREGA) aims at enhancing the livelihood security of the people in rural areas by guaranteeing hundred days of wage employment in a financial year, to a rural household whose members volunteer to do unskilled manual work. The findings regarding impact of the NREGA revealed that major impacts of NREGA were perceived by the beneficiaries in the aspects like social, economic and security etc.

### **Beginning of a New Era: MGNREGA**

As a first ever right based programme, MGNREGA began in phased manner. In the first stage (2005-06), it covered 200 poorest districts of the country. Another 130 districts were added in the second phase (2007-08). With this, 330 out of 619 districts were covered in the second phase. In April 2008, MGNREGA was extended to cover whole of rural India. It is widely held that no other schemes/programmes of rural development attracted so much public attention and raised expectation as MGNREGA has done in a brief span of time. If properly implemented, MGNREGA is seen to have great potential for alleviating rural distress.

There have been few studies to assess the working as well as performance of MGNREGAS. Bhatia and Dreze (2006) in their study of two districts in Jharkhand observe that though NREGA has created a sense of hope amongst the rural poor, it is not free from certain maladies such as fudging of muster roll, delays in wage payment, fictitious gram sabhas and role of intermediaries. Delay in wage payment was also reported in Palakkad district of Kerala by Jacob and Varghese (2006). Ambasta et al. (2008) in their study based in few districts of Chhattisgarh and Orissa endorsed some of the findings made in the earlier study and concluded that the scheme suffered from under staffing that resulted in inordinate delays in execution of work. There was also a lack of people's planning and mockery of social audit. In a study of West Godavari district of Gujarat, Maheshwari (2009) found that there were huge discrepancies in the amount of work done and the wages received by the workers. Afridi et al. (2012) in her study examined the bottlenecks in social auditing.

These studies thus have pointed out both pitfalls and positive impact of the scheme. Undoubtedly, findings of such studies inform us about how actually the scheme

performs on the ground yet they do not contribute significantly to our understandings of the trajectories the scheme has been passing through. It is primarily because of two reasons. In the first place, existing studies are carried out at disparate levels and have limited coverage. In many cases, studies just cover one or few villages. Secondly, most of them touch upon limited range of issues involved in the functioning of the scheme. Most of them tend to examine systemic defects rather than probing the impact of the scheme on beneficiaries. The cumulative effect is that our understanding of how actually the scheme is working on the ground and impacting the lives of beneficiaries in different parts of the country remains inadequate.

However, for any scheme of this nature, there is a possibility of a gap between intentions/expectations and implementation. The implementation of MGNREGA is also said to be grappled with many problems: **One**, there is huge intra and interstate disparity in the level of awareness, implementation and effectiveness. **Second**, social composition (in terms of gender, caste, religion etc) of the eligible beneficiaries is reported to be extremely skewed. **Third**, the scheme is less benefiting those who happen to be the target of it - the rural poor. **Fourth**, there are discrepancies between amount of work done and payment received by the workers. **Fifth**, lack of transparency and deviation from norms at panchayat levels have let corruption in. There is a list of works which are permissible under Mahatma Gandhi NREGA are as under like, water conservation and water harvesting, drought proofing (including afforestation and tree plantation), irrigation canals including micro and minor irrigation works, provision of irrigation facility, horticulture plantation and land development facilities to land owned by households belonging to the Schedule Castes and Schedule Tribes or Below Poverty Line families or to beneficiaries of land reforms or to the beneficiaries under the Indira Awas Yojna of the Government of India or that of small farmers or marginal farmers as defined in the Agriculture Debt Waiver and Debt Relief Scheme, 2008. Renovation of traditional water bodies including desalting of tanks, land development, flood control and protection works including drainage in water logged areas, rural connectivity to provide all-weather access. The construction of roads may include culverts where necessary, and within the village area may be taken up along with drains. Care should be taken not to take up roads included in the PMGSY network under NREGA. No cement concrete roads should be taken up under

NREGA. Priority should be given to roads that give access to SC/ST habitations and any other work which may be notified by the Central Government in consultation with the State Government, construction of Bharat Nirman, Rajiv Gandhi Sewa Kendra as Village Knowledge Resource Centre and Gram Panchayat Bhawan at Gram Panchayat level has been included as a permissible activity in para 1 of Schedule I of the Act vide Notification dated 11.11.2009.

### **Public Participation**

Public policy and public works in India have generally tried to include women as a percentage of beneficiaries, but have not paid enough attention to gender sensitive design. The NREGA in its design in its design has attempted some gender sensitivity.

Women's participation in employment programme is conditioned by several factors. The nature and conditions of work provided, the burden of care responsibilities and unpaid work, local labour market conditions are some factors that influence women's participation in public works programme. The MGNREGA programme tries to address many of these factors, like for instance, providing crèche facility at worksite in order to enable women's participation. Evidence shows that the at the all-India level, MGNREGA disproportionately involves women. However, there are also wide variations both across states and within states in the number of work days going to women.

The inter-state variation in women's participation in MGNREGA work is conditioned by several factors. The author argues that the prior existence of a tradition of wage works in the states of Kerala and Rajasthan is one of the explanations for the high participation of women in NREGA work. On the other hand, in Himachal traditionally women do not take much part in wage work. A part of the reason lies in the fact that households in Himachal, a hill state, has high dependence on natural resources for household provisioning. This means that women are required to spend a large amount of time for provisioning responsibility. This means that often, women are not left with enough time to take part in wage works like that provided under MGNREGA.

### **Conclusion**

In view of the findings of the study, the author concludes that the MGNREGA has, in several cases, improved rural household income and savings, increased rural women's participation in paid work, led to useful assets being created. However, in order to enhance the impact of the programme, there is a need to improve design of the programme, address

broader aspects of poverty, strengthen active citizenship, increase women's involvement in choice of work and improve childcare facilities to empower women. However, the MGNREGA programme did not have a strong impact on other labour market aspects like that of stalling or reducing migration of workers significantly or raising men's market wages in the areas where fieldwork was carried out. There have also been certain unintended, negative consequences of the programme. In particular, the author refers to the unintended consequences of the lack of availability of crèche facilities at worksites. This has resulted in "older daughters supporting the work of mothers by looking after younger siblings" and missing out on their own schooling in the process.

**References :**

1. Afridi, F., Mukhopadhyay, A., & Sahoo, S. 2012. Female labour force participation and child education in India: The effect of the

national rural employment guarantee scheme (No. 6593). Discussion Paper series, Forschungsinstitut zur Zukunft der Arbeit.

2. Ambasta, Pramathesh, Vijay Shankar, P.V. and Shah, Mihir. 2008. Two years of NREGA: The road ahead. *Economic and Political Weekly*, 43 (8): 41-50.
3. Bhatia, Bela and Dreze, Jean. July, 2006. "Employment Guarantee in Jharkhand: Ground Realities". *Economic and Political Weekly*, XLI (29). 3200-3202.
4. Jacob, Arun and Varghese, Richard. 2006. "NREGA implementation- I reasonable beginning in Palakkad, Kerala". *Economic and Political Weekly*, 41(48). 4943-4945.

## Office Automation at 21<sup>st</sup> Century Work Place and its Effect on Women Workers

**Dr. Shikha Sharma**

Post-Doctoral Fellow

University of Rajasthan, Jaipur

**Shodh Shree**



shodhshree@gmail.com

Just as the mechanization of farm and factory work changed society and economy in the past, so has the automation of white-collar work influenced and changed the work process and society. This paper explores the productivity, cultural, health and mental health issues of women workers influenced by office automation. A number of issues are now actively before society related to employment and economic equity for women. This paper is not primarily directed at exploring complex clusters of issues. The assessment nevertheless reveals obvious relationships between office automation, as a broad technological, economic and social trend and the special concerns of working women.

Past two decades, information technology has advanced dramatically and is increasingly being employed to eliminate all types of jobs. Job automation technology, together with globalization, has been the primary force behind the stagnant wages and diminished opportunities for less educated workers in recent years. The same also applies to educated workers who don't possess "niche-skills" which are lacking in the larger workforce. Automation is rapidly transforming the nature of office work. Electronic text editing, typewriters, high-speed copiers and computerized information storage and communication systems are just few of the components of a rapidly expanding field of new office technologies. These new office technologies, transforming the nature of clerical work, have a far-reaching impact on office functions and organizations. Attempts to assess automation impact on office work cannot overlook the fact that this is predominantly female occupation. As the largest category of office workers, women will be the ones most affected by the wave of office automation.

In the early 19th century men performed clerical work in offices as an apprenticeship in business. But later as organizations restructured into functional divisions and it began to recruit women for de-skilled clerical jobs while the man retained the management/administrative jobs. Since women were expected to earn some income from at-home work such as sewing, knitting and preparation of food for sale, when women left the farm to work, the shift was as domestic workers and later as factory workers. For women, this meant higher wages and increased economic independence over work at home. However, their wages were still quiet low and working conditions poor. When office work became available to women there was a large pool of women to seek these jobs, which were easier, cleaner and had more status than factory jobs. In the first half of 20th century, education levels were increasing significantly, with many more women completing high school.. Since literacy was required for office work, women gradually became the preferred

sex for clerical employment in expanding businesses, offering book keeping, penmanship, stenography, typewriting etc.

In the late 20th century restructuring of businesses and office work resulted in cutting off the ladder from clerk to manager. The gender segregation of jobs has, over the long range, been increasing inspite of changing social attitudes and public policy objectives. Women continue to cluster in traditionally female occupations constituting 80% of all administrative support workers compared to less than fifty percent of males as managers, administrators and executives.

The figures comparing men's and women's average salaries are well known. The reasons usually offered include differences in education and experience, occupational and industry choices, job mobility and number of hours worked.

New jobs are emerging in the computer and technical specialist occupations, especially for engineers, computer analysts and paraprofessional computer technicians, positions in which relatively few women are employed. Whether it cuts off career ladders, eliminates unskilled clerical work or requires more or different training and skills, office automation has changed the nature and skill requirements of traditional office occupations and jobs further marginalizing women workers into less paid and skilled jobs.

Future employment opportunities for women, although dependent on growth of total demand in the economy, may be more dependent on the opportunity for increasing their skills, work experience and upward job mobility, which would allow them to take advantage of changing job requirements. It seems therefore, to assemble information about the facts of the situation to envisage what measures should be taken if this 'new technology' is not to amount to an additional handicap for women.

#### **What is Office Automation**

The official definition that appeared in France's "Journal Official" on January 17, 1982, is the following:

"All forms of technology tending , as a whole, to automate office work and primarily the processing and communication of words, writings and images".

According to S. Nora and A. Minc: "with computer science and audio visual technology the traditional office work methods are bound to be substantially modified. From this point of view the term 'bureautique' (office automation) refers to all technology designed to make hardware carry out all

or part of the work of an office. 'La bureautique' therefore covers equipment for processing texts, images and words, and calls upon the most varied means of telecommunications".

These technological definitions reckon that hardware will be put in charge of carrying out office jobs. From various meanings office automation is:

- A new field
- Describes technology, methods, processes which specifically apply themselves to office activities
- Aims at having all, or part of office work carried out by hardware.
- Yet, directed at everyone working in an office.

One of the striking consequences of information technology and communication technologies is that together they make much "office work" independent of the place where it has usually been performed: that is, they allow it to be done in the home, in airplanes and trains and in other countries.

A major problem with the research on office automation impact is differentiating from computing. The two are obviously inextricably linked. The question is basic: are the social implications of computing the same for office automation. Since there is no generally agreed upon list of social implications of computing, it is not possible to make any comparison for office automation. What might be argued from a conceptual level, however, is that office automation includes only a fraction of the technologies embraced by computing. From this viewpoint, there is no difference: the social implications of computing are the same for office automation and vice versa. It might be reasonable to assume that there is no difference in the implications of computing and office automation.

The purpose of this paper is to explore the social and employment issues associated with the growth of office automation, with particular reference to how this concerns with women's working conditions.

There is a considerable gulf between talking about office automation and what it amounts to. The definitions and discussions that accompany the introduction of office automation have implications that extend well beyond its technological dimensions with its emerging as a project having economic implications (productivity), organizational implications (rationalization of the work, bringing the technology into general use, adaptability), and implications of a social nature (disruption of social structure).

It further suggests that when organizations adopt new technology, there are likely to be three kinds of effects- substitution, adaptation, and transformation. The new technology usually replaces an older technology or human labor, or both. The institutional structures, cultures, operating procedures, and management expectations at this point still reflect the old workflow and work process. Until this tension is resolved, the full benefits of the substitution are not realized and productivity may even fall. Many organizations are still at this stage in office automation.

The institution deliberately or “unconsciously,” by plan or by trial and error, begins to modify itself to suit new ways of doing things. This is the adaptation stage. The adaptations may include for example formal reorganizations, shifts in power relationships, adjustments in responsibilities, or changes in the way women workers are recruited and compensated. If adaptations are not planned, there may be a long period of frustration and inefficiency before common sense indicates just what changes are necessary. The third kind of effect, transformation, may bring about the restructuring of an industry or of the mix of industries within the economy resulting in reduction of labor in clerical/support staff further shrinking the employment and empowerment opportunities for women workers.

#### **How Technological Change Effect Women Differently: Issues at Work and Job Security**

The most important question with regard to impact of office automation on women's employment is whether the sanguine results of previous years can be projected to the remaining years of this century and beyond. The optimists contend that there is no reason to expect more “disturbance” in the years ahead than that has been experienced in past few decades, which saw office automation resulting in dysfunctional effects. The pessimists see the future differently. In their view office automation will have a range of adverse consequences for women's employment; first by eliminating a number of white-collar, and second, by elimination of many back-office positions. The pessimists go further and point to downskilling of jobs and degrading of careers that often accompany accelerated office automation.

Technological changes are a way of life for industrial societies where most innovations involve changes in processes or products. When a significant technological improvement occurs, the impact on the labour market is likely to be absorbed with serious job losses. The number of jobs placed at risk by significant new technology is relatively high and is

likely to be stretched out over a period of years, having to lay-off large number of women workers.

It must be emphasized that no matter how dramatic the new technology in office automation may become, it would not be difficult to point to its having had large-scale adverse effects on significant group of workers, especially female workers. The most serious changes that can be levied against office automation is that there have been “silent firings”(that is, workers not hired) and other negatives such as some deskilling of jobs, downscaling of opportunities and health hazards correlated with women's employment. Of all the effects of economic forces on the labour market overall growth, cyclical change, structural shifts and technological change, it has been estimated that about eighty percent of changes that occur in job structure is ascribable to office automation.

There has been major technological breakthrough, such as development of rail, road, telephone, electric power, automobile in which the impacts on work and women workers were more pervasive. It should be noted that the impacts on women workers are still not fully diffused after long periods, often decades and generations, where some outlying families of women workers affected by change are not connected to an electric grid and a home telephone is still not affordable by some women workers and their families.

Office automation has reached a point where it is likely to have a greater “displacement”. Economic, social and legal conditions of organizational hierarchies have changed. Major trends occurring due to office automation has affected women workers, as compared to men, either differentially or to a different degree, because men and women tend to be concentrated in different occupations, jobs and industries and at different levels of organizational hierarchies.

With office automation there are fewer jobs in some occupational categories and more in others; those now held predominantly by women are most likely to decrease in number and those jobs that women increasingly aspire to hold will change in predictable ways. The possibility of working at home also tend to have a different meaning for men and women because their family roles tend to be, at present, very different. Office automation affect both the number and nature of office jobs and the skills they require for working women and any attempts to compare jobs within a specific formal job classification or the demands of jobs across formal classification must take such changes into account. At the same time

effect of office automation on working women's job security should also take into account legal and regulatory pressures as well as economic, behavioral and attitudinal factors and explicit management decisions also affect how jobs for women are designed, how they are filled and how they are compensated.

The increase and decrease in working women's skills required in accordance to technological up gradation is also pertinent in the same way as redefinition of the meaning of skill is. The traditional view of work that women used to do has been a series of routine, highly repetitive tasks. And these skills need to be incorporated into machines to improve efficiency and productivity. However, there are "invisible skills" that cannot readily be discerned but are crucial to the smooth functioning of the organization. Coding and entering information, knowing a vast number of codes and outdated codes that must be updated is a process dependent on workers sequential decision-making and actions and women workers are pro at the task. However many working units and organizations do not take this into account while issuing job orders. Thus these "invisible skills" tend to remain at back seat for job descriptions, evaluations and salary decisions further hampering job and promotion prospects for working women.

Women workers' participation in introduction and use of office automation is most limited in tasks which are previously rationalized. Women workers also face increase amount of work, routine and boring tasks, lack of promotional opportunities and physical problems such as eye strain, headache, backache and stress. Working-women link increase in stress with an increase in workload and to an increase in supervision in the form of more required reports. The poor qualities of working environment also contribute to health and morale problems. In most instances, women workers are not consulted into how introduction of office automation would affect the design of the work process and work areas. With office automation there has been change in nature of work but not in job description or salary level of working women. The information gathering portion of the job, especially, is removed and assigned to lower paid positions resulting in elimination of job. Changes in job content for working women is also affecting job ladders and promotional opportunities. There are only few promotional paths that can be used to encourage working women to use their invisible skills to gain entry to high-level jobs.

Office automation has led to more work for working women for which they are not compensated and learning new skills has thwarted. An unintended side effect is to overcome lack of an adequate supervisory system, women have to work together to co-ordinate and organize their work; this leaves them with a feeling of "running the show" albeit without adequate training and supervisory assistance.

In India, women continue to be defined as the end-users or operators of computers or other office technology, even where their work may in practice include an increasing range of systems related to technical aspects. Women still occupy a relatively marginal position both within computing, and at the senior management levels where strategic decisions on information technology are taken. It is possible, for instance, to envisage the creation of jobs and could open up new forms of access to computing and better paid work for women office workers. Such developments would build on and enhance, the informal patterns of cooperation and communication that are an integral part of many jobs. However to date there has been little advancement of these possibilities and not a significant move towards empowering women workers.

Management gets engrossed in the technological choices allied to the introduction of office automation without paying attention to the socio-organizational choices.

Women are the prime targets of office automation. This is because it is mostly they who do the jobs that the hardware currently on the market is supposed to do, and as a more vulnerable group, they serve as guinea pigs for the introduction of office automation into the firm.

Then there is "sexualization" of the hardware (word processors for women, micro computers for men) that reflects the prejudice conveyed by society. This results in a devaluation of a machine only used by women and reinforcement of the skills hierarchy and job segregation.

The way the machines are divided up between men and women, the training given to women is limited on how to operate a machine which rarely results in promotion and does not help them to fit into the "computer culture".

Technological advancement has also allowed producers to further shift the costs and risks of production (from adverse conditions or market fluctuations) onto workers. Women are straight targets as they work with few labor rights and little social production.

Women workers also face high levels of instability and insecurity in their employment. Wages can vary on a daily or weekly basis and frequently forced to work long hours of overtime often with no additional pay.

Recent lay-offs are in the mid-management. Majority of mid level managers are paper-pushers, going from one meeting to another. With consolidation and data collating technology, managers become redundant and all menial or less paid and less challenging jobs are handed over to women workers.

### **Policy Implications**

There has not only been "feminization" of the labor force, but also a change in the gender dimensions of global employment due to office automation. Evidences suggests that policies to promote women's productive activity by simultaneously addressing their reproductive responsibilities offer a powerful potential to maximize the possible synergies and minimize the trade-offs between poverty eradication and human development while at the same time empowering women.

Government should take explicit notice of women worker's concern and factors in discussion of bills concerning pay equity and comparable worth.

Organizations should provide incentives for maintaining or improving ratios of female to male employment in labour force reductions associated with automation.

Organizations should seek subsidized child care facilities increase tax deduction for child care to increase the employment options for working mothers.

Get women to fit into the computer world by promoting computer courses aimed at women.

There should be more audio-visual portrayls of women being in charge of computing work thus changing the image of women in relation to technology.

### **Conclusion**

Since office automation appears to be an inevitable technical evolution we have tried to explore the employment and social issues associated with its growth, particularly insofar as they affect women at work. The fundamental question that led us to do this sprang from an optimistic argument, namely, whether office automation offers women the "historic opportunity" to achieve equality of job opportunity with men.

While office automation would strengthen family ties, something that women themselves want - it would loosen people's ties with their work group. This would lead to a situation that women have long fought against: being cut off from social life and being made to feel lonely and isolated.

Consequently automation of office work, would encourage self-reliance, independence and the development of creative activities outside work, and could show itself to be a trap so far as women are concerned: by putting them back in their homes it would be providing firms with an easy, unskilled, undemanding and isolated workforce.

What analysis has shown is that office automation appears to be a project for changing employment and social relations, but the importance of the cultural reality has been underestimated. One cannot rely on new tools to change mental attitudes.

The problem is more complex.

### **References :**

1. Facts on Women Workers, Washington D C :U S Department of Labour, Office Of The Secretary, Women's Bureau, 1984.
2. S.Nora and A.Minc: "L'informatisation de la Societe" (The Computerisation Of Society). Paris, 1978, P.144.
3. Hirschhem, R. Office Automation: A Social And Organizational Perspective. Wiley, Chichester, England.
4. Hales M (1989) Women: The Key to Information Technology, London Strategic Policy Unit, Barefoot Documents, Brighton.
5. Kabeer, N.2003.Gender Mainstreaming in Poverty Eradication and the Millenium Development Goals: Handbook for Policy Makers and Other Stakeholders, London , Commonwealth Secretariat.



# Shodh Shree

(Journal of Multidisciplinary Research)

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur-302018

shodhshree@gmail.com

Chief Editor - Virendra Sharma

Editor - Dr. Ravindra Tailor

Membership No.....

Date.....

(For Office Use Only)

## Subscription Form

Name Prof./Dr./Ms./Mr. .... Designation .....

Name of Organization .....

Mailing Address .....

District ..... State .....

Tel. No (Res.) ..... Mobile No. ....

E-mail Address .....

Subscription fee can be deposit through online Banking.

Date

Signature

- 
1. Required Font For Resaech Paper - Kruti Dev-010 (For Hindi) or, Times New Roman (For English)
  2. Subscription Fees 1200 Rs (For Individual and Institution)
  3. Research Paper may be Sent through By email, post or C.D.
  4. For any assistance, please contact - 09413224134

## DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I .....

hereby declared that the paper entitled ' .....

.....' is unpublished original paper which is not sent anywhere for publication.

This paper is prepared by me/jointly with .....

..... which is exclusively for your Journal

entitled 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same except one copy of the

Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first.

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other Journal or book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

Residential Address .....

Phone No. .... Pin No. ....

E-mail Address .....

## Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in pagemaker and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman font for English can submit by C.D. or through e-mail.
2. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.
3. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate headings.
4. Maximum word limit of research paper up to 1500 words.
5. Special care should be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper otherwise it will not be accepted for publication.
6. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.
7. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.
8. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

**BookReview:** For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

**Note:** Shodh Shree have copyright on papers published in the Journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the Journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to Jaipur jurisdiction.

**Research Paper may be sent to our e-mail:shodhshree@gmail.com  
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor-09413224134**

To,

प्रिन्टेड मैटर

If undelivered please return to :

**शोध श्री** (त्रैमासिक)

54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी

टॉक रोड, जयपुर-302018

स्वात्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54-ए,  
जवाहर नगर कॉलोनी, टॉक रोड, जयपुर-302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।  
मुद्रण स्थल आकृति एड्वरटाईजर्स, जयपुर